नमो नमो निम्मलदंसणस्स

आगमसूत्र १

हिन्दीअनुवाद

अनुवादकर्ता

मुनि दीपरत्नसागर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नम :

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

श्री आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागरगुरूभ्यो नम :

आगमसूत्र

[हिन्दी अनुवाद]

भाग : १ - जम्बूद्वीप प्रज्ञाप्ति, निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वण्हिदसा, चतुःशरण, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तन्दुलवैचारिक

: अनुवादकर्ता :

-: मुनि दीपरत्नसागर :-

आगमसूत्र-हिन्दी अनुवाद (संपूर्ण)

मूल्य - ३. २७००/-

ता. २१/११/२००१ बुधवार २०५८ - कारतक-सुद-६

卐 श्री श्रुतप्रकाशन निधि 卐

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ ह्रीँ श्री पार्श्वनाथाय नमः

: मुद्रक :
श्री नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस
घीकांटा रोड, अहमदाबाद

: कम्पोझ :
श्री ग्राफिक्स, २१ सुभाषनगर,
गिरधरनगर, शाहीबाग, अहमदाबाद

संपर्क स्थल

"आगम आराधना केन्द्र" शीतलनाथ सोसायटी विभाग-१,
फ्लेट नं-१३, ४-थी मंझिल, ब्हाई सेन्टर, खानपुर,
अहमदाबाद (गुजरात)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुदान-दाता

● प. पू. गच्छाधिपति आचार्यदेवश्री जयघोषसूरीश्वरजी म.सा. की प्रेरणा से- "श्री सीमंधर स्वामीजी जैन देरासरजी-अंधेरी पूर्व, मुंबई" –ज्ञानरासी में से

● प.पू. संयममूर्ति गच्छाधिपति आ.देवश्री देवेन्द्रसागर सूरीश्वरजी म.सा. के पट्ट प्रभावक व्याकरण विशारद पू.आ.श्री नरदेवसागर सूरीजी म.सा. तथा उनके शिष्य पू. तपस्वी गणीवर्य श्री चंद्रीकीर्तिसागरजी म.सा. के प्रेरणा से-"श्री वेपरी श्वे० मूर्ति० संघ–चैन्नाई" की तरफ से ।

● प.पू. क्रियारुचिवंत आचार्यदेव श्रीमद् विजय ऋचक-चन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. की ज्ञानभक्तिरुप प्रेरणासे श्री तालध्वज जैन श्वे. तीर्थ कमिटी - तलाजा, (सौराष्ट्र) की तरफ से ।

● प.पू. आदेयनामकर्मधर पंन्यासप्रवर श्री अभयसागरजी म.सा. के पट्टप्रभावक अवसरज्ञ पूज्य आचार्यदेवश्री अशोक-सागरसूरीश्वरजी म.सा. की प्रेरणा से श्री साबरमती, रामनगर जैन श्वे. मूर्ति. संघ, अमदावाद की तरफसे ।

● प.पू. श्रुतानुरागी आचार्यदेवश्री विजय मुनिचन्द्र-सूरीश्वरजी म.सा. की प्रेरणासे - वांकडीया वडगाम जैन संघ की तरफ से ।

● पूज्य श्रमणीवर्या श्री भव्यानंदश्रीजी म.सा. के पट्टधरा शिष्या मृदुभाषी साध्वीश्री पूर्णप्रज्ञाश्रीजी म.सा. की शुभप्रेरणासे - श्री सुमेरटावर जैन संघ, मुंबाई की तरफ से ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुदान-दाता

● प.पू. आगमोध्धारक आचार्य देव श्रीमद् आनन्दसागर-सूरीश्वरजी म.सा. के समुदायवर्तिनी तपस्वीरत्ना श्रमणीवर्या श्री कल्पप्रज्ञाश्रीजी म.सा. की शुभ प्रेरणा से कार्टर रोड जैन श्वे. मू.पू. संघ, बोरीवली ईष्ट, मुंबाई की तरफ से ।

● पंडितवर्य श्री वीरविजयजी जैन उपाश्रय, भट्ठी की बारी, अमदावाद ।

● श्री खानपुर जैन संघ, खानपुर, अमदावाद ।

आगमसूत्र हिन्दीअनुवाद - हेतु
शेष सर्वद्रव्यराशी

(१) श्री आगमश्रुतप्रकाशन

एवं

(२) श्री श्रुतप्रकाशन निधि

की तरफ से प्राप्त हुई है ।
जो हमारे पूर्व प्रकाशीत आगम साहित्य के
बदले में उपलब्ध हुई थी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

: अमारा प्रकाशनो :

[१] अभिनव हेम लघुप्रक्रिया - १ - सप्ताङ्ग विवरणम्
[२] अभिनव हेम लघुप्रक्रिया - २ - सप्ताङ्ग विवरणम्
[३] अभिनव हेम लघुप्रक्रिया - ३ - सप्ताङ्ग विवरणम्
[४] अभिनव हेम लघुप्रक्रिया - ४ - सप्ताङ्ग विवरणम्
[५] कृदन्तमाला
[६] चैत्यवन्दन पर्वमाला
[७] चैत्यवन्दन सङ्ग्रह - तीर्थजिनविशेष
[८] चैत्यवन्दन चोविशी
[९] शत्रुञ्जयभक्ति [आवृत्ति-दो]
[१०] अभिनव जैन पञ्चाङ्ग - २०४६
[११] અભિનવ ઉપદેશ પ્રાસાદ - ૧ - શ્રાવક કર્તવ્ય - ૧ થી ૧૧
[૧૨] અભિનવ ઉપદેશ પ્રાસાદ - ૨ - શ્રાવક કર્તવ્ય - ૧૨ થી ૧૫
[૧૩] અભિનવ ઉપદેશ પ્રાસાદ - ૩ - શ્રાવક કર્તવ્ય - ૧૬ થી ૩૬
[૧૪] નવપદ - શ્રીપાલ (શાશ્વતી ઓળીના વ્યાખ્યાન રૂપે)
[૧૫] સમાધિ મરણ [વિધિ - સૂત્ર - પદ્ય - આરાધના - મરણભેદ - સંગ્રહ]
[૧૬] ચૈત્યવંદન માળા [૭૭૯ ચૈત્યવંદનોનો સંગ્રહ]
[૧૭] તત્વાર્થ સૂત્ર પ્રબોધટીકા [અધ્યાય-૧]
[૧૮] તત્વાર્થ સૂત્રના આગમ આધાર સ્થાનો
[૧૯] સિદ્ધાચલનો સાથી [આવૃત્તિ - બે]
[૨૦] ચૈત્ય પરિપાટી
[૨૧] અમદાવાદ જિનમંદિર ઉપાશ્રય આદિ ડિરેક્ટરી
[૨૨] શત્રુંજય ભક્તિ [આવૃત્તિ - બે]
[૨૩] શ્રી નવકારમંત્ર નવલાખ જાપ નોંધપોથી
[૨૪] શ્રી ચારિત્ર પદ એક કરોડ જાપ નોંધપોથી
[૨૫] શ્રી બારવ્રત પુસ્તિકા તથા અન્ય નિયમો - [આવૃત્તિ - ચાર]
[૨૬] અભિનવ જૈન પંચાંગ - ૨૦૪૨ [સર્વપ્રથમ ૧૩ વિભાગોમાં]
[૨૭] શ્રી જ્ઞાનપદ પૂજા
[૨૮] અંતિમ આરાધના તથા સાધુ સાધ્વી કાળધર્મ વિધિ
[૨૯] શ્રાવક અંતિમ આરાધના [આવૃત્તિ ત્રણ]
[૩૦] વીતરાગ સ્તુતિ સંચય [૧૧૫૧ ભાવવાહી સ્તુતિઓ]
[૩૧] (પૂજ્ય આગમોદ્ધારક શ્રી ના સમુદાયના) કાયમી સંપર્ક સ્થળો

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३२] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-१
[३३] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-२
[३४] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-३
[३५] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-४
[३६] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-५
[३७] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-६
[३८] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-७
[३९] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-८
[४०] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-९
[४१] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-१०

प्रकाशन १ थी ४१ अभिनवश्रुत प्रकाशने प्रगट करेल छे.

[४२]	आयारो	[आगमसुत्ताणि-१]	पढमं अंगसुत्तं
[४३]	सूयगडो	[आगमसुत्ताणि-२]	बीअं अंगसुत्तं
[४४]	ठाणं	[आगमसुत्ताणि-३]	तइयं अंगसुत्तं
[४५]	समवाओ	[आगमसुत्ताणि-४]	चउत्थं अंगसुत्तं
[४६]	विवाहपन्नति	[आगमसुत्ताणि-५]	पंचमं अंगसुत्तं
[४७]	नायाधम्मकहाओ	[आगमसुत्ताणि-६]	छट्ठं अंगसुत्तं
[४८]	उवासगदसाओ	[आगमसुत्ताणि-.७]	सत्तमं अंगसुत्तं
[४९]	अंतगडदसाओ	[आगमसुत्ताणि-८]	अट्ठमंअंगसुत्तं
[५०]	अनुत्तरोववाइयदसाओ	[आगमसुत्ताणि-९]	नवमं अंगसुत्तं
[५१]	पण्हावागरणं	[आगमसुत्ताणि-१०]	दसमं अंगसुत्तं
[५२]	विवागसूयं	[आगमसुत्ताणि-११]	एक्कारसमं अंगसुत्तं
[५३]	उववाइयं	[आगमसुत्ताणि-१२]	पढमं उवंगसुत्तं
[५४]	रायप्पसेणियं	[आगमसुत्ताणि-१३]	बीअं उवंगसुत्तं
[५५]	जीवाजीवाभिगमं	[आगमसुत्ताणि-१४]	तइयं उवंगसुत्तं
[५६]	पन्नवणासुत्तं	[आगमसुत्ताणि-१५]	चउत्थं उवंगसुत्तं
[५७]	सूरपन्नति	[आगमसुत्ताणि-१६]	पंचमं उवंगसुत्तं
[५८]	चंदपन्नति	[आगमसुत्ताणि-१७]	छट्ठं उवंगसुत्तं
[५९]	जंबूद्दीवपन्नति	[आगमसुत्ताणि-१८]	सत्तमं उवंगसुत्तं
[६०]	निरयावलियाणं	[आगमसुत्ताणि-१९]	अट्ठमं उवंगसुत्तं
[६१]	कप्पवडिंसियाणं	[आगमसुत्ताणि-२०]	नवमं उवंगसुत्तं
[६२]	पुप्फियाणं	[आगमसुत्ताणि-२१]	दसमं उवंगसुत्तं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[६३]	पुप्फचूलियाणं	[आगमसुत्ताणि-२२]	एक्कारसमं उवंगसुत्तं
[६४]	वण्हिदसाणं	[आगमसुत्ताणि-२३]	बारसमं उवंगसुत्तं
[६५]	चउसरणं	[आगमसुत्ताणि-२४]	पढमं पईण्णगं
[६६]	आउरपच्चक्खाणं	[आगमसुत्ताणि-२५]	बीअं पईण्णगं
[६७]	महापच्चक्खाणं	[आगमसुत्ताणि-२६]	तीइयं पईण्णगं
[६८]	भत्तपरिण्णा	[आगमसुत्ताणि-२७]	चउत्थं पईण्णगं
[६९]	तंदुलवेयालियं	[आगमसुत्ताणि-२८]	पंचमं पईण्णगं
[७०]	संथारगं	[आगमसुत्ताणि-२९]	छट्ठं पईण्णगं
[७१]	गच्छायार	[आगमसुत्ताणि-३०/१]	सत्तमं पईण्णगं-१
[७२]	चंदावेज्झयं	[आगमसुत्ताणि-३०/२]	सत्तमं पईण्णगं-२
[७३]	गणिविज्जा	[आगमसुत्ताणि-३१]	अट्ठमं पईण्णगं
[७४]	देविंदत्थओ	[आगमसुत्ताणि-३२]	नवमं पईण्णगं
[७५]	मरणसमाहि	[आगमसुत्ताणि-३३/१]	दसमं पईण्णगं-१
[७६]	वीरत्थव	[आगमसुत्ताणि-३३/२]	दसमं पईण्णगं-२
[७७]	निसीहं	[आगमसुत्ताणि-३४]	पढमं छेयसुत्तं
[७८]	बुहत्कप्पो	[आगमसुत्ताणि-३५]	बीअं छेयसुत्तं
[७९]	ववहार	[आगमसुत्ताणि-३६]	तइयं छेयसुत्तं
[८०]	दसासुयक्खंधं	[आगमसुत्ताणि-३७]	चउत्थं छेयसुत्तं
[८१]	जीयकप्पो	[आगमसुत्ताणि-३८/१]	पंचमं छेयसुत्तं-१
[८२]	पंचकप्पभास	[आगमसुत्ताणि-३८/२]	पंचमं छेयसुत्तं-२
[८३]	महानिसीहं	[आगमसुत्ताणि-३९]	छट्ठं छेयसुत्तं
[८४]	आवस्सयं	[आगमसुत्ताणि-४०]	पढमं मूलसुत्तं
[८५]	ओहनिज्जुत्ति	[आगमसुत्ताणि-४१/१]	बीअं मूलसुत्तं-१
[८६]	पिंडनिज्जुत्ति	[आगमसुत्ताणि-४१/२]	बीअं मूलसुत्तं-२
[८७]	दसवेयालियं	[आगमसुत्ताणि-४२]	तइयं मूलसुत्तं
[८८]	उत्तरज्झयणं	[आगमसुत्ताणि-४३]	चउत्थं मूलसुत्तं
[८९]	नंदीसूयं	[आगमसुत्ताणि-४४]	पढमा चूलिया
[९०]	अनुओगदारं	[आगमसुत्ताणि-४५]	बितिया चूलिया

પ્રકાશન ૪૨ થી ૯૦ અભિનવશ્રુત પ્રકાશને પ્રગટ કરેલ છે.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[૯૧]	આયાર-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૧]	પહેલુ અંગસૂત્ર
[૯૨]	સૂયગડ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૧]	બીજું અંગસૂત્ર
[૯૩]	ઠાણ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૧]	ત્રીજું અંગસૂત્ર
[૯૪]	સમવાય-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૧]	ચોથું અંગસૂત્ર
[૯૫]	વિવાહપન્નતિ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૨]	પાંચમું અંગસૂત્ર
[૯૬]	નાયાધમ્મકહા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૩]	છઠ્ઠું અંગસૂત્ર
[૯૭]	ઉવાસગદસા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૩]	સાતમું અંગસૂત્ર
[૯૮]	અંતગડદસા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૩]	આઠમું અંગસૂત્ર
[૯૯]	અનુત્તરોપપાતિકદસા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૩]	નવમું અંગસૂત્ર
[૧૦૦]	પણ્હાવાગરણ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૩]	દસમું અંગસૂત્ર
[૧૦૧]	વિવાગસૂય-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૩]	અગિયારમું અંગસૂત્ર
[૧૦૨]	ઉવવાઈય	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૪]	પહેલું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૦૩]	રાયપ્પસેણિય-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૪]	બીજું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૦૪]	જીવાજીવાભિગમ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૪]	ત્રીજું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૦૫]	પન્નવણાસુત્ત-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૪]	ચોથું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૦૬]	સૂરપન્નત્તિ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૫]	પાંચમું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૦૭]	ચંદપન્નત્તિ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૫]	છઠ્ઠું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૦૮]	જંબુદ્દીવપન્નત્તિ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૫]	સાતમું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૦૯]	નિરયાવલિયા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૫]	આઠમું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૧૦]	કપ્પવડિંસિયા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૫]	નવમું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૧૧]	પુપ્ફિયા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૫]	દશમું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૧૨]	પુપ્ફચૂલિયા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૫]	અગિયારમું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૧૩]	વણ્હિદસા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૫]	બારમું ઉપાંગસૂત્ર
[૧૧૪]	ચઉસરણ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	પહેલો પયન્નો
[૧૧૫]	આઉરપચ્ચકખાણ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	બીજો પયન્નો
[૧૧૬]	મહાપચ્ચકખાણ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	ત્રીજો પયન્નો
[૧૧૭]	ભત્તપરિણ્ણા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	ચોથો પયન્નો
[૧૧૮]	તંદુલવેયાલિય-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	પાંચમો પયન્નો
[૧૧૯]	સંથારગ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	છઠ્ઠો પયન્નો
[૧૨૦]	ગચ્છાયાર-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	સાતમો પયન્નો-૧
[૧૨૧]	ચંદાવેજ્ઝય-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	સાતમો પયન્નો-૨
[૧૨૨]	ગણિવિજ્જા-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	આઠમો પયન્નો
[૧૨૩]	દેવિંદત્થઓ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	નવમો પયન્નો
[૧૨૪]	વીરત્થવ-	ગુજરાતી અનુવાદ	[આગમદીપ-૬]	દશમો પયન્નો

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१२५]	निसीह-	गुजराती अनुवाद [आगमदीप-६]	छेदसूत्र पहेलुं
[१२६]	बुहत्कल्प-	गुजराती अनुवाद [आगमदीप-६]	छेदसूत्र बीजुं
[१२७]	ववहार-	गुजराती अनुवाद [आगमदीप-६]	छेदसूत्र त्रीजुं
[१२८]	दसासुयक्खंध-	गुजराती अनुवाद [आगमदीप-६]	छेदसूत्र चोथुं
[१२९]	जीयकप्पो-	गुजराती अनुवाद [आगमदीप-६]	छेदसूत्र पांचमुं
[१३०]	महानिसीह-	गुजराती अनुवाद [आगमदीप-६]	छेदसूत्र छट्ठुं
[१३१]	आवस्सय-	गुजराती अनुवाद [आगमदीप-७]	पहेलुं मूलसुत्र
[१३२]	ओहनिज्जुत्ति-	गुजराती अनुवाद [आगमदीप-७]	बीजुं मूलसुत्र-१
[१३३]	पिंडनिज्जुत्ति-	गुजराती अनुवाद [आगमदीप-७]	बीजुं मूलसुत्र-२
[१३४]	दसवेयालिय-	गुजराती अनुवाद [आगमदीप-७]	त्रीजुं मूलसुत्र
[१३५]	उत्तरज्झयण-	गुजराती अनुवाद [आगमदीप-७]	चोथुं मूलसुत्र
[१३६]	नंदीसुत्तं-	गुजराती अनुवाद [आगमदीप-७]	पहेली चूलिका
[१३७]	अनुओगदार-	गुजराती अनुवाद [आगमदीप-७]	बीजी चूलिका

प्रकाशन ९१ थी १३७ आगमदीप प्रकाशने प्रगट करेल छे.

[१३८] दीक्षा योगादि विधि

[१३९] ४५ आगम महापूजन विधि

[१४०]	आचाराङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१
[१४१]	सूत्रकृताङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२
[१४२]	स्थानाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-३
[१४३]	समवायाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-४
[१४४]	भगवतीअङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-५/६
[१४५]	ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-७
[१४६]	उपासकदशाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-७
[१४७]	अन्तकृद्दशाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-७
[१४८]	अनुत्तरोपपातिकदशाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-७
[१४९]	प्रश्नव्याकरणाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-७
[१५०]	विपाकश्रुताङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-८
[१५१]	औपपातिकउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-८
[१५२]	राजप्रश्नियउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-८
[१५३]	जीवाजीवाभिगमउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-९
[१५४]	प्रज्ञापनाउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१०/११
[१५५]	सूर्यप्रज्ञप्तिउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१२
[१५६]	चन्द्रप्रज्ञप्तिउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१५७]	जम्बूद्वीवप्रज्ञप्तिउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१३
[१५८]	निस्यावलिकाउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१५९]	कल्पवतंसिकाउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६०]	पुष्पिताउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६१]	पुष्पचूलिकाउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६२]	वण्हिदसाउपाङ्गसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६३]	चतुःशरणप्रकीर्णकसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६४]	आतुरप्रत्याख्यानप्रकीर्णकसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६५]	महाप्रत्याख्यानप्रकीर्णसूत्रं सच्छायं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६६]	भक्तपरिज्ञाप्रकीर्णकसूत्रं सच्छायं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६७]	तंदुलवैचारिकप्रकीर्णकसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६८]	संस्तारकप्रकीर्णकसूत्रं सच्छायं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१६९]	गच्छाचारप्रकीर्णकसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१७०]	गणिविद्याप्रकीर्णकसूत्रं सच्छायं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१७१]	देवेन्द्रस्तवप्रकीर्णकसूत्रं सच्छायं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१७२]	मरणसमाधिप्रकीर्णकसूत्रं सच्छायं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१४
[१७३]	निशीथछेदसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१५-१६-१७
[१७४]	बृहत्कल्पछेदसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-१८-१९-२०
[१७५]	व्यवहारछेदसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२१-२२
[१७६]	दशाश्रुतस्कन्धछेदसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२३
[१७७]	जीतकल्पछेदसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२३
[१७८]	महानिशीथसूत्रं [मूलं]	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२३
[१७९]	आवश्यकमूलसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२४-२५
[१८०]	ओघनिर्युक्तिमूलसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२६
[१८१]	पिण्डनिर्युक्तिमूलसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२६
[१८२]	दशवैकालिकमूलसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२७
[१८३]	उत्तराध्ययनमूलसूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-२८-२९
[१८४]	नन्दी-चूलिकासूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-३०
[१८५]	अनुयोगद्वारचूलिकासूत्रं सटीकं	आगमसुत्ताणि	सटीकं-३०
[१८६]	આગમ-વિષય-દર્શન (આગમ બૃહદ્ વિષયાનુક્રમ)		

પ્રકાશન ૧૩૯ થી ૧૮૬ આગમશ્રુત પ્રકાશને પ્રગટ કરેલ છે.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१८७]	आगमसद्दकोसो - १	अ....औ	पज्जंता
[१८८]	आगमसद्दकोसो - २	क....ध	पज्जंता
[१८९]	आगमसद्दकोसो - ३	न ....य	पज्जंता
[१९०]	आगमसद्दकोसो - ४	र....ह	पज्जंता

પ્રકાશન ૧૮૭ થી ૧૯૦ આગમસુત્ત પગાસણે પ્રગટ કરેલ છે.

[१९१]	आचारसूत्र-हिन्दीअनुवादं	आगमसूत्र-१
[१९२]	सूत्रकृतसूत्र-हिन्दीअनुवाद-	आगमसूत्र-१
[१९३]	स्थानसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-२
[१९४]	समवायसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-२
[१९५]	भगवतीसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-३,४,५
[१९६]	ज्ञाताधर्मकथासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-५
[१९७]	उपासकदशासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-५
[१९८]	अन्तकृद्दशासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-६
[१९९]	अनुत्तरोपपातिकदशासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-६
[२००]	प्रश्नव्याकरणसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र- ६
[२०१]	विपाकश्रुतसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-६
[२०२]	औपपातिकसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-६
[२०३]	राजप्रश्नियसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-६
[२०४]	जीवाजीवाभिगमसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-७
[२०५]	प्रज्ञापनासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-७,८
[२०६]	सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-८
[२०७]	चंद्रप्रज्ञप्तिसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-८
[२०८]	जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२०९]	निरयावलिकासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२१०]	कल्पवतंसिकासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२११]	पुष्पितासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२१२]	पुष्पिचूलिकासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२१३]	वण्हिदशासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२१४]	चतुःशरणसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२१५]	आतुरप्रत्याख्यानसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२१६]	महाप्रत्याख्यानसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२१७]	भक्तपरिज्ञासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२१८]	तंदुलवैचारिकसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-९
[२१९]	संस्तारकसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२०]	गच्छाचारसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२१]	चन्द्रवेध्यकसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२२]	गणिविद्यासूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२३]	देवेन्द्रस्तवसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२४]	वीरस्तवसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२५]	निशीथसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२६]	बृहत्कल्पसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२७]	व्यवहारसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२८]	दशाश्रुतस्कन्धसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२२९]	जीतकल्पसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०
[२३०]	महानिशीथसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१०,११
[२३१]	आवश्यकसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-११
[२३२]	ओघनिर्युक्ति हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-११
[२३३]	पिण्डनिर्युक्ति हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-११
[२३४]	दशवैकालिकसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१२
[२३५]	उत्तराध्ययनसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१२
[२३६]	नन्दीसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१२
[२३७]	अनुयोगद्वारसूत्र-हिन्दीअनुवाद	आगमसूत्र-१२

પ્રકાશન-૧૯૧ થી ૨૩૭ - શ્રી શ્રુત પ્રકાશન નિધિએ પ્રગટ કરેલ છે.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमसूत्र-भाग-९-अनुक्रम

१८ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	वक्षस्कार	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	पहला	१-२१	१७-२३
२	दुसरा	२२-५३	२३-४०
३	तीसरा	५४-१२६	४०-६९
४	चौथा	१२७-२११	६९-९८
५	पांचवां	२१२-२४४	९८-११०
६	छट्ठा	२४५-२४९	११०-१११
७	सातवां	२५०-३६५	१११-१३१

१९ निरयावलिकासूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अध्ययन	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	काल	१-१९	१३२-१४५
२	सुकाल	२०- —	१४५-१४६
३	तीसरे से दसवां	२१- —	१४६- —

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२० कल्पवतंसिकासूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अध्ययन	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	पद्म	१- —	१४७-१४८
२	महापद्म	२- —	१४८- —
३	तीसरे से दसवां	३- ५	१४८- —

२१ पुष्पिकासूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अध्ययन	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	चन्द्र	१-३	१४९-१५०
२	सूर्य	४- —	१५०-१५१
३	शुक्र	५-७	१५१-१५६
४	बहुपुत्रिका	८- —	१५६-१६३
५	पूर्णभद्र	९- —	१६३-१६४
६	माणिभद्र	१०- —	१६४-१६५
७	सातवां से दसवां	११- —	१६५- —

२२ पुष्पचूलिकासूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अध्ययन	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	एक से दश	१-३	१६६-१६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३ वण्हिदसासूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अध्ययन	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	निषध	१-३	१६९-१७२
२	दुसरे से बारहवां	४-५	१७३- —

२४ चतुःशरणसूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	आवश्यक-अर्थाधिकार	१-७	१७४- —
२	मंगल आदि	८-९	१७४- —
३	चार शरण	१०-४८	१७४-१७७
४	दुष्कृत गर्हा	४९-५४	१७७- —
५	सुकृत अनुमोदना	५५-५८	१७७-१७८
६	उपसंहार	५९-६३	१७८- —

२५ आतुरप्रत्याख्यानसूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	प्ररूपणा	१-१०	१७९- —
२	प्रतिक्रमण आदि आलोचना	११-३३	१७९-१८१
३	आलोचना दायक-ग्राहक स्वरूप	३३-३६	१८१- —
४	असमाधिमरण	३७-४५	१८२- —
५	पंडितमरण एवं आराधना	४६-७१	१८२-१८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६ महाप्रत्याख्यानसूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	मंगल	१-२	१८५- —
२	वोसिराना और खामणा	३-७	१८५- —
३	निन्दा-गर्हा इत्यादि	८-१२	१८५- —
४	भावना	१३-१७	१८५-१८६
५	मिथ्यात्वत्याग, आलोचना, प्रायश्चित	१८-३६	१८६-१८७
६	विविध धर्मोपदेश इत्यादि	३७-१४२	१८७-१९३

२७ भक्तपरिज्ञासूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	मंगल एवं ज्ञान की महत्ता	१-४	१९४- —
२	शाश्वत-अशाश्वत सुख	५-७	१९४- —
३	मरण के भेद	८-११	१९४- —
४	आलोचना-प्रायश्चित्त	१२-२३	१९४-१९५
५	व्रत-सामायिक आरोपण आदि	२४-३३	१९५-१९६
६	आचरणा-खामणा-उपदेश आदि	३४-१७२	१९६-२०५

२८ तन्दुलवैचारिकसूत्र-हिन्दीअनुवाद-अनुक्रम

क्रम	अधिकार	अनुक्रम	पृष्ठांक
१	मंगल और द्वार निरूपण	१-३	२०६- —
२	गर्भप्रकरण	५-४२	२०६-२०९
३	प्राणीकी दश दशाएं	४३-५७	२०९-२१०
४	धर्म उपदेश एवं फल	५८-६४	२१०-२१२
५	देह संहनन और आहार आदि	६५-७४	२१२-२१४
६	कालप्रमाण	७५-९५	२१४-२१५
७	अनित्यत्व-अशुचित्वादि प्ररूपणा	९६-११६	२१५-२१७
८	उपदेश एवं उपसंहार	११७-१६१	२१७-२२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

१८ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति

उपांगसूत्र-७-हिन्दी अनुवाद

वक्षस्कार-१

[१] अरिहंत भगवंतो को नमस्कार हो । उस काल, उस समय, मिथिला नामक नगरी थी । वह वैभव, सुरक्षा, समृद्धि आदि विशेषताओं से युक्त थी । मिथिला नगरी के बाहर इशान कोण में माणिभद्र नामक चैत्य–था । जितशत्रु राजा था । धारिणी पटरानी थी । तब भगवान् महावीर वहाँ समवसृत हुए–लोग अपने-अपने स्थानों से खाना हुए, भगवान् ने धर्म-देशना दी । लोग वापस लौट गये ।

[२] उसी समय की बात है, भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी–शिष्य इन्द्रभूति नामक अनगार–जो गौतम गोत्र में उत्पन्न थे, जिनकी ऊँचाई सात हाथ थी, समचतुरस्र संस्थानसंस्थित, जो वज्र-ऋषभ-नाराच-संहनन, कसौटी पर अंकित स्वर्ण-रेखा की आभा लिए हुए कमल के समान जो गौरवर्ण थे, जो उग्र तपस्वी, दीप्ततपस्वी, तप्त-तपस्वी, जो महातपस्वी, प्रबल, घोर, घोर-गुण, घोर-तपस्वी, घोर-ब्रह्मचारी, उत्क्षिप्त-शरीर एवं संक्षिप्त-विपुल-तेजोलेश्य थे । वे भगवान् के पास आये तीन बार प्रदक्षिणा की, वंदन-नमस्कार किया । और बोले–

[३] भगवन् ! जम्बूद्वीप कहाँ है ? कितना बड़ा है ? उसका संस्थान कैसा है ? उसका आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! यह जम्बूद्वीप सब द्वीप-समुद्रों में आभ्यन्तर है–सबसे छोटा है, गोल है, तेल में तले पूए जैसा गोल है, रथ के पहिए जैसा, कमल की कर्णिका जैसा, प्रतिपूर्ण चन्द्र जैसा गोल है, अपने गोल आकार में यह एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा है । इसकी परिधि ३१६२२७ योजन, ३ कोस, १२८ धनुष और साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक है ।

[४] वह एक वज्रमय जगती द्वारा सब ओर से वेष्टित है । वह जगती आठ योजन ऊंची है । मूल में बारह योजन चौड़ी, बीच में आठ योजन चौड़ी और ऊपर चार योजन चौडी है । मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त तथा ऊपर पतली है । उसका आकार गाय की पूंछ जैसा है । वह सर्व रत्नमय, स्वच्छ, सुकोमल, चिकनी, घुटी हुई-सी–तरासी हुई-सी, रज-रहित, मैल-रहित, कर्दम-रहित तथा अव्याहत प्रकाशवाली है । वह प्रभा, कान्ति तथा उद्योत से युक्त है, प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप, मनोज्ञ तथा प्रतिरूप है । उस जगती के चारों ओर एक जालीदार गवाक्ष है । वह आधा योजन ऊंचा तथा ५०० धनुष चौड़ा है । सर्व-रत्नमय, स्वच्छ यावत् अभिरूप और प्रतिरूप है ।

उस जगती के बीचोंबीच एक महती पद्मवरवेदिका है । वह आधा योजन ऊँची और पाँच सौ धनुष चौड़ी है । उसकी परिधि जगती जितनी है । वह स्वच्छ एवं सुन्दर है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्मवरवेदिका का वर्णन जैसा जीवा जीवाभिगमसूत्र में आया है, वैसा ही यहाँ समझ लेना । वह ध्रुव, नियत, शाश्वत (अक्षय, अव्यय, अवस्थित) तथा नित्य है ।

[५] उस जगती के ऊपर तथा पद्मवरवेदिका के बाहर एक विशाल वन-खण्ड है । वह कुछ कम दो योजन चौड़ा है । उसकी परिधि जगती के तुल्य है । उसका वर्णन पूवोक्त आगमों से जान लेना चाहिए ।

[६] उस वन-खंड में एक अत्यन्त समतल रमणीय भूमिभाग है । वह आलिंग-पुष्कर–चर्म-पुट, समतल और सुन्दर है । यावत् बहुविध पंचरंगी मणियों से, तृणों से सुशोभित है । कृष्ण आदि उनके अपने-अपने विशेष वर्ण, गन्ध, रस स्पर्श तथा शब्द हैं । वहाँ पुष्करिणी, पर्वत, मंडप, पृथ्वी-शिलापट्ट हैं । वहाँ अनेक वाणव्यन्तर देव एवं देवियां आश्रय लेते हैं, शयन करते हैं, खड़े होते हैं, बैठते हैं, त्वर्वतन करते हैं, रमण करते हैं, मनोरंजन करते हैं, क्रीडा करते हैं, सुरत-क्रिया करते हैं । यों वे अपने पूर्व आचरित शुभ, कल्याणकर विशेष सुखों का उपभोग करते हैं । उस जगती के ऊपर पद्मवरवेदिका के भीतर एक विशाल वन-खंड है । वह कुछ कम दो योजन चौड़ा है । उसकी परिधि वेदिका जितनी है । वह कृष्ण यावत् तृणों के शब्द से रहित है ।

[७] भगवन् ! जम्बूद्वीप के कितने द्वार हैं ? गौतम ! चार द्वार है–विजय, वैजयन्त, जयन्त तथा अपराजित ।

[८] भगवन् ! जम्बूद्वीप का विजय द्वार कहाँ है ? गौतम ! जम्बूद्वीप स्थित मन्दर पर्वत की पूर्व दिशा में ४५ हजार योजन आगे जाने पर जम्बूद्वीप के पूर्व के अंत में तथा लवणसमुद्र के पूर्वार्ध के पश्चिम में सीता महानदी पर जम्बूद्वीप का विजय द्वार है । वह आठ योजन ऊँचा तथा चार योजन चौड़ा है । उसका प्रवेश–चार योजन का है । वह द्वार श्वेत है । उसकी स्तूपिका, उत्तम स्वर्ण की है । द्वार एवं राजधानी का वर्णन जीवाभिगमसूत्र के समान जानना ।

[९] जम्बूद्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार का अबाधित अन्तर कितना है ?

[१०] गौतम ! वह ७९०५२ योजन एवं कुछ कम आधे योजन का है ।

[११] भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरत नामक वर्ष–क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! चुल्ल हिमवंत पर्वत के दक्षिण में, दक्षिणवर्ती लवणसमुद्र के उत्तर में, पूर्ववर्ती लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिमवर्ती लवणसमुद्र के पूर्व में है । इसमें स्थाणुओं, काँटों, ऊँची-नीची भूमि, दुर्गमस्थानों, पर्वतों, प्रपातों, अवझरों, निर्झरों, गड्ढों, गुफाओं, नदियों, द्रहों, वृक्षों, गुच्छों, गुल्मों, लताओं, विस्तीर्ण वेलों, वनों, वनैले हिंसक पशुओं, तृणों, तस्करों, डिम्बों, विप्लवों, डमरों, दुर्भिक्ष, दुष्काल, पाखण्ड, कृपणों, याचकों, ईति, मारी, कुवृष्टि, अनावृष्टि, रोगों, संक्लेशों, क्षणक्षणवर्ती संक्षोभों की अधिकता है–अधिकांशतः ऐसी स्थितियाँ हैं ।

वह भरतक्षेत्र पूर्व-पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है । उत्तर में पर्यंक-संस्थान और दक्षिण में धनुपृष्ठ-संस्थान-संस्थित है, तीन ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए है । गंगामहानदी, सिन्धुमहानदी तथा वैताढ्यपर्वत से इस भरत क्षेत्र के छह विभाग हो गये हैं । इस जम्बूद्वीप के १९० भाग करने पर भरतक्षेत्र उसका एक भाग होता है । इस प्रकार यह ५२६–६/१९ योजन चौड़ा है । भरत क्षेत्र के ठीक बीच में वैताढ्य पर्वत है, जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरतक्षेत्र को दो भागों में विभक्त करता है । वे दो भाग दक्षिणार्ध भरत तथा उत्तरार्ध भरत हैं ।

[१२] भगवन् ! जम्बूद्वीप में दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! वैताढ्यपर्वत के दक्षिण में, दक्षिण-लवणसमुद्र के उत्तर में, पूर्व-लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिम-लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बू नामक द्वीप के अन्तर्गत है । वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है । यह अर्द्ध-चन्द्र-संस्थान-संस्थित है—तीन ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए है। गंगा और सिन्धु महानदी से वह तीन भागों में विभक्त हो गया है । वह २३८—३/१९ योजन चौड़ा है । उसकी जीवा पूर्व-पश्चिम लम्बी है । वह दो ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श किए हुए है । अपनी पश्चिमी कोटि से—वह पश्चिम-लवण समुद्र का तथा पूर्वी कोटि से पूर्व-लवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए है । दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र की जीवा ९७४८—१२/१९ योजन लम्बी है । उसका धनुष्य-पृष्ठ—दक्षिणार्ध भरत के जीवोपमित भाग का पृष्ठ भाग दक्षिण में ९७६६—१/१९ योजन से कुछ अधिक है । यह परिधि की अपेक्षा से वर्णन है ।

भगवन् ! दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! उसका अति समतल रमणीय भूमिभाग है । वह मुरज के ऊपरी भाग आदि के सदृश समतल है । वह अनेकविध पंचरंगी मणियों तथा तृणों से सुशोभित है । दक्षिणार्ध भरत में मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! दक्षिणार्ध भरत में मनुष्यों का संहनन, संस्थान, ऊँचाई, आयुष्य बहुत प्रकार का है । वे बहुत वर्षों का आयुष्य भोगते हैं । आयुष्य भोगकर कई नरकगति में, कई तिर्यञ्चगति में, कई मनुष्यगति में तथा कई देवगति में जाते हैं और कई सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं परिनिर्वृत्त होते हैं एवं समस्त दुःखों का अन्त करते हैं ।

[१३] भगवन् ! जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में वैताढ्य पर्वत कहाँ है ? गौतम ! उत्तरार्ध भरतक्षेत्र के दक्षिण में, दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र के उत्तर में, पूर्व-लवण समुद्र के पश्चिम में, पश्चिम-लवणसमुद्र के पूर्व में है । वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है। अपने पूर्वी किनारे से पूर्व-लवणसमुद्र का तथा पश्चिमी किनारे से पश्चिमी-लवण-समुद्र का स्पर्श किये हुए है । वह पच्चीस योजन ऊंचा है और सवा छह योजन जमीन में गहरा है । वह पचास योजन लम्बा है । इसकी बाहा—पूर्व-पश्चिम में ४८८—१६/१९ योजन है । उत्तर में वैताढ्यपर्वत की जीवा पूर्वी किनारे से पूर्व-लवणसमुद्र का तथा पश्चिम किनारे से पश्चिमलवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए है । जीवा १०७२—१२/१९ योजन लम्बी है । दक्षिण में उसकी धनुष्यपीठिका की परिधि १०७४३—१५/१९ योजन है । वैताढ्य पर्वत रुचक-संस्थान-संस्थित है, वह सर्वथा रजतमय है । स्वच्छ, सुकोमल, चिकना, घुटा हुआ-सा, तराशा हुआ-सा, रज-रहित, मैल-रहित कर्दम-रहित तथा कंकड़-रहित है । वह प्रभा, कान्ति एवं उद्योत से युक्त है, प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है । वह अपने दोनों पार्श्वभागों में—दो पद्मवरवेदिकाओं तथा वन-खंडों से सम्पूर्णतः घिरा है । वे पद्मवरवेदिकाएँ आधा योजन ऊँची तथा पाँच सौ धनुष चौड़ी हैं, पर्वत जितनी ही लम्बी हैं । वे वन-खंड कुछ कम दो योजन चौड़े हैं, कृष्ण वर्ण तथा कृष्ण आभा से युक्त हैं । वैताढ्य पर्वत के पूर्व-पश्चिम में दो गुफाएं हैं । वे उत्तर-दक्षिण लम्बी तथा पूर्व-पश्चिम चौड़ी हैं । उनकी लम्बाई पचास योजन, चौड़ाई बारह योजन तथा ऊंचाई आठ योजन है । उनके वज्ररत्नमय—कपाट हैं, दो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो भागों के रूप में निर्मित, समस्थित कपाट इतने सघन-निश्छिद्र या निबिड हैं, जिससे गुफाओं में प्रवेश करना दुःशक्य है । उन दोनों गुफाओं में सदा अंधेरा रहता है । वे ग्रह, चन्द्र, सूर्य तथा नक्षत्रों के प्रकाश से रहित हैं, अभिरूप एवं प्रतिरूप हैं । उन गुफाओं के नाम तमिस्रगुफा तथा खंडप्रपातगुफा हैं । वहाँ कृतमालक तथा नृत्यमालक–दो देव निवास करते हैं । वे महान् ऐश्वर्यशाली, द्युतिमान्, बलवान्, यशस्वी, सुखी तथा भाग्यशाली हैं । पल्योपमस्थितिक हैं। उन वनखंडों के भूमिभाग बहुत समतल और सुन्दर हैं । वैताढ्य पर्वत के दोनों पार्श्व में–दश-दश योजन की ऊँचाई पर दो विद्याधर श्रेणियाँ हैं । वे पूर्व-पश्चिम लम्बी तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ी हैं । उनकी चौड़ाई दश-दश योजन तथा लम्बाई पर्वत जितनी ही है । वे दोनों पार्श्व में दो-दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो-दो वनखंडों से परिवेष्टित हैं । वे पद्मवरवेदिकाएं ऊँचाई में आधा योजन, चौड़ाई में पाँच सौ धनुष तथा लम्बाई में पर्वत-जितनी ही हैं । वनखंड भी लम्बाई में वेदिकाओं जितने ही हैं ।

भगवन् ! विद्याधर-श्रेणियों की भूमि का आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! उनका भूमिभाग बड़ा समतल रमणीय है । वह मुरज के ऊपरी भाग आदि की ज्यों समतल है । वह बहुत प्रकार के मणियों तथा तृणों से सुशोभित है । दक्षिणवर्ती विद्याधरश्रेणि में गगनवल्लभ आदि पचास विद्याधर नगर हैं– । उत्तरवर्ती विद्याधर श्रेणि में रथनूपुरचक्रवाल आदि आठ नगर हैं– । इस प्रकार दक्षिणवर्ती एवं उत्तरवर्ती–दोनों विद्याधर-श्रेणियों के नगरों की संख्या ११० है । वे विद्याधर-नगर वैभवशाली, सुरक्षित एवं समृद्ध हैं । वहाँ के निवासी तथा अन्य भागों से आये हुए व्यक्ति वहाँ आमोद-प्रमोद के प्रचुर साधन होने से प्रमुदित रहते हैं । यावत् वह प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है । उन विद्याधरनगरों में विद्याधर राजा निवास करते हैं । वे महाहिमवान् पर्वत के सदृश महत्ता तथा मलय, मेरु एवं महेन्द्र संज्ञक पर्वतों के सदृश प्रधानता या विशिष्टता लिये हुए हैं । भगवन् ! विद्याधरश्रेणियों के मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! वहाँ के मनुष्यों का संहनन, संस्थान, ऊँचाई एवं आयुष्य बहुत प्रकार का है । वे बहुत वर्षों का आयुष्य भोगते हैं यावत् सब दुःखों का अंत करते हैं । उन विद्याधर-श्रेणियों के भूमिभाग से वैताढ्य पर्वत के दोनों ओर दश-दश योजन ऊपर दो आभियोग्य-श्रेणियां, व्यन्तर देव-विशेषों की आवास-पंक्तियां हैं । वे पूर्व-पश्चिम लम्बी तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ी हैं । उनकी चौड़ाई दश-दश योजन तथा लम्बाई पर्वत जितनी है । वे दोनों श्रेणियां अपने दोनों ओर दो-दो पद्मवरवेदिकाओं एवं दो-दो वनखंडों से परिवेष्टित हैं। लम्बाई में दोनों पर्वत-जितनी हैं ।

भगवन् ! आभियोग्य-श्रेणियों का आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! उनका बड़ा समतल, रमणीय भूमिभाग है । मणियों एवं तृणों से उपशोभित है । मणियों के वर्ण, तृणों के शब्द आदि अन्यत्र विस्तार से वर्णित हैं । वहाँ बहुत से देव, देवियां आश्रय लेते हैं, शयन करते हैं, यावत् विशेष सुखों का उपयोग करते हैं । उन अभियोग्य-श्रेणियों में देवराज, देवेन्द्र शक्र के सोम, यम, वरुण तथा वैश्रमण देवों के बहुत से भवन हैं । वे भवन बाहर से गोल तथा भीतर से चौरस हैं । वहाँ देवराज, देवेन्द्र शक्र के अत्यन्त ऋद्धिसम्पन्न, द्युतिमान्, तथा सौख्यसम्पन्न सोम, यम, वरुण एवं वैश्रमण संज्ञक आभियोगिक देव निवास करते हैं । उन आभियोग्य-श्रेणियों के अति समतल, रमणीय भूमिभाग से वैताढ्य पर्वत के दोनों पार्श्व में–

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

पाँच-पाँच योजन ऊँचे जाने पर वैताढ्य पर्वत का शिखर-तल है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है । उसकी चौड़ाई दश योजन है, लम्बाई पर्वत-जितनी है । वह एक पद्मवरवेदिका से तथा एक वनखंड से चारों ओर परिवेष्टित है ।

भगवन् ! वैताढ्य पर्वत के शिखर-तल का आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल तथा रमणीय है । वह मृदंग के ऊपर के भाग जैसा समतल है । वहुविध पंचरंगी मणियों से उपशोभित है । वहाँ स्थान-स्थान पर वावड़ियां एवं सरोवर हैं । वहाँ अनेक वाणव्यन्तर देव, देवियां निवास करते हैं, पूर्व-आचीर्ण पुण्यों का फलभोग करते हैं । भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् भरतक्षेत्र में वैताढ्य पर्वत के कितने कूट हैं ? गौतम ! नौ कूट हैं । सिद्धायतनकूट, दक्षिणार्धभरतकूट, खण्डप्रपातगुहाकूट, मणिभद्रकूट, वैताढ्यकूट, पूर्णभद्रकूट, तमिस्रगुहाकूट, उत्तरार्धभरतकूट, वैश्रमणकूट ।

[१४] भगवन् ! जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में वैताढ्यपर्वत पर सिद्धायतनकूट कहाँ है ? गौतम ! पूर्व लवणसमुद्र के पश्चिम में, दक्षिणार्ध भरतकूट के पूर्व में है । वह छह योजन एक कोस ऊँचा, मूल में छह योजन एक कोस चौड़ा, मध्य में कुछ कम पाँच योजन चौड़ा तथा ऊपर कुछ अधिक तीन योजन चौड़ा है । मूल में उसकी परिधि कुछ कम बाईस योजन, मध्य में कुछ कम पन्द्रह तथा ऊपर कुछ अधिक नौ योजन की है । वह मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त तथा ऊपर पतला है । वह गोपुच्छ-संस्थान-संस्थित है । वह सर्व-रत्नमय, स्वच्छ, सुकोमल तथा सुन्दर है । वह एक पद्मवरवेदिका एवं एक वनखंड से सब ओर से परिवेष्टित है । दोनों का परिमाण पूर्ववत् है । सिद्धायतन कूट के ऊपर अति समतल तथा रमणीय भूमिभाग है । वह मृदंग के ऊपरी भाग जैसा समतल है । वहाँ वाणव्यन्तर देव और देवियां विहार करते हैं । उस भूमिभाग के ठीक बीच में एक बड़ा सिद्धायतन है । वह एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा और कुछ कम एक कोस ऊँचा है । वह अभ्युन्नत, सुरचित वेदिकाओं, तोरणों तथा सुन्दर पुत्तलिकाओं से सुशोभित है । उसके उज्ज्वल स्तम्भ चिकने, विशिष्ट, सुन्दर आकार युक्त उत्तम वैडूर्य मणियों से निर्मित हैं । उसका भूमिभाग विविध प्रकार के मणियों और रत्नों से खचित है, उज्ज्वल है, अत्यन्त समतल तथा सुविभक्त है । उसमें ईहामृग, वृषभ, तुरग, मनुष्य, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, कस्तूरी-मृग, शरभ, चँवर, हाथी, वनलता यावत् पद्मलता के चित्र अंकित हैं । उसकी स्तूपिका स्वर्ण, मणि और रत्नों से निर्मित है । वह सिद्धायतन अनेक प्रकार की पंचरंगी मणियों से विभूषित है । उसके शिखरों पर अनेक प्रकार की पंचरंगी ध्वजाएँ तथा घंटे लगे हैं । वह सफेद रंग का है । वह इतना चमकीला है कि उससे किरणें प्रस्फुटित होती हैं । वहाँ की भूमि गोबर आदि से लिपी है । यावत् सुगन्धित धुएँ की प्रचुरता से वहाँ गोल-गोल धूममय छल्ले से बन रहे हैं ।)

उस सिद्धायतन की तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं । वे द्वार पांच सौ धनुष ऊँचे और ढाई सौ धनुष चौड़े हैं । उनका उतना ही प्रवेश-परिमाण है । उनकी स्तूपिकाएँ श्वेत-उत्तम-स्वर्णनिर्मित हैं । उस सिद्धायतन में बहुत समतल, सुन्दर भूमिभाग है, जो मृदंग आदि के ऊपरी भाग के सदृश समतल है । उस भूमिभाग के ठीक बीच में देवच्छन्दक है । वह पाँच सौ धनुष लम्बा, पाँच सौ धनुष चौड़ा और कुछ अधिक पाँच सौ धनुष ऊँचा है, सर्व रत्नमय है । यहाँ जिनोत्सेध परिमाण–एक सौ आठ जिन-प्रतिमाएँ हैं । यह जिनप्रतिमा का समग्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्णन जीवाजीवाभिगम सूत्रानुसार जान लेना ।

[१५] भगवन् ! वैताढ्य पर्वत का दक्षिणार्ध भरतकूट कहाँ है ? गौतम ! खण्डप्रपातकूट के पूर्व में तथा सिद्धायतनकूट के पश्चिम में है । उसका परिमाण आदि वर्णन सिद्धायतनकूट के बराबर है । दक्षिणार्ध भरतकूट के अति समतल, सुन्दर भूमिभाग में एक उत्तम प्रासाद है । वह एक कोस ऊँचा और आधा कोस चौड़ा है । अपने से निकलती प्रभामय किरणों से वह हँसता-सा प्रतीत होता है, वड़ा सुन्दर है । उस प्रासाद के ठीक बीच में एक विशाल मणिपीठिका है । वह पाँच सौ धनुष लम्बीचौड़ी तथा अढाई सौ धनुष मोटी है, सर्वरत्नमय है । उस मणिपीठिका के ऊपर एक सिंहासन है । भगवन् ! उसका नाम दक्षिणार्ध भरतकूट किस कारण पड़ा ? गौतम ! दक्षिणार्ध भरतकूट पर अत्यन्त ऋद्धिशाली, यावत् एक पल्योपमस्थितिक देव रहता है । उसके चार हजार सामानिक देव, अपने परिवार से परिवृत चार अग्रमहिषियाँ, तीन परिषद्, सात सेनाएं, सात सेनापति तथा सोलह हजार आत्मरक्षक देव हैं । दक्षिणार्ध भरतकूट की दक्षिणार्धा नामक राजधानी है, जहाँ वह अपने इस देव-परिवार का तथा बहुत से अन्य देवों और देवियों का आधिपत्य करता हुआ सुखपूर्वक निवास करता है, विहार करता है–सुख भोगता है । भगवन् ! दक्षिणार्ध भरतकूट देव की दक्षिणार्धा राजधानी कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत के दक्षिण में तिरछे असंख्यात द्वीप और समुद्र लाँघकर जाने पर अन्य जम्बूद्वीप है । वहाँ दक्षिण दिशा में १२०० योजन नीचे जाने पर है । राजधानी का वर्णन विजयदेव की राजधानी सदृश जानना । इसी प्रकार कुटो को जानना । ये क्रमशः पूर्व से पश्चिम की ओर हैं ।

[१६] वैताढ्य पर्वत के मध्य में तीन कूट स्वर्णमय हैं, बाकी के सभी पर्वतकूट रत्नमय हैं ।

[१७] जिस नाम के कूट है, उसी नाम के देव होते है–प्रत्येक देव की एक-एक पल्योपम की स्थिति होती है ।

[१८] मणिभद्रकूट, वैताढ्यकूट एवं पूर्णभद्रकूट–ये तीन कूट स्वर्णमय हैं तथा बाकी के छह कूट रत्नमय हैं । दो पर कृत्यमालक तथा नृत्यमालक नामक दो विसदृश नामों वाले देव रहते हैं । बाकी के छह कूटों पर कूटसदृश नाम के देव रहते हैं । मन्दर पर्वत के दक्षिण में तिरछे असंख्येय द्वीप समुद्रों को लांघते हुए अन्य जम्बूद्वीप में १२००० योजन नीचे जाने पर उनकी राजधानियां हैं । उनका वर्णन विजया राजधानी जैसा समझ लेना ।

[१९] भगवन् ! वैताढ्य पर्वत को 'वैताढ्य पर्वत' क्यों कहते हैं ? गौतम ! वैताढ्य पर्वत भरत क्षेत्र को दक्षिणार्ध भरत तथा उत्तरार्ध भरत नामक दो भागों में विभक्त करता हुआ स्थित है । उस पर वैताढ्यगिरिकुमार नामक परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपमस्थितिक देव निवास करता है । इन कारणों से वह वैताढ्य पर्वत कहा जाता है । इसके अतिरिक्त वैताढ्य पर्वत नाम शाश्वत है । यह नाम कभी नहीं था, ऐसा नहीं है, यह कभी नहीं है, ऐसा भी नहीं है और यह कभी नहीं होगा, ऐसा भी नहीं है । यह था, यह है, यह होगा, यह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित एवं नित्य है ।

[२०] भगवन् ! जम्बूद्वीप में उत्तरार्ध भरत नामक क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, वैताढ्य पर्वत के उत्तर में, पूर्व-लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लवणसमुद्र के पूर्व में है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बा और उत्तर-दक्षिण चौड़ा है, पर्यंक-संस्थान-संस्थित है । वह दोनों तरफ लवण-समुद्र का स्पर्श किये हुए है । वह गंगा तथा सिन्धु महानदी द्वारा तीन भागों में विभक्त है । वह २३८–३/१९ योजन चौड़ा है । उसकी बाहा पूर्व-पश्चिम में १८९२–७॥/१९ योजन लम्बा है । उसकी जीवा उत्तर में पूर्व-पश्चिम लम्बी है, लवणसमुद्र का दोनों ओर से स्पर्श किये हुए है । इसकी लम्बाई कुछ कम १४४७१–३/१९ योजन है । उसकी धनुष्य-पीठिका दक्षिण में १४५२८–११/१९ योजन है । यह प्रतिपादन परिक्षेप-परिधि की अपेक्षा से है ।

भगवन् ! उत्तरार्ध भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय है । वह मुरज या ढोलक के ऊपरी भाग जैसा समतल है, कृत्रिम तथा अकृत्रिम मणियों से सुशोभित है । उत्तरार्ध भरत में मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! उत्तरार्ध भरत में मनुष्यों का संहनन आदि विविध प्रकार का है । वे बहुत वर्षों आयुष्य भोगकर यावत् सिद्ध, होते हैं, समस्त दुःखों का अन्त करते हैं ।

[२१] भगवन् ! जम्बूद्वीप में उत्तरार्ध भरतक्षेत्र में ऋषभकूट पर्वत कहाँ है ? गौतम ! हिमवान् पर्वत के जिस स्थान से गंगा महानदी निकलती है, उसके पश्चिम में, जिस स्थान से सिन्धु महानदी निकलती है, उनके पूर्व में, चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत के दक्षिणी मेखला–सन्निकटस्थ प्रदेश में है । वह आठ योजन ऊँचा, दो योजन गहरा, मूल में आठ योजन चौड़ा, बीच में छह योजन चौड़ा तथा ऊपर चार योजन चौड़ा है । मूल में कुछ अधिक पच्चीस योजन, मध्य में कुछ अधिक अठारह योजन तथा ऊपर कुछ अधिक बारह योजन परिधि युक्त है । मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त तथा ऊपर पतला है । वह गोपुच्छ-संस्थान-संस्थित है, सम्पूर्णतः जम्बूनद-स्वर्णमय है, स्वच्छ, सुकोमल एवं सुन्दर है । वह एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड द्वारा चारों ओर से परिवेष्टित है । वह भवन एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा, कुछ कम एक कोस ऊँचा है । वहाँ उत्पल, पद्म आदि हैं । ऋषभकूट के अनुरूप उनकी अपनी प्रभा है । वहाँ परम समृद्धिशाली ऋषभ देव का निवास है, उसकी राजधानी है, इत्यादि पूर्ववत् जान लेना ।

वक्षस्कार-१-का मुनिदीपरत्नसागरकृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

वक्षस्कार-२

[२२] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् भरतक्षेत्र में कितने प्रकार का काल है ? गौतम ! दो प्रकार का, अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी काल । अवसर्पिणी काल कितने प्रकार का है ? गौतम ! छह प्रकार का, सुषम-सुषमाकाल, सुषमाकाल, सुषम-दुःषमाकाल, दुःषम-सुषमाकाल, दुःषमाकाल, दुःषम-दुःषमाकाल । उत्सर्पिणी काल कितने प्रकार का है ? गौतम ! छह प्रकार का, दुःषम-दुःषमाकाल यावत् सुषम-सुषमाकाल । भगवन् ! एक मुहूर्त्त में कितने उच्छ्वास-निःश्वास हैं ? गौतम ! असंख्यात समयों के समुदाय रूप सम्मिलित काल को आवलिका कहा गया है । संख्यात आवलिकाओं का एक उच्छ्वास तथा संख्यात आवलिकाओं का एक निःश्वास होता है ।

[२३] हृष्ट-पुष्ट, अग्लान, नीरोग मनुष्य का एक उच्छ्वास-निःश्वास प्राण कहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता है ।

[२४] सात प्राणों का एक स्तोक, सात स्तोकों का एक लव, ७७ लवों का एक मुहूर्त्त होता है ।

[२५]उच्छ्वास-निःश्वास का एक मुहूर्त्त होता है ।

[२६] इस मुहूर्त्तप्रमाण से तीस मुहूर्त्तों का एक अहोरात्र, पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष, दो पक्षों का एक मास, दो मासों की एक ऋतु, तीन ऋतुओं का एक अयन, दो अयनों का एक संवत्सर–वर्ष, पांच वर्षों का एक युग, बीस युगों का एक वर्ष-शतक, दश वर्षशतकों का एक वर्ष-सहस्र, सौ वर्षसहस्रों का एक लाख वर्ष, चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वांग, चौरासी लाख पूर्वांगों का एक पूर्व होता है । ८४ लाख पूर्वों का एक त्रुटितांग, ८४ लाख त्रुटितांगों का एक त्रुटित, ८४ लाख त्रुटितों का एक अडडांग, ८४ लाख अडडांगों का एक अडड, ८४ लाख अडडों का एक अववांग, ८४ लाख अववांगों का एक अवव, ८४ लाख अववों का एक हुहुकांग, ८४ लाख हुहुकांगों का एक हुहुक, ८४ लाख हुहुकों का एक उत्पलांग, ८४ लाख उत्पलांगों का एक उत्पल, ८४ लाख उत्पलों का एक पद्मांग, ८४ लाख पद्मांगों का एक पद्म, ८४ लाख पद्मों का एक नलिनांग, ८४ लाख नलिनांगों का एक नलिन, ८४ लाख नलिनों का एक अर्थनिपुरांग, ८४ लाख अर्थनिपुरांगों का एक अर्थनिपुर, ८४ लाख अर्थनिपुरों का एक अयुतांग, ८४ लाख अयुतांगों का एक अयुत, ८४ लाख अयुतों का एक नयुतांग, ८४ लाख नयुतांगों का एक नयुत, ८४ लाख नयुतों का एक प्रयुतांग, ८४ लाख प्रयुतांगों का एक प्रयुत, ८४ लाख प्रयुतों का एक चूलिकांग, ८४ लाख चूलिकांगों की एक चूलिका, ८४ लाख चूलिकाओं का एक शीर्षप्रहेलिकांग तथा ८४ लाख शीर्षप्रहेलिकांगों की एक शीर्षप्रहेलिका होती है । यहाँ तक ही गणित का विषय है । यहाँ से आगे औपमिक काल है ।

[२७] भगवन् ! औपमिक काल का क्या स्वरूप है ? गौतम ! औपमिक काल दो प्रकार का है–पल्योपम तथा सागरोपम । पल्योपम का क्या स्वरूप है ? गौतम ! पल्योपम की प्ररूपणा करूँगा–परमाणु दो प्रकार का है–सूक्ष्म तथा व्यावहारिक परमाणु । अनन्त सूक्ष्म परमाणु-पुद्गलों के एक-भावापन्न समुदाय से व्यावहारिक परमाणु निष्पन्न होता है । उसे शस्त्र काट नहीं सकता ।

[२८] कोई भी व्यक्ति उसे तेज शस्त्र द्वारा भी छिन्न-भिन्न नहीं कर सकता । ऐसा सर्वज्ञों ने कहा है । वह (व्यावहारिक परमाणु) सभी प्रमाणों का आदि कारण है ।

[२९] अनन्त व्यावहारिक परमाणुओं के समुदाय-संयोग से एक उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका होती है । आठ उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकाओं की एक श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका होती है । आठ श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकाओं का एक उर्ध्वरेणु होता है । आठ उर्ध्वरेणुओं का एक त्रसरेणु होता है। आठ त्रसरेणुओं का एक रथरेणु होता है । आठ रथरेणुओं का देवकुरु तथा उत्तरकुरु निवासी मनुष्यों का एक बालाग्र होता है । इन आठ बालाग्रों का हरिवर्ष तथा रम्यकवर्ष निवासी मनुष्यों का एक बालाग्र होता है । इन आठ बालाग्रों का हैमवत तथा हैरण्यवत निवासी मनुष्यों का एक बालाग्र होता है । इन आठ बालाग्रों का पूर्वविदेह एवं अपरविदेह निवासी मनुष्यों का एक बालाग्र होता है । इन आठ बालाग्रों की एक लीख होती है । आठ लीखों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की एक जूं होती है । आठ जूओं का एक यवमध्य होता है । आठ यवमध्यों का एक अंगुल होता है । छः अंगुलों का एक पाद होता है । बारह अंगुलों की एक वितस्ति होती है । चौवीस अंगुलों की एक रत्नि होता है । अड़तालीस अंगुलों की एक कुक्षि होती है । छियानवे अंगुलों का एक अक्ष होता है । इसी तरह छियानवे अंगुलों का एक दंड, धनुष, जुआ, मूसल तथा नलिका होती है । २००० धनुषों का एक गव्यूत–होता है । चार गव्यूतों का एक योजन होता है ।

इस योजन-परिमाण से एक योजन लम्बा, एक योजन चौड़ा, एक योजन ऊँचा तथा इससे तीन गुनी परिधि युक्त पल्य हो । देवकुरु तथा उत्तरकुरु में एक दिन, यावत् अधिकाधिक सात दिन-रात के जन्मे यौगलिक के प्ररूढ बालाग्रों से उस पल्य को इतने सघन, ठोस, निचित, निबिड रूप में भरा जाए कि वे बालाग्र न खराब हों, न विध्वस्त हों, न उन्हें अग्नि जला सके, न वायु उड़ा सके, न वे सड़े-गलें । फिर सौ-सौ वर्ष के बाद एक-एक बालाग्र निकाले जाते रहने पर जब वह पल्य बिल्कुल खाली हो जाए, बालाग्रों से रहित हो जाए, निर्लिप्त हो जाए, तब तक का समय एक पल्योपम कहा जाता है ।

[३०] ऐसे कोड़ाकोड़ी पल्योपम का दस गुना एक सागरोपम का परिमाण है ।

[३१] ऐसे सागरोपम परिमाण से सुषमसुषमा का काल चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम, सुषमा का काल तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम, सुषमदुःषमा का काल दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम, दुःषमसुषमा का काल ४२००० वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम, दुःषमा का काल २१००० वर्ष तथा दुःषमदुःषमा का काल २१००० वर्ष है । अवसर्पिणी काल के छह आरों का परिमाण है । उत्सर्पिणी काल का परिमाण इससे उलटा है । इस प्रकार अवसर्पिणी का काल दस सागरोपम कोड़ाकोड़ी तथा उत्सर्पिणी का काल भी दस सागरोपम कोड़ाकोड़ी हैं । दोनों का काल बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ।

[३२] जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल के सुषमसुषमा नामक प्रथम आरे में, जब वह अपने उत्कर्ष की पराकाष्ठा में था, भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप अवस्थिति–सब किस प्रकार का था ? गौतम ! उसका भूमिभाग बड़ा समतल तथा रमणीय था । मुरज के ऊपरी भाग की ज्यों वह समतल था । नाना प्रकार के काले यावत् सफेद मणियों एवं तृणों से वह उपशोभित था । इत्यादि वर्णन पूर्ववत् । उस समय भरतक्षेत्र में उद्दाल, कुद्दाल, मुद्दाल, कृत्तमाल, नृत्तमाल, दन्तमाल, नागमाल, श्रृंगमाल, शंखमाल तथा श्वेतमाल नामक वृक्ष थे । उनकी जड़े डाभ तथा दूसरे प्रकार के तृणों से रहित थीं । वे उत्तम मूल, कंद, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल तथा बीज से सम्पन्न थे । वे पत्तों, फूलों और फलों से ढके रहते तथा अतीव कान्ति से सुशोभित थे । उस समय भरतक्षेत्र में जहाँ-तहाँ बहुत से भेरुताल, हेरुताल, मेरुताल, प्रभताल, साल, सरल, सप्तपर्ण, सुपारी, खजूर तथा नारियल के वृक्षों के वन थे । उनकी जड़ें डाभ तथा दूसरे प्रकार के तृणों से रहित थीं ।

उस समय भरतक्षेत्र में जहाँ-तहाँ अनेक सेरिका, नवमालिका, कोरंटक, बन्धुजीवक, मनोऽवद्य, बीज, बाण, कर्णिकार, कुब्जक, सिंदुवार, मुद्गर, यूथिका, मल्लिका, वासंतिका, वस्तुल, कस्तुल, शैवाल, अगस्ति, मगदंतिका, चंपक, जाती, नवनीतिका, कुन्द तथा महाजाती के गुल्म थे । वे रमणीय, बादलों की घटाओं जैसे गहरे, पंचरंगे फूलों से युक्त थे । वायु से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकंपित अपनी शाखाओं के अग्रभाग से गिरे हुए फूलों से वे भरतक्षेत्र के अति समतल, रमणीय भूमिभाग को सुरभित बना देते थे । भरतक्षेत्र में उस समय जहाँ-तहाँ अनेक पद्मलताएँ यावत् श्यामलताएँ थीं । वे लताएँ सब ऋतुओं में फूलती थीं, यावत् कलंगियाँ धारण किये रहती थीं । उस समय भरतक्षेत्र में जहाँ-तहाँ बहुत सी वनराजियाँ–थीं । वे कृष्ण, कृष्ण आभायुक्त इत्यादि अनेकविध विशेषताओं से विभूषित थीं । पुष्प-पराग के सौरभ से मत्त भ्रमर, कोरंक, भृंगारक, कुंडलक, चकोर, नन्दीमुख, कपिल, पिंगलाक्षक, करंडक, चक्रवाक, बतक, हंस आदि अनेक पक्षियों के जोड़े उनमें विचरण करते थे । वे वनराजियाँ पक्षियाँ के मधुर शब्दों से सदा प्रतिध्वनित रहती थीं । उन वनराजियों के प्रदेश कुसुमों का आसव पीने को उत्सुक, मधुर गुंजन करते हुए भ्रमरियों के समूह से परिवृत, दृप्त, मत्त भ्रमरों की मधुर ध्वनि से मुखरित थे । वे वनराजियाँ भीतर की ओर फलों से तथा बाहर की ओर पुष्पों से आच्छन्न थीं । वहाँ के फल स्वादिष्ट होते थे । वहाँ का वातावरण नीरोग था । वे काँटों से रहित थीं। तरह-तरह के फूलों के गुच्छों, लताओं के गुल्मों तथा मंडपों से शोभित थीं । मानो वे उनकी अनेक प्रकार की सुन्दर ध्वजाएँ हों । वावड़ियाँ, पुष्करिणी, दीर्घिका–इन सब के ऊपर सुन्दर जालगृह बने थे । वे वनराजियाँ ऐसी तृप्तिप्रद सुगन्ध छोड़ती थीं, जो बाहर निकलकर पुंजीभूत होकर बहुत दूर फैल जाती थीं, बड़ी मनोहर थीं । उन वनराजियों में सब ऋतुओं में खिलने वाले फूल तथा फलने वाले फल प्रचुर मात्रा में पैदा होते थे । वे सुरम्य, प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप तथा प्रतिरूप थीं ।

[३३] उस समय भरतक्षेत्र में जहाँ-तहाँ मत्तांग नामक कल्पवृक्ष-समूह थे । वे चन्द्रप्रभा, मणिशिलिका, उत्तम मदिरा, उत्तम वारुणी, उत्तम वर्ण, गन्ध, रस तथा स्पर्श युक्त, बलवीर्यप्रद सुपरिपक्व पत्तों, फूलों और फलों के रस एवं बहुत से अन्य पुष्टिप्रद पदार्थों से संयोग से निष्पन्न आसव, मधु, मेरक, सुरा और भी बहुत प्रकार के मद्य, तथाविध क्षेत्र, सामग्री के अनुरूप फलों से परिपूर्ण थे । उनकी जड़ें डाभ तथा दूसरे प्रकार के तृणों से विशुद्ध–रहित थीं । इसी प्रकार यावत् अनेक कल्पवृक्ष थे ।

[३४] उस समय भरतक्षेत्र में मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा था ? गौतम ! उस समय वहाँ के मनुष्य बड़े सुन्दर, दर्शनीय, अभिरूप एवं प्रतिरूप थे । उनके चरण–सुन्दर रचना युक्त तथा कछुए की तरह उठे हुए होने से मनोज्ञ प्रतीत होते थे इत्यादि वर्णन पूर्ववत् । भगवन् ! उस समय भरतक्षेत्र में स्त्रियों का आकार-स्वरूप कैसा था ? गौतम ! वे स्त्रियां–उस काल की स्त्रियाँ श्रेष्ठ तथा सर्वांगसुन्दरियाँ थीं । वे उत्तम महिलोचित गुणों से युक्त थीं। उनके पैर अत्यन्त सुन्दर, विशिष्ट प्रमाणोपेत, मृदुल, सुकुमार तथा कच्छपसंस्थान-संस्थित थे। पैरों की अंगुलियाँ सरल, कोमल, परिपुष्ट–एवं सुसंगत थीं । अंगुलियों के नख समुन्नत, रतिद, पतले, ताम्र वर्ण के हलके लाल, शुचि, स्निग्ध थे । उनके जंघा-युगल रोम रहित, वृत्त, रम्य-संस्थान युक्त, उत्कृष्ट, प्रशस्त लक्षण युक्त, अद्वेष्य थे । उनके जानु-मंडल सुनिर्मित, सुगूढ तथा अनुपलक्ष्य थे, सुदृढ स्नायु-बंधनों से युक्त थे । उनके ऊरु केले के स्तंभ जैसे आकार से भी अधिक सुन्दर, घावों के चिह्नों से रहित, सुकुमार, सुकोमल, मांसल, अविरल, सम, सदृश-परिमाण युक्त, सुगठित, सुजात, वृत्त, गोल, पीवर, निरंतर थे । उनके श्रोणिप्रदेश अखंडित द्यूत-फलक जैसे आकार युक्त प्रशस्त, विस्तीर्ण, तथा भारी थे । विशाल, मांसल,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुगठित और अत्यन्त सुन्दर थे । उनकी देह के मध्यभाग वज्ररत्न जैसे सुहावने, उत्तम लक्षण युक्त, विकृत उदर रहित, त्रिवली युक्त, गोलाकार एवं पतले थे । उनकी रोमराजियाँ सरल, सम, संहित, उत्तम, पतली, कृष्ण वर्णयुक्त, चिकनी, आदेय, लालित्यपूर्ण, तथा सुरचित, सुविभक्त, कान्त, शोभित और रुचिकर थीं । नाभि गंगा के भंवर की तरह गोल, घुमावदार, सुन्दर, विकसित होते कमलों के समान विकट थीं । उनके कुक्षिप्रदेश, अस्पष्ट, प्रशस्त, थे । पसवाड़े सन्नत, संगत, सुनिष्पन्न, मनोहर थे । देहयष्टियां मांसलता लिए थीं, वे देदीप्यमान, निर्मल, सुनिर्मित, निरुपहत थीं । उनके स्तन स्वर्ण-घट सदृश थे, परस्पर समान, संहित से, सुन्दर अग्रभाग युक्त, सम श्रेणिक, गोलाकार, अभ्युन्नत, कठोर तथा स्थूल थे । भुजाएँ सर्प की ज्यों क्रमशः नीचे की ओर पतली, गाय की पूंछ की ज्यों गोल, परस्पर समान, नमित आदेय तथा सुललित थीं । नख तांबे की ज्यों कुछ-कुछ लाल थे । यावत् वे सुन्दर, दर्शनीया, अभिरूपा एवं प्रतिरूपा थी ।

भरतक्षेत्र के मनुष्य ओघस्वर, मधुर स्वर युक्त, क्रौंच स्वर से युक्त तथा नन्दी स्वर युक्त थे । उनका स्वर एवं घोष या गर्जना सिंह जैसी जोशीली थी । स्वर तथा घोष में निराली शोभा थी । देह में अंग-अंग प्रभा से उद्योतित थे । वे वज्रऋषभनारचसंहनन, समचौरस संस्थानवाले थे । चमड़ी में किसी प्रकार का आतंक नहीं था । वे देह के अन्तर्वर्ती पवन के उचित वेग, कंक पक्षी की तरह निर्दोष गुदाशय से युक्त एवं कबूतर की तरह प्रबल पाचनशक्ति वाले थे । उनके अपान-स्थान पक्षी की ज्यों निर्लेप थे । उनके पृष्ठभाग तथा ऊरु सुदृढ़ थे। वे छह हजार धनुष ऊँचे होते थे । मनुष्यों के पसलियों की दो सौ छप्पन हड्डियां होती थीं। उनकी सांस पद्म एवं उत्पल की-सी अथवा पद्म तथा कुष्ठ नामक गन्ध-द्रव्यों की-सी सुगन्ध लिए होते थे, जिससे उनके मुंह सदा सुवासित रहते थे । वे मनुष्य शान्त प्रकृति के थे । उनके जीवन में क्रोध, मान, माया और लोभ की मात्रा मन्द थी । उनका व्यवहार मृदु, सुखावह था । वे आलीन, गुप्त, चेष्टारत थे । वे भद्र, विनीत, अल्पेच्छ, संग्रह नहीं रखनेवाले, भवनों की आकृति के वृक्षों के भीतर वसनेवाले और इच्छानुसार काम भोग भोगनेवाले थे ।

[३५] भगवन् ! उन मनुष्यों को कितने समय बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है ? हे गौतम ! तीन दिन के बाद होती है । कल्पवृक्षों से प्राप्त पृथ्वी तथा पुष्प-फल का आहार करते हैं । उस पृथ्वी का आस्वाद कैसा होता है ? गौतम ! गुड़, खांड, शक्कर, मत्स्यंडिका, राव, पर्पट, मोदक, मृणाल, पुष्पोत्तर, पद्मोत्तर, विजया, महाविजया, आकाशिका, आदर्शिका, आकाशफलोपमा, उपमा तथा अनुपमा, उस पृथ्वी का आस्वाद इनसे इष्टतर यावत् अधिक मनोगम्य होता है ।

भगवन् ! उन पुष्पों और फलों का आस्वाद कैसा होता है ? गौतम ! तीन समुद्र तथा हिमवान् पर्यन्त छह खंड के साम्राज्य के अधिपति चक्रवर्ती सम्राट् का भोजन एक लाख स्वर्ण-मुद्राओं के व्यय से निष्पन्न होता है । वह कल्याणकर, प्रशस्त वर्ण यावत् प्रशस्त स्पर्शयुक्त होता है, आस्वादनीय, विस्वादनीय, दीपनीय, दर्पणीय, मदनीय, बृंहणीय, उपचित एवं प्रह्लादनीय; ऐसे उन पुष्पों एवं फलों का आस्वाद उस भोजन से इष्टतर होता है ।

[३६] भगवन् ! वे मनुष्य वैसा आहार का सेवन करते हुए कहाँ निवास करते हैं ? हे गौतम ! वे मनुष्य-वृक्ष-रूप घरों में निवास करते हैं । उन वृक्षों का आकार-स्वरूप कैसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है ? गौतम ! वे वृक्ष कूट, प्रेक्षागृह, छत्र, स्तूप, तोरण, गोपुर, वेदिका, चोप्फाल, अट्टालिका, प्रासाद, हर्म्य, हवेलियां, गवाक्ष, वालाग्रपोतिका तथा वलभीगृह सदृश संस्थान-संस्थित हैं । इस भरतक्षेत्र में और भी बहुत से ऐसे वृक्ष हैं, जिनके आकार उत्तम, विशिष्ट भवनों जैसे हैं, जो सुखप्रद शीतल छाया युक्त हैं ।

[३७] भगवन् ! उस समय भरतक्षेत्र में क्या घर होते हैं ? क्या गेहापण-बाजार होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । उन मनुष्यों के वृक्ष ही घर होते हैं । क्या उस समय भरतक्षेत्र में ग्राम यावत् सन्निवेश होते है ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । वे मनुष्य स्वभावतः यथेच्छ-विचरणशील होते हैं । क्या उस समय भरतक्षेत्र में असि, मषि, कृषि, वणिक्-कला, पण्य अथवा व्यापार-कला होती है ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । वे मनुष्य असि आदि जीविका से विरहित होते हैं । भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में चांदी, सोना, कांसी, वस्त्र, मणियां, मोती, शंख, शिला, रक्तरत्न, ये सब होते हैं ? हाँ, गौतम ! ये सब होते हैं, किन्तु उन मनुष्यों के परिभोग में नहीं आते ।

क्या उस समय भरतक्षेत्र में राजा, युवराज, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति और सार्थवाह होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । वे मनुष्य ऋद्धि–वैभव तथा सत्कार आदि से निरपेक्ष होते हैं । भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में दास, प्रेष्य, शिष्य, भृतक, भागिक, हिस्सेदार तथा कर्मकर होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । वे मनुष्य स्वामी-सेवक-भाव से अतीत होते हैं । क्या उस समय भरतक्षेत्र में माता, पिता, भाई, बहिन, पत्नी, पुत्र, पुत्री तथा पुत्र-वधू ये सब होते हैं ? गौतम ! ये सब वहाँ होते हैं, परन्तु उन मनुष्यों का उनमें तीव्र प्रेम-बन्ध उत्पन्न नहीं होता । क्या उस समय भरतक्षेत्र में अरि, वैरिक, घातक, वधक, प्रत्यनीक अथवा प्रत्यमित्र होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता। वे मनुष्य वैरानुबन्ध-रहित होते हैं–क्या उस समय भरतक्षेत्र में मित्र, वयस्य, साथी, ज्ञातक, संघाटिक, मित्र, सुहृद् अथवा सांगतिक होते हैं ? गौतम ! ये सब वहाँ होते हैं, परन्तु उन मनुष्यों का उनमें तीव्र राग-बन्धन उत्पन्न नहीं होता ।

भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में आवाह, विवाह, श्राद्ध–लोकानुगत मृतक-क्रिया तथा मृत-पिण्ड-निवेदन होते हैं ? आयुष्मन् श्रमण गौतम ! ये सब नहीं होते । वे मनुष्य आवाह, विवाह, यज्ञ, श्राद्ध, स्थालीपाक तथा मृत-पिंड-निवेदन से निरपेक्ष होते हैं । क्या उस समय भरतक्षेत्र में इन्द्रोत्सव, स्कन्दोत्सव, नागोत्सव, यक्षोत्सव, कूपोत्सव, तडागोत्सव, द्रहोत्सव, नद्युत्सव, वृक्षोत्सव, पर्वतोत्सव, स्तूपोत्सव तथा चैत्योत्सव होते हैं ? गौतम ! ये नहीं होते । वे मनुष्य उत्सवों से निरपेक्ष होते हैं । क्या उस समय भरतक्षेत्र में नट, नर्तक, जल्ल, मल्ल, मौष्टिक, विडंबक, कथक, प्लवक अथवा लासक हेतु लोग एकत्र होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । क्योंकि उन मनुष्यों के मन में कौतूहल देखने की उत्सुकता नहीं होती । भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में शकट, रथ, यान, युग्य, गिल्लि, थिल्लि, शिबिका तथा स्यन्दमानिका होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता, क्योंकि वे मनुष्य पादचारविहारी होते हैं । क्या उस समय भरतक्षेत्र में गाय, भैंस, बकरी, भेड़ होते हैं ? गौतम ! ये पशु होते हैं किन्तु उन मनुष्यों के उपयोग में नहीं आते । क्या उस समय भरतक्षेत्र में घोड़े, ऊँट, हाथी, गाय, गवय, बकरी, भेड़, प्रश्रय, पशु, मृग, वराह, रुरु, शरभ, चँवर, शबर, कुरंग तथा गोकर्ण होते हैं ? गौतम !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये होते हैं, किन्तु उन मनुष्यों के उपयोग में नहीं आते । क्या उस समय भरतक्षेत्र में सिंह, व्याघ्र, वृक, द्वीपिक, ऋच्छ, तरक्ष, व्याघ्र, श्रृगाल, बिडाल, शुनक, कोकन्तिक, कोलशुनक ये सब होते हैं ? गौतम ! ये सब होते हैं, पर वे उन मनुष्यों को आबाधा, व्याबाधा, नहीं पहुंचाते और न उनका छविच्छेद करते हैं । क्योंकि वे श्वापद प्रकृति से भद्र होते हैं ।

क्या उस समय भरतक्षेत्र में शाली, व्रीहि, गेहूँ, जौ, यवयव, कलाय, मसूर, मूँग, उड़द, तिल, कुलथी, निष्पाव, चौला, अलसी, कुसुम्भ, कोद्रव, वरक, रालक, सण, सरसों, मूलक ये सब होते हैं ? गौतम ! ये होते हैं, पर उन मनुष्यों के उपयोग में नहीं आते । क्या उस समय भरतक्षेत्र में गर्त, दरी, अवपात, प्रपात, विषम, कर्दममय स्थान–ये सब होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । उस समय भरतक्षेत्र में बहुत समतल तथा रमणीय भूमि होती है। वह मुरज के ऊपरी भाग आदि की ज्यों एक समान होती है । क्या उस समय भरतक्षेत्र में स्थाणु, शाखा, ठूंठ, कांटे, तृणों का तथा पत्तों का कचरा–ये होते हैं । गौतम ! ऐसा नहीं होता । वह इन सबसे रहित होती है । क्या उस समय भरतक्षेत्र में डांस, मच्छर, जूंयें, लीखें, खटमल तथा पिस्सू होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । वह भूमि डांस आदि उपद्रव-विरहित होती है । क्या उस समय भरतक्षेत्र में साँप और अजगर होते हैं ? गौतम ! होते हैं, पर वे मनुष्यों के लिए आबाधाजनक इत्यादि नहीं होते । आदि प्रकृति से भद्र होते हैं ।

भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में डिम्ब, डमर, कलह, बोल, क्षार, वैर, महायुद्ध, महासंग्राम, महाशस्त्र-पतन, महापुरुष-पतन तथा महारुधिर-निपतन ये सब होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । वे मनुष्य वैरानुबन्ध–से रहित होते हैं । क्या उस समय भरतक्षेत्र में दुर्भूत, कुल-रोग, ग्राम-रोग, मंडल-रोग, पोट्ट-रोग, शीर्ष-वेदना, कर्ण-वेदना, ओष्ठ-वेदना, नेत्र-वेदना, नख-वेदना, दंतवेदना, खांसी, श्वास, शोष, दाह, अर्श, अजीर्ण, जलोदर, पांडुरोग, भगन्दर, ज्वर, इन्द्रग्रह, धनुर्ग्रह, स्कन्धग्रह, कुमाग्रह, यक्षग्रह, भूतग्रह आदि उन्मत्तता हेतु व्यन्तरदेव कृत् उपद्रव, मस्तक-शूल, हृदय-शूल, कुक्षि-शूल, योनि-शूल, गाँव यावत् सन्निवेश में मारि, जन-जन के लिए व्यसनभूत, अनार्य, प्राणि-क्षय–आदि द्वारा गाय, बैल आदि प्राणियों का नाश, जन-क्षय, कुल-क्षय–ये सब होते हैं ? गौतम ! वे मनुष्य रोग तथा आतंक–से रहित होते हैं ।

[३८] भगवन् ! उस समय भरतक्षेत्र में मनुष्यों की स्थिति–आयुष्य कितने काल का होता है ? गौतम ! आयुष्य जघन्य–कुछ कम तीन पल्योपम का तथा उत्कृष्ट–तीन पल्योपम का होता है । उस समय भरतक्षेत्र में मनुष्यों के शरीर कितने ऊँचे होते हैं ? गौतम ! जघन्यतः कुछ कम तीन कोस तथा उत्कृष्टतः तीन कोस ऊँचे होते हैं । उन मनुष्यों का संहनन कैसा होता है ? गौतम ! वज्र-ऋषभ-नाराच होता हैं । उन मनुष्यों का दैहिक संस्थान कैसा होता है ? गौतम ! सम-चौरस-संस्थान-संस्थित होते हैं । उनकी पसलियों २५६ होती हैं । वे मनुष्य अपना आयुष्य पूरा कर कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! जब उनका आयुष्य छह मास बाकी रहता है, वे एक युगल उत्पन्न करते हैं । उनपचास दिन-रात उनका पालन तथा संगोपन कर वे खांस कर, छींक कर, जम्हाई लेकर शारीरिक कष्ट, व्यथा तथा परिताप का अनुभव नहीं करते हुए, काल-धर्म को प्राप्त होकर स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं। उन मनुष्यों का जन्म स्वर्ग में ही होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस समय भरतक्षेत्र में कितने प्रकार के मनुष्य होते हैं ? गौतम ! छह प्रकार के, पद्मगन्ध, मृगगंध, अमम, तेजस्वी, सहनशील तथा शनैश्चारी ।

[३९] गौतम ! प्रथम आरक का जब चार सागर कोडा-कोडी काल व्यतीत हो जाता है, तब अवसर्पिणी काल का सुषमा नामक द्वितीय आरक प्रारम्भ हो जाता है । उसमें अनन्त वर्ण, अनन्तगंध, अनन्तरस, अनन्तस्पर्श, अनन्त संहनन, अनन्त संस्थान, अनन्त-उच्चत्व, अनन्त आयु, अनन्त गुरु-लघु, अनन्त अगुरु-लघु, अनन्त उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुरुषाकार-पराक्रम इनक सब पर्याय की अनन्तगुण परिहानि होती है । जम्बूद्वीप के अन्तर्गत इस अवसर्पिणी के सुषमा नामक आरक में उत्कृष्टता की पराकाष्ठा-प्राप्त समय में भरतक्षेत्र का कैसा आकार स्वरूप होता है ? गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय होता है। मुरज के ऊपरी भाग जैसा समतल होता है । सुषम-सुषमा के वर्णन समान जानना । उससे इतना अन्तर है–उस काल के मनुष्य ४००० धनुष की अवगाहनावाले होते हैं । शरीर की ऊँचाई दो कोस, पसलियां १२८, दो दिन बीतने पर भोजन की इच्छा, यौगलिक बच्चों की चौसठ दिन तक सार-सम्हाल, और आयु दो पल्योपम की होती है । शेष पूर्ववत् । उस समय चार प्रकार के मनुष्य होते हैं–प्रवर-श्रेष्ठ, प्रचुरजंघ, कुसुम सदृश सुकुमार, सुशमन ।

[४०] गौतम ! द्वितीय आरक का तीन सागरोपम कोडाकोडी काल व्यतीत हो जाता है, तब अवसर्पिणी-काल का सुषम-दुःषमा नामक तृतीय आरक प्रारम्भ होता है । उसमें अनन्त वर्ण-पर्याय यावत् पुरुषकार-पराक्रमपर्याय की अनन्त गुण परिहानि होती है । उस आरक को तीन भागों में विभक्त किया है–प्रथम त्रिभाग, मध्यम त्रिभाग, अंतिम त्रिभाग । भगवन् ! जम्बूद्वीप में इस अवसर्पिणी के सुषम-दुषमा आरक के प्रथम तथा मध्यम त्रिभाग का आकार–स्वरूप कैसा है ? गौतम ! उस का भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय होता है । उसका पूर्ववत् वर्णन जानना । अन्तर इतना है–उस समय के मनुष्यों के शरीर को ऊँचाई २००० धनुष होती है । पसलिया चौसठ, एक दिन के बाद आहार की इच्छा, आयुष्य एक पल्योपम, ७९ रात-दिन अपने यौगलिक शिशुओं की सार-सम्हाल यावत् उन मनुष्यों का जन्म स्वर्ग में ही होता है ।

भगवन् ! उस आरक के पश्चिम त्रिभाग में–भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होता है ? गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल तथा रमणीय होता है । यावत् कृत्रिम एवं अकृत्रिम मणियों से उपशोभित होता है । उस आरक के अंतिम तीसरे भाग से भरतक्षेत्र में मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा होता है ? गौतम ! उन मनुष्यों के छहों प्रकार के संहनन, छहों प्रकार के संस्थान, शरीर की ऊँचाई सैकड़ों धनुष-परिमाण, आयुष्य जघन्यतः संख्यात वर्षो का तथा उत्कृष्टतः असंख्यात वर्षों का होता है । अपना आयुष्य पूर्ण कर उनमें से कई नरक-गति में, कई तिर्यंच-गति में, कई मनुष्य-गति में, कई देव-गति में उत्पन्न होते हैं और सिद्ध होते हैं । यावत् समग्र दुःखों का अन्त करते हैं ।

[४१] उस आरक के अंतिम तीसरे भाग के समाप्त होने में जब एक पल्योपम का आठवां भाग अवशिष्ट रहता है तो ये पन्द्रह कुलकर उत्पन्न होते हैं–सुमति, प्रतिश्रुति, सीमंकर, सीमन्धर, क्षेमंकर, क्षेमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वान्, अभिचन्द्र, चन्द्राभ, प्रसेनजित्, मरुदेव, नाभि, ऋषभ ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

[४२] उन पन्द्रह कुलकरों में से सुमति, प्रतिश्रुति, सीमंकर, सीमन्धर तथा क्षेमंकर–इन पांच कुलकरों की हकार नामक दंड-नीति होती है । वे मनुष्य हकार–दंड से अभिहत होकर लज्जित, विलज्जित, व्यर्द्ध, भीतियुक्त, निःशब्द तथा विनयावनत हो जाते हैं । उनमें से क्षेमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वान् तथा अभिचन्द्र–इन पांच कुलकरों की मकार दण्डनीति होती है । वे मनुष्य मकार–रूप दण्ड से लज्जित इत्यादि हो जाते हैं । उनमें से चन्द्राभ, प्रसेनजित्, मरुदेव, नाभि तथा ऋषभ–इन पाँच कुलकरों की धिक्कार नीति होती है । वे मनुष्य 'धिक्कार'–रूप दण्ड से अभिहत होकर लज्जित हो जाते हैं ।

[४३] नाभि कुलकर के, उनकी भार्या मरुदेवी की कोख से उस समय ऋषभ नामक अर्हत्, कौशलिक, प्रथम राजा, प्रथम जिन, प्रथम केवली, प्रथम तीर्थंकर चतुर्दिग्व्याप्त अथवा चार गतियों का अन्त करने में सक्षम धर्म-साम्राज्य के प्रथम चक्रवर्ती उत्पन्न हुए । कौशलिक अर्हत् ऋषभ ने बीस लाख पूर्व कुमार–अवस्था में व्यतीत किये । तिरेसठ लाख पूर्व महाराजावस्था में रहते हुए उन्होंने लेखन से लेकर पक्षियों की बोली तक का जिनमें पुरुषों की बहत्तर कलाओं, स्त्रियों के चौसठ गुणों तथा सौ प्रकार के कार्मिक शिल्पविज्ञान का समावेश है, प्रजा के हित के लिए उपदेश किया । अपने सौ पुत्रों को सौ राज्यों में अभिषिक्त किया । वे तियासी लाख पूर्व गृहस्थ-वास में रहे । ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास–चैत्र मास में प्रथम पक्ष–कृष्ण पक्ष में नवमी तिथि के उत्तरार्ध में–मध्याह्न के पश्चात् रजत, स्वर्ण, कोश, कोष्ठागार, बल, सेना, वाहन, पुर, अन्तःपुर, धन, स्वर्ण, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिला, राजपट्ट आदि, प्रवाल, पद्मराग आदि लोक के सारभूत पदार्थों का परित्याग कर, उनसे ममत्व भाग हटाकर अपने दायिक, जनों में बंटवारा कर वे सुदर्शना नामक शिबिका में बैठे । देवों, मनुष्यों तथा असुरों की परिषद् उनके साथसाथ चली । शांखिक, चाक्रिक, लांगलिक, मुखमांगलिक, पुष्पमाणव, भाट, चारण आदि स्तुतिगायक, वर्धमानक, आख्यायक, लंख, मंख, घाण्टिक, पीछे-पीछे चले ।

वे इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोरम, उदार, दृष्टि से वैशद्ययुक्त, कल्याण, शिव, धन्य, मांगल्य, सश्रीक, हृदयगमनीय, सुबोध, हृदय प्रह्लादनीय, कर्ण-मननिर्वृतिकार, अपुनरुक्त, अर्थशतिक, वाणी द्वारा वे निरन्तर उनका इस प्रकार अभिनन्दन तथा अभिस्तवन करते थे–जगन्नंद ! भद्र ! प्रभुवर ! आपकी जय हो, आपकी जय हो । आप धर्म के प्रभाव से परिषहों एवं उपसर्गों से अभीत रहें, भय, भैरव का सहिष्णुतापूर्वक सामना करने में सक्षम रहें । आपकी धर्मसाधना निर्विघ्न हो । उन आकुल पौरजनों के शब्दों से आकाश आपूर्ण था । इस स्थिति में भगवान् ऋषभ राजधानी के बीचोंबीच होते हुए निकले । सहस्रों नर-नारी अपने नेत्रों से बार-बार उनके दर्शन कर रहे थे, यावत् वे घरों की हजारों पंक्तियों को लांघते हुए आगे बढ़े । सिद्धार्थवन, जहां वे गमनोद्यत थे, की ओर जाने वाले राजमार्ग पर जल का छिड़काव कराया हुआ था । वह झाड़-बुहारकर स्वच्छ कराया हुआ था, सुरभित जल से सिक्त था, शुद्ध था, वह स्थान-स्थान पर पुष्पों से सजाया गया था, घोड़ों, हाथियों तथा रथों के समूह, पदातियों–के पदाघात से–जमीन पर जमी हुई धूल धीरे-धीरे ऊपर की ओर उड़ रही थी । इस प्रकार चलते हुए वे जहाँ सिद्धार्थवन उद्यान था, जहाँ उत्तम अशोक वृक्ष था, वहां आये । उस उत्तम वृक्ष के नीचे शिबिका को रखवाया, नीचे उतरकर स्वयं अपने गहने उतारे । स्वयं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आस्थापूर्वक चार मुष्टियों द्वारा अपने केशों को लोच किया । निर्जल बेला किया । उत्तराषाढा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर अपने चार उग्र, भोग, राजन्य, क्षत्रिय के साथ एक देव-दूष्य ग्रहण कर मुण्डित होकर अगार से–अनगारिता में प्रव्रजित हो गये ।

[४४] कौशलिक अर्हत् ऋषभ कुछ अधिक एक वर्ष पर्यन्त वस्त्रधारी रहे, तत्पश्चात् निर्वस्त्र । जब से वे प्रव्रजित हुए, वे कायिक परिकर्म रहित, दैहिक ममता से अतीत, देवकृत् यावत् जो उपसर्ग आते, उन्हें वे सम्यक् भाव से सहते, प्रतिकूल अथवा अनुकूल परिषह को भी अनासक्त भाव से सहते, क्षमाशील रहते, अविचल रहते । भगवान् ऐसे उत्तम श्रमण थे कि वे गमन, हलन-चलन आदि क्रिया यावत् मल-मूत्र, खंखार, नाक आदि का मल त्यागना–इन पांच समितियों से युक्त थे । वे मनसमित, वाक्समित तथा कायसमित थे । वे मनोगुप्त, यावत् गुप्त ब्रह्मचारी, अक्रोध यावत् अलोभ, प्रशांत, उपशांत, परिनिर्वृत, छिन्न-स्त्रोत, निरुपलेप, कांसे के पात्र जैसे आसक्ति रहित, शंखवत् निरंजन, राग आदि की रंजकता से शून्य, जात्य विशोधित शुद्ध स्वर्ण के समान, जातरूप, दर्पणगत प्रतिबिम्ब की ज्यों प्रकट भाव–अनिगूहिताभिप्राय, प्रवंचना, छलना व कपट रहित शुद्ध भावयुक्त, कछुए की तरह गुप्तेन्द्रिय, कमल-पत्र के समान निर्लेप, आकाश के सदृश निरालम्ब, वायु की तरह निरालय, चन्द्र के सदृश सौम्यदर्शन, सूर्य के सदृश तेजस्वी, पक्षी की ज्यों अप्रतिबद्धगामी, समुद्र के समान गंभीर मंदराचल की ज्यों अकंप, सुस्थिर, पृथ्वी के समान सर्व स्पर्शों को समभाव से सहने में समर्थ, जीव के समान अप्रतिहत थे ।

उन भगवान् ऋषभ के किसी भी प्रकार के प्रतिबन्ध नहीं थे । प्रतिबन्ध चार प्रकार का है–द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से तथा भाव से । द्रव्य से जैसे–ये मेरे माता, पिता, भाई, बहिन यावत् चिरपरिचित जन हैं, ये मेरे चाँदी, सोना, उपकरण हैं, अथवा अन्य प्रकार से संक्षेप में जैसे ये मेरे सचित्त, अचित्त और मिश्र हैं–इस प्रकार इनमें भगवान् का प्रतिबन्ध नहीं था–क्षेत्र से ग्राम, नगर, अरण्य, खेत, खल या खलिहान, घर, आंगन इत्यादि में उनका प्रतिबन्ध नहीं था । काल से स्तोक, लव, मुहूर्त्त, अहोरात्र, पक्ष, मास ऋतु, अयन, संवत्सर या और भी दीर्घकाल सम्बन्धी कोई प्रतिब्ध उन्हें नहीं था । भाव से क्रोध, लोभ, भय, हास्य से उनका कोई लगाव नहीं था ।

भगवान् ऋषभ वर्षावास के अतिरिक्त हेमन्त के महीनों तथा ग्रीष्मकाल के महीनों के अन्तर्गत् गांव में एक रात, नगर में पांच रात प्रवास करते हुए हास्य, शोक, रति, भय तथा परित्रास–से वर्जित, ममता रहित, अहंकार रहित, लघुभूत, अग्रन्थ, वसूले द्वारा देह की चमड़ी छीले जाने पर भी वैसा करनेवाले के प्रति द्वेष रहित एवं किसी के द्वारा चन्दन का लेप किये जाने पर भी उस ओर अनुराग या आसक्ति से रहित, पाषाण और स्वर्ण में एक समान भावयुक्त, इस लोक में और परलोक में अप्रतिबद्ध–अतृष्ण, जीवन और मरण की आकांक्षा से अतीत, संसार को पार करने में समुद्यत, जीव-प्रदेशों के साथ चले आ रहे कर्म-सम्बन्ध को विच्छिन्न कर डालने में अभ्युत्थित रहते हुए विहरणशील थे । इस प्रकार विहार करते हुए—१००० वर्ष व्यतीत हो जाने पर पुरिमताल नगर के बाहर शकटमुख उद्यान में एक बरगद के वृक्ष के नीचे, ध्यानान्तरिका में फाल्गुणमास कृष्णपक्ष एकादशी के दिन पूर्वाह्न के समय, निर्जल तेले की तपस्या की स्थिति में चन्द्र संयोगाप्त उत्तराषाढा नक्षत्र में अनुत्तर तप,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बल, वीर्य, आलय, विहार, भावना, क्षान्ति, क्षमाशीलता, गुप्ति, मुक्ति, तुष्टि, आर्जव, मार्दव, लाघव, स्फूर्तिशीलता, सच्चारित्र्य के निर्वाण-मार्ग रूप उत्तम फल से आत्मा को भावित करते हुए उनके अनन्त, अविनाशी, अनुत्तर, निर्व्याघात, सर्वथा अप्रतिहत, निरावरण, कृत्स्न, सकलार्थग्राहक, प्रतिपूर्ण, श्रेष्ठ केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हुए । वे जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हुए । वे गति, आगति, कार्य-स्थिति, भव-स्थिति, मुक्त, कृत, प्रतिसेवित, आविष्कर्म, रहःकर्म, योग आदि के, जीवों तथा अजीवों के समस्त भावों के, मोक्ष-मार्ग के प्रति विशुद्ध भाव–इन सब के ज्ञाता, द्रष्टा हो गये । भगवान् ऋषभ निर्ग्रन्थों, निर्ग्रन्थियों–को पाँच महाव्रतों, उनकी भावनाओं तथा जीव-निकायों का उपदेश देते हुए विचरण करते थे ।

कौशलिक अर्हत् ऋषभ के चौरासी गण, चौरासी गणधर, ऋषभसेन आदि ८४००० श्रमण, ब्राह्मी, सुन्दरी आदि तीन लाख आर्यिकाएँ, श्रेयांस आदि तीन लाख पांच हजार श्रमणोपासक, सुभद्रा आदि पाँच लाख चौवन हजार श्रमणोपासिकाएँ, जिन नहीं पर जिन-सदृश सर्वाक्षर-संयोग-वेत्ता जिनवत् अवितथ-निरूपक ४७५० चतुर्दश-पूर्वधर, ९००० अवधिज्ञानी, २०००० जिन, २०६०० वैक्रियलब्धिधर, १२६५० विपुलमति-मनःपर्यवज्ञानी, १२६५० वादी तथा गति-कल्याणक, स्थितिकल्याणक, आगमिष्यद्भद्र, अनुत्तरौपपातिक २२९०० मुनि थे । कौशलिक अर्हत् ऋषभ के २०००० श्रमणों तथा ४०००० श्रमणियों ने सिद्धत्व प्राप्त किया–भगवान् ऋषभ के अनेक अंतेवासी अनगार थे । उनमें कई एक मास यावत् कई अनेक वर्ष के दीक्षा-पर्याय के थे । उनमें अनेक अनगार अपने दोनों घुटनों को ऊँचा उठाये, मस्तक को नीचा किये–ध्यान रूप कोष्ठ में प्रविष्ट थे । इस प्रकार वे अनगार संयम तथा तप से आत्मा को भावित–करते हुए अपनी जीवन-यात्रा में गतिशील थे । भगवान् ऋषभ की दो प्रकार की भूमि थी–युगान्तकर-भूमि तथा पर्यायान्तकर-भूमि । युगान्तकर-भूमि यावत् असंख्यात-पुरुष-परम्परा-परिमित थी तथा पर्यायान्तकर भूमि अन्तमुहूर्त्त थी ।

[४५] भगवान् ऋषभ के जीवन में पाँच उत्तराषाढा नक्षत्र तथा एक अभिजित् नक्षत्र से सम्बद्धा घटनाएं हैं । चन्द्रसंयोगप्राप्त उत्तराषाढा नक्षत्र में उनका च्यवन–हुआ । उसी में जन्म हुआ । राज्याभिषेक हुआ । मुंडित होकर, घर छोड़कर अनगार बने । उसी में उन्हें केवलज्ञान, केवलदर्शन समुत्पन्न हुआ । भगवान् अभिजित् नक्षत्र में परिनिर्वृत्त हुए ।

[४६] कौशलिक भगवान् ऋषभ वज्र-ऋषभ-नाराच-संहनन युक्त, सम-चौरस-संस्थान-संस्थित तथा पांच सौ धनुष दैहिक ऊँचाई युक्त थे । वे बीस लाख पूर्व तक कुमारावस्था में तथा तिरेसठ लाख पूर्व महाराजावस्था में रहे । यों तिरासी लाख पूर्व गृहवास में रहे । तत्पश्चात् मुंडित होकर अगार-वास से अनगार-धर्म में प्रव्रजित हुए । १००० वर्ष छद्मस्थ-पर्याय में रहे । एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व वे केवलि-पर्याय में रहे । इस प्रकार एक लाख पूर्व तक श्रामण्य-पर्याय–का पालन कर–चौरासी लाख पूर्व का परिपूर्ण आयुष्य भोगकर हेमन्त के तीसरे मास में, पांचवें पक्ष में–माघ मास कृष्ण पक्ष में तेरस के दिन १०००० साधुओं से संपरिवृत्त अष्टापद पर्वत के शिखर पर छह दिनों के निर्जल उपवास में पूर्वाह्न-काल में पर्यंकासन में अवस्थित, चन्द्र योग युक्त अभिजित् नक्षत्र में, जब सुषम-दुःषमा आरक में नवासी पक्ष बाकी थे, वे जन्म, जरा एवं मृत्यु के बन्धन छिन्नकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अंतकृत्, परिनिर्वृत्त सर्व-दुःख रहित हुए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस समय कौशलिक, अर्हत् ऋषभ कालगत हुए, जन्म, वृद्धावस्था तथा मृत्यु के बन्धन तोड़कर सिद्ध, बुद्ध तथा सर्वदुःख-विरहित हुए, उस समय देवेन्द्र, देवराज शक्र का आसन चलित हुआ । अवधिज्ञान का प्रयोग किया, भगवान् तीर्थंकर को देखकर वह यों बोला—जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् भरतक्षेत्र में कौशलिक, अर्हत् ऋषभ ने परिनिर्वाण प्राप्त कर लिया है, अतः अतीत, वर्तमान, अनागत देवराजों, देवेन्द्रों शक्रों का यह जीत है कि वे तीर्थंकरों के परिनिर्वाणमहोत्सव मनाएं । इसलिए मैं भी तीर्थंकर भगवान् का परिनिर्वाण-महोत्सव आयोजित करने हेतु जाऊँ । यों सोचकर देवेन्द्र वन्दन-नमस्कार कर अपने ८४००० सामानिक देवों, ३३००० त्रायस्त्रिंशक देवों, परिवारोपेत अपनी आठ पट्टरानियों, तीन परिषदों, सात सेनाओं, चारों दिशाओं के ८४-८४ हजार आत्मरक्षक देवों और भी अन्य बहुत से सौधर्मकल्पवासी देवों एवं देवियों से संपरिवृत, उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चंड, जवन, उद्धत, शीघ्र तथा दिव्य गति से तिर्यक्-लोकवर्ती असंख्य द्वीपों एवं समुद्रों के बीच से होता हुआ जहाँ अष्टापद पर्वत और जहाँ भगवान् तीर्थंकर का शरीर था, वहाँ आया । उसने उदास, आनन्द रहित, आँखों में आँसू भरे, तीर्थंकर के शरीर को तीन वार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की । वैसा कर, न अधिक निकट न अधिक दूर स्थित होकर पर्युपासना की ।

उस समय उत्तरार्ध लोकाधिपति, २८ लाख विमानों के स्वामी, शूलपाणि, वृषभवाहन, निर्मल आकाश के रंग जैसा वस्त्र पहने हुए, यावत् यथोचित रूप में माला एवं मुकुट धारण किए हुए, नव-स्वर्ण-निर्मित मनोहर कुंडल पहने हुए, जो कानों से गालों तक लटक रहे थे, अत्यधिक समृद्धि, द्युति, बल, यश, प्रभाव तथा सुखसौभाग्य युक्त, देदीप्यमान शरीर युक्त, सब ऋतुओं के फूलों से बनी माला, जो गले से घुटनों तक लटकती थी, धारण किए हुए, ईशानकल्प में ईशानावतंसक विमान की सुधर्मा सभा में ईशान-सिंहासन पर स्थित, अट्ठाईस लाख वैमानिक देवों, अस्सी हजार सामानिक देवों, तेतीस त्रायस्त्रिंश—गुरुस्थानीय देवों, चार लोकपालों, परिवार सहित आठ पट्टरानियों, तीन परिषदों, सात सेनाओं, सात सेनापतियों, अस्सी-अस्सी हजार चारों दिशाओं के आत्मरक्षक देवों तथा अन्य बहुत से ईशानकल्पवासी देवों और देवियों का आधिपत्य, पुरापतित्व, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञेश्वरत्व, सेनापतित्व करता हुआ देवराज ईशानेन्द्र निरवच्छिन्न नाट्य, गीत, निपुण वादकों के वाद्य, विपुल भोग भोगता हुआ विहरणशील था । ईशान देवेन्द्र ने अपना आसन चलित देखा । वैसा देखकर अवधि-ज्ञान का प्रयोग किया । भगवान् तीर्थंकर को अवधिज्ञान द्वारा देखा । देखकर शक्रेन्द्र की ज्यों पर्युपासना की । ऐसे सभी देवेन्द्र अपने-अपने परिवार के साथ वहाँ आये। उसी प्रकार भवनवासियों के बीस इन्द्र, वाणव्यन्तरों के सोलह इन्द्र, ज्योतिष्कों के दो इन्द्र, अपने-अपने देव-परिवारों के साथ वहाँ—अष्टापद पर्वत पर आये ।

तब देवराज, देवेन्द्र शक्र ने बहुत से भवनपति, वानव्यन्तर तथा ज्योतिष्क देवों से कहा—देवानुप्रियो ! नन्दनवन से शीघ्र स्निग्ध, उत्तम गोशीर्ष चन्दन-काष्ठ लाओ । लाकर तीन चिताओं की रचना करो—एक भगवान् तीर्थंकर के लिए, एक गणधरों के लिए तथा एक बाकी के अनगारों के लिए । तब वे भवनपति आदि देव नन्दनवन से स्निग्ध, उत्तम गोशीर्ष चन्दन-काष्ठ लाये । लाकर चिताएँ बनाई । तत्पश्चात् देवराज शक्रेन्द्र ने आभियोगिक देवों को कहा—देवानुप्रियो ! क्षीरोदक समुद्र से शीघ्र क्षीरोदक लाओ । वे आभियोगिक देव क्षीरोदक समुद्र से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षीरोदक लाये । तदनन्तर देवराज शक्रेन्द्र ने तीर्थंकर के शरीर को क्षीरोदक से स्नान कराया। सरस, उत्तम गोशीर्ष चन्दन से उसे अनुलिप्त किया । हंस-सदृश श्वेत वस्त्र पहनाये । सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित किया । फिर उन भवनपति, वैमानिक आदि देवों ने गणधरों के शरीरों को तथा साधुओं के शरीरों को क्षीरोदक से स्नान कराया । स्निग्ध, उत्तम गोशीर्ष चन्दन से अनुलिप्त किया । दो दिव्य देवदूष्य–धारण कराये । सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित किया ।

तत्पश्चात् देवराज शक्रेन्द्र ने उन अनेक भवनपति, वैमानिक आदि देवों से कहा–देवानुप्रियो ! ईहामृग, वृषभ, तुरंग यावत् वनलता–के चित्रों से अंकित तीन शिबिकाओं की विकुर्वणा करो–एक भगवान् तीर्थंकर के लिए, एक गणधरों के लिए तथा एक अवशेष साधुओं के लिए । इस पर उन बहुत से भवनपति, वैमानिकों आदि देवों ने तीन शिबिकाओं की विकुर्वणा की । तब उदास, खिन्न एवं आंसू भरे देवराज देवेन्द्र शक्र ने भगवान् तीर्थंकर के, जिन्होंने जन्म, जरा तथा मृत्यु को विनष्ट कर दिया था–शरीर को शिबिका पर आरूढ किया। चिता पर रखा । भवनपति तथ वैमानिक आदि देवों ने गणधरों एवं साधुओं के शरीर शिबिका पर आरूढ कर उन्हें चिता पर रखा । देवराज शक्रेन्द्र ने तब अग्निकुमार देवों को कहा–देवानुप्रियो ! तीर्थंकर आदि को चिता में, शीघ्र अग्निकाय की विकुर्वणा करो । इस पर उदास, दुःखित तथा अश्रुपूरितनेत्र वाले अग्निकुमार देवों ने तीर्थंकर की चिता, गणधरों की चिता तथा अनगारों की चिता में अग्निकाय की विकुर्वणा की । देवराज शक्र ने फिर वायुकुमार देवों को का–वायुकाय की विकुर्वणा करो, अग्नि प्रज्ज्वलित करो, तीर्थंकर की देह को, गणधरों तथा अनगारों की देह को ध्मापित करो । विमनस्क, शोकान्वित तथा अश्रुपूरितनेत्र वाले वायुकुमार देवों ने चिताओं में वायुकाय की विकुर्वणा की, तीर्थंकर आदि के शरीर ध्मापित किये । देवराज शक्रेन्द्र ने बहुत से भवनपति तथा वैमानिक आदि देवों से कहा–देवानुप्रियो ! तीर्थंकर-चिता, गणधर-चिता तथा अनगार-चिता में विपुल परिमाणमय अगर, तुरुष्क तथा अनेक घटपरिमित घृत एवं मधु डालो । तब उन भवनपति आदि देवों ने घृत एवं मधु डाला ।

देवराज शक्रेन्द्र ने मेघकुमार देवों को कहा–देवानुप्रियो ! तीर्थंकर-चिता, गणधर-चिता तथा अनगार-चिता को क्षीरोदक से निर्वापित करो । मेघकुमार देवों ने निर्वापित किया । तदनन्तर देवराज शक्रेन्द्र ने भगवान् तीर्थंकर के ऊपर की दाहिनी डाढ ली । असुराधिपति चमरेन्द्र ने नीचे की दाहिनी डाढ ली । वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बली ने नीचे की बाई डाढ ली। बाकी के भवनपति, वैमानिक आदि देवों ने यथायोग्य अंगों की हड्डियाँ लीं । कइयों ने जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति से, कइयों ने यह समुचित पुरातन परंपरानुगत व्यवहार है, यह सोचकर तथा कइयों ने इसे अपना धर्म मानकर ऐसा किया । तदनन्तर देवराज, देवेन्द्र शक्र ने भवनपति एवं वैमानिक आदि देवों को यथायोग्य यों कहा–देवानुप्रियो ! तीन सर्व रत्नमय विशाल स्तूपों का निर्माण करो–एक भगवान् तीर्थंकर के, एक गणधरों के, तथा एक अवशेष अनगारों के चिता-स्थान पर । उन बहुत से देवों ने वैसा ही किया । फिर उन अनेक भवनपति, वैमानिक आदि देवों ने तीर्थंकर भगवान् का परिनिर्वाण महोत्सव मनाया । वे नन्दीश्वर द्वीप में आ गये। देवराज, देवेन्द्र शक्र ने पूर्व दिशा में स्थित अंजनक पर्वत पर अष्टदिवसीय परिनिर्वाण-महोत्सव मनाया । देवराज, देवेन्द्र शक्र के चार लोकपालों ने चारों दधिमुख पर्वतों पर, देवराज ईशानेन्द्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने उत्तरदिशावर्ती अंजनक पर्वत पर, उसके लोकपालों ने चारों दधिमुख पर्वतों पर, चमरेन्द्र ने दक्षिण दिशावर्ती अंजनक पर्वत पर, उसके लोकपालों ने दधिमुख पर्वतों पर, बलि ने पश्चिम दिशावर्ती अंजनक पर्वत पर और उसके लोकपालों ने दधिमुख पर्वतों पर परिनिर्वाण-महोत्सव मनाया । इस प्रकार बहुत से भवनपति, वानव्यन्तर आदि ने अष्टदिवसीय महोत्सव मनाये । ऐसा कर वे जहाँ-तहां अपने विमान, भवन, सुधर्मासभाएँ तथा अपने माणवक नामक चैत्यस्तंभ थे, वहां आये । आकर जिनेश्वर देव की डाढ आदि अस्थियों को वज्रमय समुद्गक में रखा। अभिनव, उत्तम मालाओं तथा सुगन्धित द्रव्यों से अर्चना की । अपने विपुल सुखोपभोगमय जीवन में घुलमिल गये ।

[४७] गौतम ! तीसरे आरक का दो सागरोपम कोडाकोडी काल व्यतीत हो जाने पर अवसर्पिणी काल का दुःषम-सुषमा नामक चौथा आरक प्रारम्भ होता है । उसमें अनन्त वर्ण-पर्याय आदि का क्रमशः ह्रास होता जाता है । भगवन् ! उस समय भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होता है ? गौतम ! उस समय भरतक्षेत्र का भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय होता है यावत् मणियों से उपशोभित होता है । उस समय मनुष्यों का आकार स्वरूप कैसा होता है ? गौतम ! उन मनुष्यों के छह प्रकार के संहनन होते हैं, छह प्रकार के संस्थान होते हैं । उनकी ऊँचाई अनेक धनुष-प्रमाण होती है । जघन्य अन्तमुहूर्त्त का तथा उत्कृष्ट पूर्वकोटि का आयुष्य भोगकर उनमें से कई नरक-गति में, यावत् कई देव-गति में जाते हैं, कई सिद्ध, बुद्ध होकर समस्त दुःखों का अन्त करते हैं । उस काल में तीन वंश उत्पन्न होते हैं—अर्हत् वश, चक्रवर्ति-वंश तथा दशारवंश—बलदेव-वासुदेव-वंश । उस काल में तेवीस तीर्थंकर ग्यारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव तथा नौ वासुदेव उत्पन्न होते हैं ।

[४८] गौतम ! चतुर्थ आरक के ४२००० वर्ष कम एक सागरोपम कोडाकोडी काल व्यतीत हो जाने पर अवसर्पिणी-काल का दुःषमा नामक पंचम आरक प्रारंभ होता है । उसमें अनन्त वर्णपर्याय आदि का क्रमशः ह्रास होता जाता है । भगवन् ! उस काल में भरतक्षेत्र का कैसा आकार-स्वरूप होता है ? गौतम ! भरतक्षेत्र का भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय होता है यावत् मणियों द्वारा उपशोभित होता है । उस काल में भरतक्षेत्र के मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा होता है ? गौतम ! उस समय भरतक्षेत्र के मनुष्यों के छह प्रकार के संहनन एवं संस्थान होते हैं । उनकी ऊँचाई सात हाथ की होती है । वे जघन्य अन्तमुहूर्त्त तथा उत्कृष्ट कुछ अधिक सौ वर्ष के आयुष्य का भोग करते हैं । कई नरक-गति में, यावत् तिर्यञ्च देव-गति कई परिनिर्वृत्त होते हैं । उस काल के अन्तिम तीसरे भाग में गणधर्म, पाखण्ड-धर्म, राजधर्म, जाततेज तथा चारित्र-धर्म विच्छिन्न हो जाता है ।

[४९] गौतम ! पंचम आरक के २१००० वर्ष व्यतीत हो जाने पर अवसर्पिणी काल का दुःषम-दुःषमा नामक छठा आरक प्रारंभ होगा । उसमें अनन्त वर्णपर्याय, गन्धपर्याय, रसपर्याय तथा स्पर्शपर्याय आदि का क्रमशः ह्रास होता जायेगा । भगवन् ! जब वह आरक उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर पहुँचा होगा, तो भरतक्षेत्र का आकारस्वरूप कैसा होगा ? गौतम ! उस समय दुःखार्त्ततावश लोगों में हाहाकार मच जायेगा, अत्यन्त दुःखोद्विग्नता से चीत्कार फैल जायेगा और विपुल जन-क्षय के कारण जन-शून्य हो जायेगा । तब अत्यन्त कठोर, धूल से मलिन, दुस्सह, व्याकुल, भयंकर वायु चलेंगे, संवर्तक वायु चलेंगे । दिशाएँ अभीक्ष्ण धुंआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छोड़ती रहेंगी । वे सर्वथा रज से भरी, धूल से मलिन तथा घोर अंधकार के कारण प्रकाशशून्य हो जायेंगी । चन्द्र अधिक अपथ्य शीत छोड़ेंगे । सूर्य अधिक असह्य, रूप में तपेंगे । गौतम ! उसके अनन्तर अरसमेघ, विरसमेघ, क्षारमेघ, खात्रमेघ, अग्निमेघ, विद्युन्मेष, विषमेघ, व्याधि, रोग, वेदनोत्पादक जलयुक्त, अप्रिय जलयुक्त मेघ, तूफानजनित तीव्र प्रचुर जलधारा छोड़नेवाले मेघ निरंतर वर्षा करेंगे ।

भरतक्षेत्र में ग्राम, आकार, नगर, खेट कर्वट, मडम्ब, द्रोणमुख, पट्टन, आश्रमगत जनपद, चौपाये प्राणी, खेचर, पक्षियों के समूह, त्रस जीव, बहुत प्रकार के वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लताएँ, बेलें, पत्ते, अंकुर इत्यादि बादर वानस्पतिक जीव, वनस्पतियाँ, औषधियाँ–इन सबका वे विध्वंस कर देंगे । वैताढ्य आदि शाश्वत पर्वतों के अतिरिक्त अन्य पर्वत, गिरि, डूंगर, उन्नत स्थल, टींबे, भ्राष्ट्र, पठार, इन सब को तहस-नहस कर डालेंगे । गंगा और सिन्धु महानदी के अतिरिक्त जल के स्रोतों, झरनों, विषमगर्त, नीचे-ऊँचे जलीय स्थानों को समान कर देंगे । भगवन् ! उस काल में भरतक्षेत्र की भूमि का आकार-स्वरूप कैसा होगा ?

गौतम ! भूमि अंगारभूत, मुर्मुरभूत, क्षारिकभूत, तप्तकवेल्लुकभूत, ज्वालामय होगी । उसमें धूलि, रेणु, पंक और प्रचुर कीचड़ की बहुलता होगी । प्राणियों का उस पर चलना बड़ा कठिन होगा । उस काल में भरतक्षेत्र में मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा होगा ? गौतम ! उस समय मनुष्यों का रूप, रंग, गंध, रस तथा स्पर्श अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ तथा अमनोऽम होगा । उनका स्वर हीन, दीन, अनिष्ट, अकान्त अप्रिय, अमनोगम्य और अमनोज्ञ होगा । उनका वचन, अनादेय–होगा । वे निर्लज्ज, कूट, कपट, कलह, बन्ध तथा वैर में निरत होंगे । मर्यादाएँ लांघने, तोड़ने में प्रधान, अकार्य करने में सदा उद्यत एवं गुरुजन के आज्ञा-पालन और विनय से रहित होंगे । वे विकलरूप, काने, लंगड़े, चतुरंगुलिक आदि, बढ़े हुए नख, केश तथा दाढ़ी-मूंछ युक्त, काले, कठोर स्पर्शयुक्त, सलवटों के कारण फूटे हुए से मस्तक युक्त, धूएँ के से वर्ण वाले तथा सफेद केशों से युक्त, अत्यधिक स्नायुओं परिबद्ध, झुर्रियों से परिव्याप्त अंग युक्त, जरा-र्जर बूढ़ों के सदृश, प्रविल तथा परिशटित दन्तश्रेणी युक्त, घड़े के विकृत मुख सदृश, असमान नेत्रयुक्त, वक्र-टेढ़ी नासिकायुक्त, भीषण मुखयुक्त, दाद, खाज, सेहुआ आदि से विकृत, कठोर चर्मयुक्त, चित्रल अवयवमय देहयुक्त, चर्मरोग से पीड़ित, कठोर, खरोंची हुई देहयुकत्टोलगति, विषम, सन्धि बन्धनयुक्त, अयथावत्स्थित अस्थियुक्त, पौष्टिक भोजनरहित, शक्तिहीन, कुत्सित ऐसे संहनन, परिमाण, संस्थान रूप, आश्रय, आसन, शय्या तथा कुत्सित भोजनसेवी, अशुचि, व्याधियों से पीड़ित, विह्वल गतियुक्त, उत्साह-रहित, सत्त्वहीन, निश्चेष्ट, नष्टतेज, निरन्तर शीत, उष्ण, तीक्ष्ण, कठोर वायु से व्याप्त शरीरयुक्त, मलिन धूलि से आवृत देहयुक्त, बहुत क्रोधी, अहंकारी, मायावी, लोभी तथा मोहमय, अत्यधिक दुःखी, प्रायः धर्मसंज्ञा– तथा सम्यक्त्व से परिभ्रष्ट होंगे । उत्कृष्टतः उनका देह-परिमाण–एक हाथ होगा । उनका अधिकतम आयुष्य–स्त्रियों का सोलह वर्ष का तथा पुरुषों का बीस वर्ष का होगा । अपने बहुपुत्र-पौत्रमय परिवार में उनका बड़ा प्रणय रहेगा । वे गंगा, सिन्धु के तट तथा वैताढ्य पर्वत के आश्रय में बिलों में रहेंगे ।

भगवन् ! वे मनुष्य क्या आहार करेंगे ? गौतम ! उस काल में गंगा और सिन्धु दो नदियाँ रहेंगी । रथ चलने के लिए अपेक्षित पथ जितना विस्तार होगा । रथचक्र के छेद जितना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गहरा जल रहेगा । उनमें अनेक मत्स्य तथा कच्छप रहेंगे । उस जल में सजातीय अप्काय के जीव नहीं होंगे । वे मनुष्य सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय अपने बिलों से तेजी से दौड़ कर निकलेंगे । मछलियों और कछुओं को पकड़ेंगे, जमीन पर लायेंगे । रात में शीत द्वारा तथा दिन में आतप द्वारा उनको रसरहित बनायेंगे । वे अपनी जठराग्नि के अनुरूप उन्हें आहारयोग्य बना लेंगे । इस आहार-वृत्ति द्वारा वे २१००० वर्ष पर्यन्त अपना निर्वाह करेंगे । वे मनुष्य, जो निःशील, आचाररहित, निर्व्रत, निर्गुण, निर्मर्याद, प्रत्याख्यान, पौषध व उपवासरहित होंगे, प्रायः मांस-भोजी, मत्स्य-भोजी, यत्र-तत्र अवशिष्ट क्षुद्र धान्यादिक-भोजी, कुणिपभोजी आदि दुर्गन्धित पदार्थ-भोजी होंगे । अपना आयुष्य समाप्त होने पर मरकर वे प्रायः नरकगति और तिर्यञ्चगति में उत्पन्न होंगे । तत्कालवर्ती सिंह, बाघ, भेड़िए, चीते, रींछ, तरक्ष, गेंडे, शरभ, श्रृगाल, बिलाव, कुत्ते, जंगली कुत्ते या सूअर, खरगोश, चीतल तथा चिल्ललक, जो प्रायः मांसाहारी, मत्स्याहारी, क्षुद्राहारी तथा कुणपाहारी होते हैं, मरकर प्रायः नरकगति और तिर्यञ्चगति में उत्पन्न होंगे । भगवन् ! ढंक, कंक, पीलक, मद्गुक, शिखी, जो प्रायः मांसाहारी हैं, मरकर प्रायः नरकगति और तिर्यञ्चगति में जायेंगे ।

[५०] गौतम ! अवसर्पिणी काल के छठे आरक के २१००० वर्ष व्यतीत हो जाने पर आनेवाले उत्सर्पिणी-काल का श्रावण मास, कृष्ण पक्ष प्रतिपदा के दिन बालव नामक करण में चन्द्रमा के साथ अभिजित् नक्षत्र का योग होने पर चतुर्दशविध काल के प्रथम समय में दुषम-दुषमा आरक प्रारम्भ होगा । उसमें अनन्त वर्णपर्याय आदि अनन्तगुण-क्रम से परिवर्द्धित होते जायेंगे । भगवन् ! उस काल में भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होगा ? गौतम ! उस समय हाहाकारमय, चीत्कारमय स्थिति होगी, जैसा अवसर्पिणी-काल के छठे आरक के सन्दर्भ में वर्णन किया गया है । उत्सर्पिणी के प्रथम आरक दुःषम-दुषमा के इक्कीस हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर उसका दुःषमा नामक द्वितीय आरक प्रारम्भ होगा । उसमें अनन्त वर्णपर्याय आदि अनन्तगुण-परिवृद्धि-क्रम से परिवर्द्धित होते जायेंगे ।

[५१] उस उत्सर्पिणी-काल के दुःषमा नामक द्वितीय आरक के प्रथम समय में भरतक्षेत्र की अशुभ अनुभावमय रूक्षता, दाहकता आदि का अपने प्रशान्त जल द्वारा शमन करने वाला पुष्कर-संवर्तक नामक महामेघ प्रकट होगा । वह महामेघ लम्बाई, चौड़ाई तथा विस्तार में भरतक्षेत्र प्रमाण होगा । वह पुष्कर-संवर्तक महामेघ शीघ्र ही गर्जन कर शीघ्र ही विद्युत् से युक्त होगा, विद्युत्-युक्त होकर शीघ्र ही वह युग के अवयव-विशेष, मूसल और मुष्टि-परिमित धाराओं से सात दिन-रात तक सर्वत्र एक जैसी वर्षा करेगा । इस प्रकार वह भरतक्षेत्र के अंगारमय, मुर्मुरमय, क्षारमय, तप्त-कटाह सदृश, सब ओर से परितप्त तथा दहकते भूमिभाग को शीतल करेगा । उसके बाद क्षीरमेघ नामक महामेघ प्रकट होगा । वह लम्बाई, चौड़ाई तथा विस्तार में भरतक्षेत्र जितना होगा । वह विशाल बादल शीघ्र ही गर्जन करेगा, शीघ्र ही युग, मूसल और मुष्टि परिमित एक सदृश सात दिन-रात तक वर्षा करेगा । यों वह भरतक्षेत्र की भूमि में शुभ वर्ण, शुभ गन्ध, शुभ रस तथा शुभ स्पर्श उत्पन्न करेगा, जो पूर्वकाल में अशुभ हो चुके थे । फिर घृतमेघ नामक महामेघ प्रकट होगा । वह लम्बाई, चौड़ाई और विस्तार में भरतक्षेत्र जितना होगा । वह भरतक्षेत्र की भूमि में स्निग्धता उत्पन्न करेगा ।

फिर अमृतमेघ प्रकट होगा । वह भरतक्षेत्र में वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, बेल, तृण,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्वग, हरित, औषधि, पत्ते तथा कोंपल आदि बादर वानस्पतिक जीवों को उत्पन्न करेगा । फिर रसमेघ प्रकट होगा । बहुत से वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, बेल, तृण, पर्वग, हरियाली, औषधि, पत्ते तथ कोंपल आदि में तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल तथ मधुर, पांच प्रकार के रस उत्पन्न करेगा । तव भरतक्षेत्र में वृक्ष, यावत् कोंपल आदि उगेंगे । उनकी त्वचा, पत्र, प्रवाल, पल्लव, अंकुर, पुष्प, फल, ये सब परिपुष्ट होंगे, समुदित होंगे, सुखोपभोग्य होंगे ।

[५२] तब वे बिलवासी मनुष्य देखेंगे–भरतक्षेत्र में वृक्ष, गुच्छ, यावत् औषधि आये हैं । छाल, पत्र, इत्यादि सुखोपभोग्य हो गये हैं । वे बिलों से निकल आयेंगे । हर्षित एवं प्रसन्न होते हुए एक दूसरे को पुकार कर कहेंगे–देवानुप्रियो ! भरतक्षेत्र में वृक्ष आदि सब उग आये हैं । छाल, पत्र आदि सुखोपभोग्य हैं । इसलिए आज से हम में से जो कोई अशुभ, मांसमूलक आहार करेगा, उसकी छाया तक वर्जनीय होगी–। ऐसा निश्चय कर वे समीचीन व्यवस्था कायम करेंगे । भरतक्षेत्र में सुखपूर्वक, सोल्लास रहेंगे, ।

[५३] उत्सर्पिणी काल के दुःषमा नामक द्वितीय आरक में भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होगा ? गौतम ! उनका भूमिभाग बहुत समतल तथा रमणीय होगा । उस समय मनुष्यों का आकार-प्रकार कैसा होगा ? गौतम ! उन मनुष्यों के छह प्रकार के संहनन एवं संस्थान होंगे । उनकी ऊँचाई सात हाथ की होगी । उनका जघन्य अन्तमुहूर्त्त का तथा उत्कृष्ट कुछ अधिक सौ वर्ष का आयुष्य होगा । आयुष्य को भोगकर उन में से कई नरक-गति में, यावत् कई देव-गति में जायेंगे, किन्तु सिद्ध नहीं होंगे ।

गौतम ! उस आरक के २१००० वर्ष व्यतीत हो जाने पर उत्सर्पिणीकाल का दुःषम-सुषमा नामक तृतीय आरक आरम्भ होगा । उसमें अनन्त वर्ण-पर्याय आदि क्रमशः परिवर्द्धित होते जायेंगे । उस काल में भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होगा ? गौतम ! उनका भूमिभाग बड़ा समतल एवं रमणीय होगा । उन मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा होगा ? गौतम ! उन मनुष्यों के छह प्रकार के संहनन तथा संस्थान होंगे । शरीर की ऊँचाई अनेक धनुष-परिमाण होगी । जघन्य अन्तमुहूर्त्त तथा उत्कृष्ट एक पूर्व कोटि तक आयुष्य होगा । कई नरक-गति में जाऐंगे यावत् कई समस्त दुःखों का अन्त करेंगे । उस काल में तीन वंश उत्पन्न होंगे–१. तीर्थंकर-वंश, २. चक्रवर्ति-वंश तथा ३. दशारवंश–बलदेव-वासुदेव-वंश । उस काल में तेवीस तीर्थंकर, ग्यारह चक्रवर्ती तथा नौ वासुदेव उत्पन्न होंगे । गौतम ! उस आरक का ४२००० वर्ष कम एक सागरोपम कोडा-कोडी काल व्यतीत हो जाने पर उत्सर्पिणी-काल का सुषम-दुःषमा नामक आरक प्रारम्भ होगा । उसमें अनन्त वर्ण-पर्याय आदि अनन्तगुण परिवृद्धि क्रम से परिवर्द्धित होंगे । वह काल तीन भागों में विभक्त होगा–प्रथम तृतीय भाग, मध्यम तृतीय भाग तथा अन्तिम तृतीय भाग । उस काल के प्रथम त्रिभाग में भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होगा ? गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल तथा रमणीय होगा । अवसर्पिणी-काल के सुषम-दुःषमा आरक के अन्तिम तृतीयांश के समान में मनुष्य होंगे । केवल इतना अन्तर होगा, इसमें कुलकर नहीं होंगे, भगवान् ऋषभ नहीं होंगे । इस संदर्भ में अन्य प्राचार्यों का कथन है–उस काल के प्रथम त्रिभाग में पन्द्रह कुलकर होंगे–सुमति यावत् ऋषभ । शेष उसी प्रकार है । दण्डनीतियां विपरीत क्रम से होंगी । उस काल के प्रथम त्रिभाग में राज-धर्म यावत् चारित्र-धर्म विच्छिन्न हो जायेगा । मध्यम तथा अन्तिम त्रिभाग की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वक्तव्यता अवसर्पिणी के प्रथम-मध्यम त्रिभाग की ज्यों समझना । सुषमा और सुषम-सुषमा काल भी उसी जैसे हैं । छह प्रकार के मनुष्यों आदि का वर्णन उसी के सदृश है ।

वक्षस्कार-२-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

वक्षस्कार-३

[५४] भगवन् ! भरतक्षेत्र का 'भरतक्षेत्र' यह नाम किस कारण पड़ा ? गौतम ! भरतक्षेत्र-स्थित वैताढ्य पर्वत के दक्षिण के ११४-११/१९ योजन तथा लवणसमुद्र के उत्तर में ११४-११/१९ योजन की दूरी पर, गंगा महानदी के पश्चिम में और सिन्धु महानदी के पूर्व में दक्षिणार्ध भरत के मध्यवर्ती तीसरे भाग के ठीक बीच में विनीता राजधानी है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बी एवं उत्तर-दक्षिण चौड़ी है । वह लम्बाई में बारह योजन तथा चौड़ाई में नौ योजन है । कुबेर ने अपने बुद्धि-कौशल से उसकी रचना की हो ऐसी है । स्वर्णमय प्राकार, तद्गत विविध प्रकार के मणिमय पंचरंगे कपि-शीर्षकों, भीतर से शत्रु-सेना को देखने आदि हेतु निर्मित बन्दर के मस्तक के आकार के छेदों से सुशोभित वं रमणीय है । वह अलकापुरी-सदृश है । वह प्रमोद और प्रक्रीडामय है । मानो प्रत्यक्ष स्वर्ग का ही रूप हो, ऐसी लगती है । वह वैभव, सुरक्षा तथा समृद्धि से युक्त है । वहाँ के नागरिक एवं जनपद के अन्य भागों से आये हुए व्यक्ति आमोद-प्रमोद के प्रचुर साधन होने से बड़े प्रमुदित रहते हैं । वह प्रतिरूप है ।

[५५] विनीता राजधानी में भरत चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हआ । वह महाहिमवान् पर्वत के समान महत्ता तथा मलय, मेरु एवं महेन्द्र के सदृश प्रधानता या विशिष्टता लिये हुए था। वह राजा भरत राज्य का शासन करता था । राजा के वर्णन का दूसरा गम इस प्रकार है–

वहाँ असंख्यात वर्ष बाद भरत नामक चक्रवर्ती उत्पन्न हुआ । वह यशस्वी, उत्तम, अभिजात, सत्त्व, वीर्य तथा पराक्रम आदि गुणों से शोभित, प्रशस्त वर्ण, स्वर, सुदृढ देह-संहनन, तीक्ष्ण बुद्धि, धारणा, मेधा, उत्तम शरीर-संस्थान, शील एवं प्रकृति युक्त, उत्कृष्ट गौरव, कान्ति एवं गतियुक्त, अनेकविध प्रभावकर वचन बोलने में निपुण, तेज, आयु-बल, वीर्ययुक्त, निश्छिद्र, सघन, लोह-श्रृंखला की ज्यों सुदृढ वज्र-ऋषभ-नाराच-संहनन युक्त था । उसकी हथेलियों और पगथलियों पर मत्स्य, यग, भृंगार, वर्धमानक, भद्रासन, शंख, छत्र, चँवर, पताका, चक्र, लांगन, मूसल, रथ, स्वस्तिक, अंकुश, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, यूप, समुद्र, इन्द्रध्वज, कमल, पृथ्वी, हाथी, सिंहासन, दण्ड, कच्छप, उत्तम पर्वत, उत्तम अश्व, श्रेष्ठ मुकुट, कुण्डल, नन्दावर्त, धनुष, कुन्त, गागर, भवन, विमान प्रभृति पृथक्-पृथक् स्पष्ट रूप में अंकित अनेक सामुद्रिक शुभ लक्षण विद्यमान थे । उसके विशाल वक्षःस्थल पर ऊर्ध्वमुखी, सुकोमल, स्निग्ध, मृदु एवं प्रशस्त केश थे, जिनसे सहज रूप में श्रीवत्स का चिह्न– था । देश एवं क्षेत्र के अनुरूप उसका सुगठित, सुन्दर शरीर था । बाल-सूर्य की किरणों से विकसित कमल के मध्यभाग जैसा उसका वर्ण था । पृष्ठान्त–घोड़े के पृष्ठान्त की ज्यों निरुपलिप्त था, प्रशस्त था । उसके शरीर से पद्म, उत्पल, चमेली, मालती, जूही, चंपक, केसर तथा कस्तूरी के सदृश सुगंध आती थी । वह छत्तीस से कहीं अधिक प्रशस्त राजोचित लक्षणों से युक्त था । अखण्डित-छत्र–का स्वामी था । उसके मातृवंश तथा पितृवंश निर्मल थे । अपने विशुद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुलरूपी आकास में वह पूर्णिमा के चन्द्र जैसा था । वह चन्द्र-सदृश सौम्य था, मन और आंखों के लिए आनन्द्रप्रद था । वह समुद्र के समान निश्चल-गंभीर तथा सुस्थिर था । वह कुबेर की ज्यों भोगोपभोग में द्रव्य का समुचित, प्रचुर व्यय करता था । वह युद्ध में सदैव अपराजित, परम विक्रमशाली था, उसके शत्रु नष्ट हो गये थे । यों वह सुखपूर्वक भरत क्षेत्र के राज्य का भोग करता था ।

[५६] एक दिन राजा भरत की आयुधशाला में दिव्य चक्ररत्न उत्पन्न हुआ । आयुधशाला के अधिकारी ने देखा । वह हर्षित एवं परितुष्ट हुआ, चित्त में आनन्द तथा प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ अत्यन्त सौम्य मानसिक भाव और हर्षातिरेक से विकसितहृदय हो उठा । दिव्य चक्र-रत्न को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, हाथ जोड़ते हुए चक्ररत्न को प्रणाम कर आयुधशाला से निकला, बाहरी उपस्थानशाला में आकर उसने हाथ जोड़ते हुए राजा को 'आपकी जय हो, आपकी विजय हो'–शब्दों द्वारा वर्धापित किया । और कहा आपकी आयुधशाला में दिव्य चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है, आपकी प्रियतार्थ यह प्रिय संवाद निवेदित करता हूँ । तब राजा भरत आयुधशाला के अधिकारी से यह सुनकर हर्षित हुआ यावत् हर्षातिरेक से उसका हृदय खिल उठा । उसके श्रेष्ठ कमल जैसे नेत्र एवं मुख विकसित हो गये । हाथों में पहने हुए उत्तम कटक, त्रुटित, केयूर, मस्तक पर धारण किया हुआ मुकुट, कानों के कुंडल चंचल हो उठे, हिल उठे, हर्षातिरेकवश हिलते हुए हार से उनका वक्षःस्थल अत्यन्त शोभित प्रतीत होने लगा । उसके गले में लटकती हुई लम्बी पुष्पमालाएँ चंचल हो उठीं । राजा उत्कण्ठित होता हुआ बड़ी त्वरा से, शीघ्रता से सिंहासन से उठा, नीचे उतरकर पादुकाएँ उतारीं, एक वस्त्र का उत्तरासंग किया, हाथों को अंजलिबद्ध किये हुए चक्ररत्न के सम्मुख सात-आठ कदम चला, बायें घुटने को ऊँचा किया, दायें घुटने को भूमि पर टिकाया, हाथ जोड़ते हुए, उन्हें मस्तक के चारों ओर घुमाते हुए अंजलि बाँध चक्ररत्न को प्रणाम किया। आयुधशाला के अधिपति को अपने मुकुट के अतिरिक्त सारे आभूषण दान में दे दिये । उसे जीविकोपयोगी विपुल प्रीतिदान किया–सत्कार किया, सम्मान किया । फिर पूर्वाभिमुख हो सिंहासन पर बैठा ।

तत्पश्चात् राजा भरत ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा राजधानी विनीता नगरी की भीतर और बाहर से सफाई कराओ, उसे सम्मार्जित कराओ, सुगंधित जल से उसे आसिक्त कराओं नगरी की सड़कों और गलियों को स्वच्छ कराओ, वहाँ मंच, अतिमंच, निर्मित कराकर उसे सज्जित कराओ, विविध रंगी वस्त्रों से निर्मित ध्वजाओं, पताकाओं, अतिपताकाओं, सुशोभित कराओ, भूमि पर गोबर का लेप कराओ, गोशीर्ष एवं सरस चन्दन से सुरभित करो, प्रत्येक द्वारभाग को चंदनकलशों और तोरणों से सजाओ यावत् सुगंधित धुंए की प्रचुरता से वहाँ गोल-गोल धूममय छल्ले से बनते दिखाई दें । ऐसा कर आज्ञा पालने की सूचना करो । राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर व्यवस्थाधिकारी बहुत हर्षित एवं प्रसन्न हुए । उन्होंने विनीता राजधानी को राजा के आदेश के अनुरूप सजाया, सजवाया और आज्ञापालन की सूचना दी।

तत्पश्चात् राजा भरत स्नानघर में प्रविष्ट हुआ । वह स्नानघर मुक्ताजालयुक्त-मोतियों की अनेकानेक लड़ियों से सजे हुए झरोखों के कारण बड़ा सुन्दर था । उसका प्रांगण विभिन्न मणियों तथा रत्नों से खचित था । उसमें रमणीय स्नान-मंडप था । स्नान-मंडप में अनेक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार से चित्रात्मक रूप में जड़ी गई मणियों एवं रत्नों से सुशोभित स्नान-पीठ था । राजा सुखपूर्वक उस पर बैठा । राजा ने शुभोदक, गन्धोदक, पुष्पोदक एवं शुद्ध जल द्वारा परिपूर्ण, कल्याणकारी, उत्तम स्नानविधि से स्नान किया । स्नान के अनन्तर राजा ने नजर आदि निवारण हेतु रक्षाबन्धन आदि के सैकड़ों विधि-विधान किये । रोएँदार, सुकोमल काषायित, बिभीतक, आमलक आदि कसैली वनौषधियों से रंगे हुए वस्त्र से शरीर पोंछा । सरस, सुगन्धित गोशीर्ष चन्दन का देह पर लेप किया । अहत, बहुमूल्य दूष्यरत्न पहने । पवित्र माला धारण की । केसर आदि का विलेपन किया । मणियों से जड़े सोने के आभूषण पहने । पवित्र माला धारण की । केसर आदि का विलेपन किया । मणियों से जड़े सोने के आभूषण पहने हार, अर्धहार, तीन लड़ों के हार और लम्बे, लटकते कटिसूत्र–से अपने को सुशोभित किया । गले के आभरण धारण किये । अंगुलियों में अंगूठियां पहनी । नाना मणिमय कंकणों तथा त्रुटितों द्वारा भुजाओं को स्तम्भित किया । यों राजा की शोभा और अधिक बढ़ गई । कुंडलों से मुख उद्योतित था । मुकुट से मस्तक दीप्त था । हारों से ढका हुआ उसका वक्षःस्थल सुन्दर प्रतीत हो रहा था । राजा ने एक लम्बे, लटकते हुए वस्त्र को उत्तरीय रूप में धारण किया। मुद्रिकाओं के कारण राजा की अंगुलियां पीली लग रही थीं । सुयोग्य शिल्पियों द्वारा नानाविध, मणि, स्वर्ण, रत्न–इनके योग से सुरचित विमल, महार्ह, सुश्लिष्ट, उत्कृष्ट, प्रशस्त, वीरवलय–धारण किया । इस प्रकार अलंकृत, विभूषित, राजा कल्पवृक्ष ज्यों लगता था । अपने ऊपर लगाये गये कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र, दोनों ओर डुलाये जाते चार चँवर, देखते ही लोगों द्वारा किये गये मंगलमय जय शब्द के साथ राजा स्नान-गृह से बाहर निकला । अनेक गणनायक यावत् संधिपाल, इन सबसे घिरा हुआ राजा धवल महामेघ, चन्द्र के सदृश देखने में बड़ा प्रिय लगता था । वह हाथ में धूप, पुष्प, गन्ध, माला–लिए हुए स्नानघर से निकला, जहाँ आयुधशाला थी, जहाँ चक्ररत्न था, वहाँ के लिए चला । राजा भरत के पीछे-पीछे बहुत से ऐश्वर्यशाली विशिष्ट जन चल रहे थे । उनमें से किन्हीं-किन्हीं के हाथों में पद्म, यावत् शतसहस्रपत्र कमल थे । राजा भरत की बहुत सी दासियां भी साथ थीं ।

[५७] उनमें से अनेक कुबड़ी, अनेक किरात देश की, अनेक बौनी, अनेक कमर से झुकी थी, अनेक बर्बर देश की, बकुश, यूनान, पह्लव, इसिन, थारुकिनिक देश की थी ।

[५८] लासक देश की, लकुश, सिंहल, द्रविड़, अरब, पुलिन्द, पक्कण, बहल, मुरुंड, शबर, पारस–यों विभिन्न देशों की थीं ।

[५९] इनके अतिरिक्त कतिपय दासियाँ तेल-समुद्गक, कोष्ठ, पत्र, चोय, तगर, हरिताल, हिंगुल, मैनसिल, तथा सर्षप समुद्गक लिये थीं । कतिपय दासियों के हाथों में तालपत्र, धूपकडच्छुक–धूपदान थे ।

[६०] उनमें से किन्हीं-किन्हीं के हाथों में मंगलकलश, भृंगार, दर्पण, थाल, छोटे पात्र, सुप्रतिष्ठक, वातकरक, रत्नकरंडक, फूलों की डलिया, माला, वर्ण, चूर्ण, गन्ध, वस्त्र, आभूषण, मोर-पंखों से बनी फूलों के गुलदस्तों से भरी डलिया, मयूरपिच्छ, सिंहासन, छत्र, चँवर तथा तिलसमुद्गक–आदि भिन्न-भिन्न वस्तुएँ थीं । यों वह राजा भरत सब प्रकार की ऋद्धि, द्युति, बल, समुदय, आदर, विभूषा, वैभव, वस्त्र, पुष्प, गन्ध, अलंकार–इस सबकी शोभा से युक्त कलापूर्ण शैली में एक साथ बजाये गये शंख, प्रणव, पटह, भेरी, झालर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खरमुखी, मुरज, मृदंग, दुन्दुभि के निनाद के साथ जहाँ आयुधशाला थी, वहाँ आया । चक्ररत्न की ओर देखते ही, प्रणाम किया, मयूरपिच्छ द्वारा चक्ररत्न को झाड़ा-पोंछा, दिव्य जल-धारा द्वारा सिंचन किया, सरस गोशीर्ष-चन्दन से अनुलेपन किया, अभिनव, उत्तम सुगन्धित द्रव्यों और मालाओं से उसकी अर्चा की, पुष्प चढ़ाये, माला, गन्ध, वर्णक एवं वस्त्र चढ़ाये, आभूषण चढ़ाये । चक्ररत्न के सामने उजले, स्निग्ध, श्वेत, रत्नमय अक्षत चावलों से स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्दावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, मत्स्य, कलश, दर्पण–इन अष्ट मंगलों का आलेखन किया । गुलाब, मल्लिका, चंपक, अशोक, पुन्नाग, आम्रमंजरी, नवमल्लिका, वकुल, तिलक, कणवीर, कुन्द, कुब्जक, कोरंटक, पत्र, दमनक–ये सुरभित–सुगन्धित पुष्प राजा ने हाथ में लिये, चक्ररत्न के आगे बढ़ाये, इतने चढ़ाये कि उन पंचरंगे फूलों का चक्ररत्न के आगे जानुप्रमाण–ऊँचा ढेर लग गया ।

तदनन्तर राजा ने धूपदान हाथ में लिया जो चन्द्रकान्त, वज्र-हीरा, वैडूर्य रत्नमय दंडयुक्त, विविध चित्रांकन के रूप में संयोजित स्वर्ण, मणि एवं रत्नयुक्त, काले अगर, उत्तम कुन्दरुक, लोबान तथा धूप की महक से शोभित, वैडूर्य मणि से निर्मित था आदरपूर्वक धूप जलाया, धूप जलाकर सात-आठ कदम पीछे हटा, बायें घूटने को ऊँचा किया, यावत् चक्ररत्न को प्रणाम किया । आयुधशाला से निकला, बाहरी उपस्थानशाला–में आकर पूर्वाभिमुख हो सिंहासन पर विधिवत् बैठा । अठारह श्रेणिप्रश्रेणि के प्रजाजनों को बुलाकर कहा–देवानुप्रियो ! चक्ररत्न के उत्पन्न होने के उपलक्ष्य में तुम सब महान् विजय का संसूचक अष्ट दिवसीय महोत्सव आयोजित करो । 'इन दिनों राज्य में कोई भी क्रय-विक्रय आदि सम्बन्धी शुल्क, राज्य-कर नहीं लिया जायेगा । आदान-प्रदान का, नाप-जोख का क्रम बन्द रहे, राज्य के कर्मचारी, अधिकारी किसी के घर में प्रवेश न करें, दण्ड, कुदण्ड, नहीं लिये जायेंगे । ऋणी को ऋण-मुक्त कर दिया जाए । नृत्यांगनाओं के तालवाद्य-समन्वित नाटक, नृत्य आदि आयोजित कर समारोह को सुन्दर बनाया जाए, यथाविधि समुद्भावित मृदंग-से महोत्सव को गुंजा दिया जाए । नगरसज्जा में लगाई गई या पहनी गई मालाएँ कुम्हलाई हुई न हों, ताजे फूलों से बनी हों । यों प्रत्येक नगरवासी और जनपदवासी प्रमुदित हो आठ दिन तक महोत्सव मनाएँ । राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वे अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि के प्रजा-जन हर्षित हुए, विनयपूर्वक राजा का वचन शिरोधार्य किया । उन्होंने राजा की आज्ञानुसार अष्ट दिवसीय महोत्सव की व्यवस्था की, करवाई ।

[६१] अष्ट दिवसीय महोत्सव के संपन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न आयुधगृहशाला–से निकला । निकलकर आकाश में प्रतिपन्न हुआ । वह एक सहस्र यक्षों से संपरिवृत था । दिव्य वाद्यों की ध्वनि एवं निनाद से आकाश व्याप्त था । वह चक्ररत्न विनीता राजधानी के बीच से निकला । निकलकर गंगा महानदी के दक्षिणी किनारे से होता हुआ पूर्व दिशा में मागध तीर्थ की ओर चला । राजा भरत ने उस दिव्य चक्ररत्न को गंगा महानदी के दक्षिणी तट से होते हुए पूर्व दिशा में मागध तीर्थ की ओर बढ़ते हुए देखा, वह हर्षित व परितुष्ट हुआ, उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–आभिषेक्य–हस्तिरत्न को शीघ्र ही सुसज्ज करो । घोड़े, हाथी, रथ तथा श्रेष्ठ योद्धाओं–से परिगठित चतुरंगिणी सेना को तैयार करो । यथावत् आज्ञापालन कर मुझे सूचित करो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्पश्चात् राजा भरत स्नानघर में प्रविष्ट हुआ । वह स्नानघर मुक्ताजाल युक्त–झरोखों के कारण बड़ा सुन्दर था । यावत् वह राजा स्नानघर से निकला । निकलकर घोड़े, हाथी, रथ, अन्यान्य उत्तम वाहन तथा योद्धाओं के विस्तार से युक्त सेना से सुशोभित वह राजा जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी, आभिषेक्य हस्तिरत्न था, वहाँ आया और अंजनगिरि के शिखर के समान विशाल गजपति पर आरूढ हुआ । भरताधिप–राजा भरत का वक्षस्थल हारों से व्याप्त, सुशोभित एवं प्रीतिकर था । उसका मुख कुंडलों से उद्योतित था । मस्तक मुकुट से देदीप्यमान था । नरसिंह, नरपति, परिपालक, नरेन्द्र, परम ऐश्वर्यशाली अभिनायक, नरवृषभ, कार्यभार के निर्वाहक, मरुद्राजवृषभकल्प, इन्द्रों के मध्य वृषभ सदृश, दीप्तिमय, वंदिजनों द्वारा संस्तुत, जयनाद से सुशोभित, गजारूढ राजा भरत सहस्त्रों यक्षों से संपरिवृत धनपति यक्षराज कुबेर सदृश लगता था । देवराज इन्द्र के तुल्य उसकी समृद्धि थी, जिससे उसका यश सर्वत्र विश्रुत था । कोरंट के पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र उस पर तना था । श्रेष्ट, श्वेत चँवर डुलाये जा रहे थे ।

राजा भरत गंगा महानदी के दक्षिणी तट से होता हुआ सहस्त्रों ग्राम, यावत् संबाध–से सुशोभित, प्रजाजनयुक्त पृथ्वी को–जीतता हुआ, उत्कृष्ट, श्रेष्ठ रत्नों को भेंट के रूप में ग्रहण करता हुआ, दिव्य चक्ररत्न का अनुगमन करता हुआ, एक-एक योजन पर अपने पड़ाव डालता हुआ जहाँ मागध तीर्थ था, वहाँ आया । आकर मागध तीर्थ के न अधिक दूर, न अधिक समीप, बारह योजन लम्बा तथा नौ योजन चौड़ा उत्तम नगर जैसा विजय स्कन्धावार लगाया । फिर राजा ने वर्धकिरत्न–को बुलाकर कहा–देवानुप्रिय ! शीघ्र ही मेरे लिए आवास-स्थान एवं पोषधशाला का निर्माण करो । उसने राजा के लिए आवास-स्थान तथा पोषधशाला का निर्माण किया । तब राजा भरत आभिषेक्य हस्तिरत्न से नीचे उतरा । पोषधशाला में प्रविष्ट हुआ, पोषधशाला का प्रमार्जन किया, सफाई की । डाभ का बिछौना बिछाया । उस पर बैठा । मागध तीर्थकुमार देव को उद्दिष्ट कर तत्साधना हेतु तेल की तपस्या की । पोषधशाला में पोषध लिया । आभूषण शरीर से उतार दिये । माला, वर्णक आदि दूर किये, शस्त्र, मूसल, आदि हथियार एक ओर रखे । यों डाभ के बिछौने पर अवस्थित राजा भरत निर्भीकता–से आत्मबलपूर्वक तेले की तपस्या में प्रतिजागरित हुआ । तपस्या पूर्ण हो जाने पर राजा भरत पौषधशाला से बाहर निकला । अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–घोड़े, हाथी, रथ एवं उत्तम योद्धाओं–से सुशोभित चतुरंगिणी सेना को शीघ्र सुसज्ज करो । चातुर्घंट–अश्वरथ तैयार करो । स्नानादि से निवृत्त होकर राजा स्नानघर से निकला । घोड़े, हाथी, रथ, अन्यान्य उत्तम वाहन तथा सेना से सुशोभित वह राजा रथारूढ हुआ ।

[६२] तत्पश्चात् राजा भरत चातुर्घंट–अश्वरथ पर सवार हुआ । वह घोड़े, हाथी, रथ तथा पदातियों से युक्त चातुरंगिणी सेना से घिरा था । बड़े-बड़े योद्धाओं का समूह साथ चल रहा था । हजारों मुकुटधारी श्रेष्ट राजा पीछे-पीछे चल रहे थे । चक्ररत्न द्वारा दिखाये गये मार्ग पर वह आगे बढ रहा था । उस के द्वारा किये गये सिंहनाद के कलकल शब्द से ऐसा भान होता था कि मानो वायु द्वारा प्रक्षुभित महासागर गर्जन कर रहा हो । उसने पूर्व दिशा की ओर आगे बढ़ते हुए, मागध तीर्थ होते हुए अपने रथ के पहिये भीगे, उतनी गहराई तक लवणसमुद्र में प्रवेश किया । फिर घोड़ों को रोका, रथ को ठहराया और धनुष उठाया । वह धनुष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचिरोद्गत बालचन्द्र–जैसा एवं इन्द्रधनुष जैसा था । उत्कृष्ट, गर्वोद्धत भैंसे के सदृढ, सघन सींगों की ज्यों निश्छिद्र था । उस धनुष का पृष्ठ भगा उत्तम नाग, महिषश्रृंग, श्रेष्ठ कोकिल, भ्रमरसमुदाय तथा नील के सदृश उज्ज्वल काली कांति से युक्त, तेज से जाज्वल्यमान एवं निर्मल था । निपुण शिल्पी द्वारा चमकाये गये, देदीप्यमान मणियों और रत्नों की घंटियों के समूह से वह परिवेष्टित था । बिजली की तरह जगमगाती किरणों से युक्त, स्वर्ण से परिबद्ध तथा चिह्नित था । दर्दर एवं मलय पर्वत के शिखर पर रहनेवाले सिंह के अयाल तथा चँवरी गाय की पूंछ के बालों के उस पर सुन्दर, अर्ध चन्द्राकार बन्ध लगे थे । काले, हरे, लाल, पीले तथा सफेद स्नायुओं–की प्रत्यञ्चा बंधी थी । शत्रुओं के जीवन का विनाश करने में वह सक्षम था । राजा ने वह धनुष पर बाण चढ़ाया । बाण की दोनों कोटियां उत्तम वज्र–से बनी थीं । उसका मुख वज्र की भांति अभेद्य था । उसकी पुंख–स्वर्ण में जड़ी हुई चन्द्रकांत आदि मणियों तथा रत्नों से सुसज्ज था । उस पर अनेक मणियों और रत्नों द्वारा सुन्दर रूप में राजा भरत का नाम अंकित था । भरत ने धनुष चढ़ाने के समय प्रयुक्त किये जाने वाले विशेष पादन्यास में स्थित होकर उस उत्कृष्ट बाण को कान तक खींचा और वह यों बोला–

[६३] मेरे द्वारा प्रयुक्त बाण के बहिर्भाग में तथा आभ्यन्तर भाग में अधिष्ठित नागकुमार, असुरकुमार, सुपर्णकुमार आदि देवो । मैं आपकों प्रणाम करता हूँ ।

[६४] आप उसे स्वीकार करें । यों कहकर राजा भरत ने बाण छोड़ा ।

[६५] मल्ल जब अखाड़े में उतरता है, तब जैसे वह कमर बांधे होता है, उसी प्रकार भरत युद्धोचित वस्त्र-बन्ध द्वारा अपनी कमर बांधे था । उसका कौशेय–पहना हुआ वस्त्र-विशेष हवा से हिलता हुआ बड़ा सुन्दर प्रतीत होता था ।

[६६] विचित्र, उत्तम धनुष धारण किये वह साक्षात् इन्द्र की ज्यों सुशोभित हो रहा था, विद्युत् की तरह देदीप्यमान था । पञ्चमी के चन्द्र सदृश शोभित वह महाधनुष राजा के विजयोद्यत बायें हाथ में चमक रहा था ।

[६७] राजा भरत द्वारा छोड़े जाते ही वह बाण तुरन्त बारह योजन तक जाकर मागध तीर्थ के अधिपति–के भवन में गिरा । मागध तीर्थाधिपति देव तत्क्षण क्रोध से लाल हो गया, रोषयुक्त, कोपाविष्ट, प्रचण्ड और क्रोधाग्नि से उद्दीप्त हो गया । कोपाधिक्य से उसके ललाट पर तीन रेखाएं उभर आई । उसकी भृकुटि तन गई । वह बोला–'अप्रार्थित–मृत्यु को चाहने वाला, दुःखद अन्त तथा अशुभ लक्षण वाला, पुण्य चतुर्दशी जिस दिन हीन–थी, उस अशुभ दिन में जन्मा हुआ, लज्जा तथा श्री-शोभा से परिवर्जित वह कौन अभागा है, जिसने उत्कृष्ट देवानुभाव से लब्ध प्राप्त स्वायत्त मेरी ऐसी दिव्य देवऋद्धि, देवद्युति पर प्रहार करते हुए मौत से न डरते हुए मेरे भवन में बाण गिराया है ?' वह अपने सिंहासन से उठा और उस बाण को उठाया, नामांकन देखा । देखकर उसके मन में ऐसा चिन्तन, विचार, मनोभाव तथा संकल्प उत्पन्न हुआ–'जम्बूद्वीप के अन्तर्वर्ती भरतक्षेत्र में भरत नामक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुआ है । अतः अतीत, प्रत्युत्पन्न तथा अनागत–मागधतीर्थ के अधिष्ठातृ देवकुमारों के लिए यह उचित है, परम्परागत व्यवहारानुरूप है कि वे राजा को उपहार भेंट करें । इसलिए मैं भी जाऊँ, राजा को उपहार भेंट करूं ।' यों विचार कर उसने हार, मुकुट, कुण्डल, कटक, कड़े, त्रुटित, वस्त्र, अन्यान्य विविध अलंकार, भरत के नाम से अंकित बाण और मागध तीर्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का जल लिया । वह उत्कृष्ट, त्वरित वेगयुक्त, सिंह की गति की ज्यों प्रबल, शीघ्रतायुक्त, तीव्रतायुक्त, दिव्य देवगति से जहाँ राजा भरत था, वहाँ आकर छोटी-छोटी घंटियों से युक्त पंचरंगे उत्तम वस्त्र पहने हुए, आकाश में संस्थित होते हुए उसने अपने जुड़े हुए दोनों हाथों से अंजलिपूर्वक राजा भरत को 'जय, विजय' शब्दों द्वारा वर्धापित करके कहा—आपने पूर्व दिशा में मागध तीर्थ पर्यन्त समस्त भरतक्षेत्र भली-भांति जीत लिया है । मैं आप द्वारा जीते हुए देश का निवासी हूँ, आपका अनुज्ञावर्ती सेवक हूँ, आपका पूर्व दिशा का अन्तपाल हूँ—। अतः आप मेरे द्वारा प्रस्तुत यह प्रीतिदान—एवं हर्षपूर्वक अपहृत भेंट स्वीकार करें ।'

राजा भरत ने मागध तीर्थकुमार द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत प्रीतिदान स्वीकार किया । मागध तीर्थकुमार देव का सत्कार किया, सम्मान किया, विदा किया । फिर राजा भरत ने अपना रथ वापस मोड़ा । वह मागथ तीर्थ से होता हुआ लवणसमुद्र से वापस लौटा । जहाँ उसका सैन्य था, वहाँ आकर घोड़ों को रोका, रथ को ठहराया, रथ से नीचे उतरा, स्नानघर में प्रविष्ट हुआ । स्नानादि सम्पन्न कर भोजनमण्डप में आकर सुखासन से बैठा, तेले का पारण किया । भोजनमण्डप से बाहर निकला, पूर्व की ओर मुंह किये सिंहासन पर आसीन हुआ । सिंहासनासीन होकर उसने अठारह श्रेणीप्रश्रेणी-अधिकृत पुरुषों को बुलाया । उन्हें कहा—मागधतीर्थकुमार देव को विजित कर लेने के उपलक्ष में अष्ट दिवसीय महोत्सव आयोजित करो। तत्पश्चात् शस्त्रागार से प्रतिनिष्क्रान्त हुआ— । उस चक्ररत्न का अरक-हीरों से जड़ा था। आरे लाल रत्नों से युक्त थे । उसकी नेमि स्वर्णमय थी । उसका भीतरी परिधिभाग अनेक मणियों से परिगत था । वह चक्रमणियों तथा मोतियों के समूह से विभूषित था । वह मृदंग आदि बारह प्रकार के वाद्यों के घोष से युक्त था । उसमें छोटी-छोटी घण्टियां लगी थीं । वह दिव्य प्रभावयुक्त था, मध्याह्न काल के सूर्य के सदृश तेजयुक्त था, गोलाकार था, अनेक प्रकार की मणियों एवं रत्नों की घण्टियों के समूह से परिव्याप्त था । सब ऋतुओं में खिलने वाले सुगन्धित पुष्पों की मालाओं से युक्त था, अन्तरिक्षप्रतिपन्न था, गतिमान् था, १००० यक्षो से संपरिवृत था, दिव्य वाद्यों के शब्द से गगनतल को मानो भर रहा था । उसका सुदर्शन नाम था । राजा भरत के उस प्रथम—चक्ररत्न ने यों शस्त्रागार से निकलकर नैऋत्य कोण में वरदाम तीर्थ की ओर प्रयाण किया ।

[६८] राजा भरत ने दिव्य चक्ररत्न को दक्षिण-पश्चिम दिशा में वरदामतीर्थ की ओर जाते हुए देखा । वह बहुत हर्षित तथा परितुष्ट हुआ । उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा—घोड़े, हाथी, रथ तथा श्रेष्ठ योद्धाओं—से परिगठित चातुरंगिणी सेना को तैयार करो, आभिषेक्य हस्तिरत्न को शीघ्र ही सुसज्ज करो । यों कहकर राजा स्नानघर में प्रविष्ट हुआ । स्नानादि सम्पन्न कर बाहर निकला । गजपति पर वह नरपति आरूढ हुआ । यावत् हजारों योद्धाओं से वह विजय परिगत था । उन्नत, उत्तम मुकुट, कुण्डल, पताका, ध्वजा, तथा वैजयन्ती—चँवर, छत्र—इनकी सघनता से प्रसूत अन्धकार से आच्छन्न था । असि, क्षेपणी, खड्ग, चाप, नाराच, कणक, कल्पनी, शूल, लकुट, भिन्दिपाल, धनुष, तूणीर, शर—आदि शस्त्रों से, जो कृष्ण, नील, रक्त, पीत तथा श्वेत रंग के सैकड़ों चिह्नों से युक्त थे, व्याप्त था। भुजाओं को ठोकते हुए, सिंहनाद करते हुए योद्धा राजा भरत के साथ-साथ चल रहे थे । घोड़े हर्ष से हिनहिना रहे थे, हाथी चिंघाड़ रहे थे, लाखों रथों के चलने की ध्वनि, घोड़ों को ताड़ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हेतु प्रयुक्त चाबुकों की आवाज, भम्भा, कौरम्भ, वीणा, खरमुखी, मुकुन्द, शंखिका, परिली तथा वद्यक, परिवादिनी, दंस, बांसुरी, विपञ्ची, महती कच्छपी, सारंगी, करताल, कांस्यताल, परस्पर हस्त-ताडन आदि से उत्पन्न विपुल ध्वनि-प्रतिध्वनि से मानो सारा जगत् आपूर्ण हो रहा था । इन सबके बीच राजा भरत अपनी चातुरंगिणी सेना तथा विभिन्न वाहनों से युक्त, सहस्र यक्षों से संपरिवृत कुबेर सदृश वैभवशाली तथा अपनी ऋद्धि से इन्द्र जैसा यशस्वी—प्रतीत होता था । वह ग्राम, आकर यावत् संबाध—इनसे सुशोभित भूमण्डल की विजय करता हुआ—उत्तम, श्रेष्ठ रत्नों को भेंट के रूप में स्वीकार करता हुआ, दिव्य चक्ररत्न का अनुगमन करता हुआ—वरदामतीर्थ था, वहाँ आया । वरदामतीर्थ से कुछ ही दूरी पर बारह योजन लम्बा, नौ योजन चौड़ा, विशिष्ट नगर के सदृश अपना सैन्य-शिविर लगाया । उसने वर्द्धकिरत्न को बुलाया । कहा—शीघ्र ही मेरे लिए आवासस्थान तथा पौषधशाला का निर्माण करो ।

[६९] वह शिल्पी आश्रम, द्रोणमुख, ग्राम, पट्टन, नगर, सैन्यशिबिर, गृह, आपण—इत्यादि की समुचित संरचना में कुशल था । इक्यासी प्रकार के वास्तु-क्षेत्र का जानकार था। विधिज्ञ था । विशेषज्ञ था । विविध परम्परानुगत भवनों, भोजनशालाओं, दुर्ग-भित्तियों, वासगृहों—के यथोचित रूप में निर्माण करने में निपुण था । काठ आदि के छेदन-वेधन में, गैरिक लगे धागे से रेखाएँ अंकित कर नाप-जोख में कुशल था । जलगत तथा स्थलगत सुरंगों के, घटिकायन्त्र आदि के निर्माण में, परिखाओं—के खनन में शुभ समय के, इनके निर्माण के प्रशस्त के प्रशस्त एवं एप्रशस्त रूप के परिज्ञान में प्रवीण था । शब्दशास्त्र, अंकन, लेखन आदि में, वास्तुप्रदेश में—सुयोग्य था । भवन निर्माणोचित भूमि में उत्पन्न फलाभिमुख बेलों, दूरफल बेलों, वृक्षों एवं उन पर छाई हुई बेलों के गुणों तथा दोषों को समझने में सक्षम था। गुणाढ्य था—सान्तन, स्वस्तिक आदि सोलह प्रकार के भवनों के निर्माण में कुशल था । शिल्पशास्त्र में प्रसिद्ध चौसठ प्रकार के घरों की रचना में चतुर था । नन्द्यावर्त, वर्धमान, स्वस्तिक, रुचक तथा सर्वतोभद्र आदि विशेष प्रकार के गृहों, ध्वजाओं, इन्द्रादि देवप्रतिमाओं, धान्य के कोठों की रचना में, भवन-निर्माणार्थ अपेक्षित काठ के उपयोग में, दुर्ग आदि निर्माण, इन सबके संचयन और सन्निर्माण में समर्थ था ।

[७०] वह शिल्पकार अनेकानेक गुणयुक्त था । राजा भरत को अपने पूर्वाचरित तप तथा संयम के फलस्वरूप प्राप्त उस शिल्पी ने कहा—स्वामी ! मैं क्या निर्माण करूं ?

[७१] राजा के वचन के अनुरूप उसने देवकर्मविधि से—दिव्य क्षमता द्वारा मुहूर्त्त मात्र में—सैन्यशिबिर तथा सुन्दर आवास-भवन की रचना कर दी । पौषधशाला का निर्माण किया।

[७२] तत्पश्चात् राजा भरत के पास आकर निवेदित किया कि आपके आदेशानुरूप निर्माण-कार्य सम्पन्न कर दिया है । इससे आगे का वर्णन पूर्ववत् है ।

[७३] वह रथ पृथ्वी पर शीघ्र गति से चलनेवाला था । अनेक उत्तम लक्षण युक्त था। हिमालय पर्वत की वायुरहित कन्दराओं में संवर्धित तिनिश नामक रथनिर्माणोपयोगी वृक्षों के काठ से बना था । उसका जुआ जम्बूनद स्वर्ण से निर्मित था । आरे स्वर्णमयी ताड़ियों के थे । पुलक, वरेन्द्र, नील सासक, प्रवाल, स्फटिक, लेष्टु, चन्द्रकांत, विद्रुम रत्नों एवं मणियों से विभूषित था । प्रत्येक दिशा में बारह बारह के क्रम से उसके अड़तालीस आरे थे । दोनों तुम्ब स्वर्णमय पट्टों से दृढीकृत थे, पृष्ठ—विशेष रूप से घिरी हुई, बंधी हुई, सटी हुई, नई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पट्टियों से सुनिष्पन्न थी । अत्यन्त मनोज्ञ, नूतन लोहे की सांकल तथा चमड़े के रस्से से उसके अवयव बंधे थे । दोनों पहिए वासुदेव के शस्त्ररत्न–सदृश थे । जाली चन्द्रकांत, इन्द्रनील तथा शस्यक रत्नों से सुरचित और सुसज्जित थी । धुरा प्रशस्त, विस्तीर्ण तथा एकसमान थी । श्रेष्ठ नगर की ज्यों वह गुप्त था, घोड़ों के गले में डाली जाने वाली रस्सी कमनीय किरणयुक्त, लालिमामय स्वर्ण से बनी थी । उसमें स्थान-स्थान पर कवच प्रस्थापित थे । प्रहरणों–से परिपूरित था । ढालों, कणकों, धनुषों, पण्डलाओं, त्रिशूलों, भालों, तोमरों तथा सैकड़ों बाणों से युक्त बत्तीस तूणीरों से वह परिमंडित था । उस पर स्वर्ण एवं रत्नों द्वारा चित्र बने थे । उसमें हलीमुख, बगुले, हाथीदांत, चन्द्र, मुक्ता, भल्लिका, कुन्द, कुटज तथा कन्दल के पुष्प, सुन्दर फेन-राशि, मोतियों के हार और काश के सदृश धवल, अपनी गति द्वारा मन एवं वायु का गति को जीतनेवाले, चपल शीघ्रगामी, चँवरों और स्वर्णमय आभूषणों से विभूषित चार घोड़े जुते थे । उस पर छत्र बना था । ध्वजाएँ, घण्टियां तथा पताकाएँ लगी थीं ।

उसका सन्धि-योजन सुन्दर रूप में निष्पादित था । सुस्थापित समर के गम्भीर गोष जैसा उसका घोष था । उसके कूर्पर–उत्तम थे । वह सुन्दर चक्रयुक्त तथा उत्कृष्ट नेमिमंडल युक्त था । जुए के दोनों किनारे बड़े सुन्दर थे । दोनों तुम्ब श्रेष्ठ वज्र रत्न से–बने थे । वह श्रेष्ठ स्वर्ण से–सुशोभित था । सुयोग्य शिल्पकारों द्वारा निर्मित था । उत्तम घोड़े जोते जाते थे । सुयोग्य सारथि द्वारा सुनियोजित था । उत्तमोत्तम रत्नों से परिमंडित था । सोने की घण्टियों से शोभित था । वह अयोध्य था उसका रंग विद्युत, परितप्त स्वर्ण, कमल, जपा-कुसुम, दीप्त अग्नि तथा तोते की चोंच जैसा था । उसकी प्रभा घुंघची के अर्ध भाग, बन्धुजीवक पुष्प, सम्मर्दित हिंगुल-राशि, सिन्दूर, श्रेष्ठ केसर, कबूतर के पैर, कोयल की आंखें, अधरोष्ठ, मनोहर रक्ताशोक तरु, स्वर्ण, पलाशपुष्प, हाथी के तालु, इन्द्रगोपक जैसी थी । कांति बिम्बफल, शिलाप्रवाल एवं उदीयमान सूर्य के सदृश थी । सब ऋतुओं में विकसित होनेवाले पुष्पों की मालाएँ लगी थीं । उन्नत श्वेत ध्वजा फहरा रही थी । उसका घोष गम्भीर था, शत्रु के हृदय को कँपा देनेवाला था । लोकविश्रुत यशस्वी राजा भरत प्रातःकाल पौषध पारित कर उस सर्व अवयवों से युक्त चातुर्घण्ट 'पृथ्वीविजयलाभ' नामक अश्वरथ पर आरूढ हुआ । शेष पूर्ववत् ।

राजा भरत ने पूर्व दिशा की ओर बढ़ते हुए वरदाम तीर्थ होते हुए अपने रथ के पहिये भीगें, उतनी गहराई तक लवणसमुद्र में प्रवेश किया । शेष कथन मागध तीर्थकुमार समान जानना । वरदाम तीर्थकुमार ने राजा भरत को दिव्य, सर्व विषापहारी चूडामणि, वक्षःस्थल और गले के अलंकार, मेखला, कटक, त्रुटित भेंट किये और कहा कि मैं आपका दक्षिणदिशा का अन्तपाल हूँ । इस विजय के उपलक्ष्य में राजा की आज्ञा के अनुसार अष्टदिवसीय महोत्सव आयोजित हुआ । महोत्सव के परिसम्पन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न शस्त्रागार से बाहर निकला । आकाश में अधर अवस्थित हुआ । वह एक हजार यक्षों से परिवृत था । दिव्य वाद्यों के शब्द से गगनमण्डल को आपूरित करते हुए उसने उत्तर-पश्चिम दिशा में प्रभास तीर्थ की ओर होते हुए प्रयाण किया ।

राजा भरत ने उस दिव्य चक्ररत्न का अनुगमन करते हुए, उत्तर-पश्चिम दिशा होते हुए, पश्चिम में, प्रभास तीर्थ की ओर जाते हुए, अपने रथ के पहिये भीगें, उतनी गहराई तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लवणसमुद्र में प्रवेश किया । शेष कथन पूर्ववत् । प्रभास तीर्थकुमार ने भी प्रीतिदान के रूप में भेंट करने हेतु रत्नों की माला, मुकुट यावत् राजा भरत के नाम से अंकित बाण तथा प्रभासतीर्थ का जल दिया– और कहा–मैं आप द्वारा विजित देश का वासी हूँ, पश्चिम दिशा का अन्तपाल हूँ । शेष पूर्ववत् जानना ।

[७४] प्रभास तीर्थकुमार को विजित कर लेने के उपलक्ष्य में समायोजित अष्टदिवसीय महोत्सव के परिसम्पन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न शस्त्रागार से बाहर निकला । यावत् उसने सिन्धु महानदी के दाहिने किनारे होते हुए पूर्व दिशा में सिन्धु देवी के भवन की ओर प्रयाण किया । राजा भरत बहुत हर्षित हुआ, परितुष्ट हुआ । जहाँ सिन्धु देवी का भवन था, उधर आया । सिन्धु देवी के भवन के थोड़ी ही दूरी पर बारह योजन लम्बा तथा नौ योजन चौड़ा, श्रेष्ठ नगर के सदृश सैन्य-शिबिर स्थापित किया । यावत् सिन्धु देवी की साधना हेतु तेल किया। पौषधशाला में पौषध लिया, ब्रह्मचर्य स्वीकार किया । यावत् यों डाभ के बिछौने पर उपगत, तेले की तपस्या में अभिरत भरत मन में सिन्धु देवी का ध्यान करता हुआ स्थित हुआ। सिन्धु देवी का आसन चलित हुआ । सिन्धु देवी ने अवधिज्ञान का प्रयोग किया । भरत को देखा, देवी के मन में ऐसा चिन्तन, विचार, मनोभाव तथा संकल्प उत्पन्न हुआ– जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरतक्षेत्र में भरत नामक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुआ है । यावत् देवी रत्नमय १००८ कलश, विविध मणि, स्वर्ण, रत्नाञ्चित चित्रयुक्त दो स्वर्ण-निर्मित उत्तम आसन, कटक, त्रुटित तथा अन्यान्य आभूषण लेकर तीव्र गतिपूर्वक वहाँ आई और बोली– आपने भरतक्षेत्र को विजय कर लिया है । मैं आपके देश में–आज्ञाकारिणी सेविका हूँ । देवानुप्रिय ! मेरे द्वारा प्रस्तुत उपहार आप ग्रहण करें । शेष पूर्ववत् । यावत् पूर्वाभिमुख हो उत्तम सिंहासन पर बैठा । सिंहासन पर बैठकर अपने अठारह श्रेणी-प्रश्रेणी-अधिकृत पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा कि अष्टदिवसीय महोत्सव का आयोजन करो ।

[७५] सिन्धुदेवी के विजयोपलक्ष्य में अष्टदिवसीय महोत्सव सम्पन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न पूर्ववत् शास्त्रागार से बाहर निकला । ईशानकोण में वैताढ्य पर्वत की ओर प्रयाण किया । राजा भरत वैताढ्य पर्वत की दाहिनी ओर की तलहटी थी, वहाँ आया । वहाँ बारह योजन लम्बा तथा नौ योजन चौड़ा सैन्य-शिबिर स्थापित किया । वैताढ्यकुमार देव को उद्दिष्ट कर तेला किया । पौषध लिया, वैताढ्य गिरिकुमार का ध्यान करता हुआ अवस्थित हुआ । वैताढ्य गिरिकुमार का आसन डोला । आगे सिन्धुदेवी के समान समझना । राजा की आज्ञा से अष्टदिवसीय महोत्सव आयोजित कर आयोजकों ने राजा को सूचित किया ।

अष्ट दिवसीय महोत्सव के सम्पन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न पश्चिम दिशा में तमिस्रा गुफा की ओर आगे बढ़ा । राजा भरत ने तमिस्रा गुफा से थोड़ी ही दूरी पर बारह योजन लम्बा और नौ योजन चौड़ा सैन्य शिबिर स्थापित किया । कृतमाल देव को उद्दिष्ट कर उसने तेला किया यावत् कृतमाल देव का आसन चलित हुआ । शेष वर्णन वैताढ्य गिरिकुमार समान है । कृतमाल देव ने राजा भरत को प्रीतिदान देते हुए राजा के स्त्री-रत्न के लिए रत्न-निर्मित चौदह तिलक–सहित आभूषणों की पेटी, कटक आदि लिये । राजा को ये उपहार भेंट किये । राजा ने उसका सत्कार किया, सम्मान किया, विदा किया । यावत् अष्टदिवसीय महोत्सव आयोजित हुआ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[७६] कृतमाल देव के विजयोपलक्ष्य में समायोजित अष्टदिवसीय महोत्सव के सम्पन्न हो जाने पर राजा भरत ने अपने सुषेण सेनापति को बुलाकर कहा–सिंधु महानदी के पश्चिम से विद्यमान, पूर्व में तथा दक्षिण में सिन्धु महानदी द्वारा, पश्चिम में पश्चिम समुद्र द्वारा तथा उत्तर में वैताढ्य पर्वत द्वारा विभक्त भरतक्षेत्र के कोणवर्ती खण्डरूप निष्कुट प्रदेशों को, उसके सम, विषम अवान्तर-क्षेत्रों को अधिकृत करो । उनसे अभिनव, उत्तम रत्न–गृहीत करो । सेनापति सुषेण चित्त में हर्षित, परितुष्ट तथा आनन्दित हुआ । सुषेण भरतक्षेत्र में विश्रुतयशा–था । विशाल सेना का अधिनायक था, अत्यन्त बलशाली तथा पराक्रमी था । स्वभाव से उदात्त था । ओजस्वी, तेजस्वी था । वह भाषाओं में निष्णात था । उन्हें बोलने में, समझने में, उन द्वारा औरों को समझाने में समर्थ था । सुन्दर, शिष्ट भाषा-भाषी था । निम्न, गहरे, दुर्गम, दुष्प्रवेश्य, स्थानों का विशेषज्ञ था । अर्थशास्त्र आदि में कुशल था । सेनापति सुषेण ने अपने दोनों हाथ जोड़े । उन्हें मस्तक से लगाया–राजा का आदेश विनयपूर्वक स्वीकार किया । चलकर अपना आवास में आया । अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–

आभिषेक्य हस्तिरत्न को–तैयार करो, घोड़े, हाथी, रथ तथा उत्तम योद्धाओं–से चातुरंगिणी सेना को सजाओ । ऐसा आदेश देकर स्नान किया, नित्य-नैमित्तिक कृत्य किये, कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त किया, अंजन आंजा, तिलक लगाया, दुःस्वप्न आदि दोष-निवारण हेतु मंगल-विधान किया । अपने शरीर पर लोहे के मोटे-मोटे तारों से निर्मित कवच कसा, धनुष पर दृढता के साथ प्रत्यञ्चा आरोपित की । गले में हार पहना । मस्तक पर अत्यधिक वीरतासूचक निर्मल, उत्तम वस्त्र गांठ लगाकर बांधा । बाण आदि क्षेप्य तथा खड्ग आदि अक्षेप्य धारण किये । अनेक गणनायक, दण्डनायक आदि से वह घिरा था । उस पर कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र तना था । लोग मंगलमय जय-जय शब्द द्वारा उसे वर्धापित कर रहे थे । वह स्नानघर से बाहर निकला । गजराज पर आरूढ हुआ ।

कोरंट पुष्प की मालाओं से युक्त छत्र गजराज पर लगा था, घोड़े, हाथी, उत्तम योद्धाओं–से युक्त सेना से वह संपरिवृत था । विपुल योद्धाओं के समूह से समवेत था । उस द्वारा किये गये गम्भीर, उत्कृष्ट सिंहनाद की कलकल ध्वनि से ऐसा प्रतीत होता था, मानो समुद्र गर्जन कर रहा हो । सब प्रकार की ऋद्धि, द्युति, बल, शक्ति से युक्त वह जहाँ सिन्धु महानदी थी, वहाँ आया । चर्म-रत्न का स्पर्श किया । चर्म-रत्न श्रीवत्स–जैसा रूप लिये था। उस पर मोतियों के, तारों के तथा अर्धचन्द्र के चित्र बने थे । वह अचल एवं अकम्प था। वह अभेद्य कवच जैसा था । नदियों एवं समुद्रों को पार करने का यन्त्र–था । दैवी विशेषता लिये था । चर्म-निर्मित वस्तुओं में वह सर्वोत्कृष्ट था । उस पर बोये हुए सत्तरह प्रकार के धान्य एक दिन में उत्पन्न हो सकें, ऐसी विशेषता लिये था । गृहपतिरत्न इस चर्म-रत्न पर सूर्योदय के समय धाय बोता है, जो उग कर दिन भर में पक जाते हैं, गृहपति सायंकाल उन्हें काट लेता है । चक्रवर्ती भरत द्वारा परामृष्ट वह चर्मरत्न कुछ अधिक बारह योजन विस्तृत था। सेनापति सुषेण द्वारा छुए जाने पर चर्मरत्न शीघ्र ही नौका के रूप में परिणत हो गया । सेनापति सुषेण सैन्य-शिबिर–में विद्यमान सेना सहित उस चर्म-रत्न पर सवार हुआ । निर्मल जल की ऊँची उठती तरंगों से परिपूर्ण सिन्धु महानदी को सेनासहित पार किया । सिन्धु महानदी को पार कर अप्रतिहत-शासन, वह सेनापति सुषेण ग्राम, आकर, नगर, पर्वत, खेट,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्वट, मडम्ब, पट्टन आदि जीतता हुआ, सिंहल, बर्बर, अंगलोक, बलावलोक, यवन द्वीप, अरब, रोम, अलसंड, पिक्खुरों, कालमुखों, तथा उत्तर वैताढ्य पर्वत की तलहटी में बसी हुई बहुविध म्लेच्छ जाति के जनों को, नैऋत्यकोण से लेकर सिन्धु नदी तथा समुद्र के संगम तक के सर्वश्रेष्ठ कच्छ देश को साधकर–वापस मुड़ा । कच्छ देश के अत्यन्त सुन्दर भूमिभाग पर ठहरा । तब उन जनपदों, नगरों, पत्तनों के स्वामी, अनेक आकरपति, मण्डलपति, पत्तनपतिवृन्द ने आभरण, भूषण, रत्न, बहुमूल्य वस्त्र, अन्यान्य श्रेष्ठ, राजोचित वस्तुएँ हाथ जोड़कर, जुड़े हुए तथा मस्तक से लगाकर उपहार के रूप में सेनापति सु,ण को भेंट की ।

वे बड़ी नम्रता से बोले–'आप हमारे स्वामी हैं । देवता की ज्यों आपके हम शरणागत हैं, आपके देशवासी हैं । इस प्रकार विजयसूचक शब्द कहते हुए उन सबको सेनापति सुषेण ने पूर्ववत् यथायोग्य कार्यों में प्रस्थापित किया, नियुक्त किया, सम्मान किया और विदा किया। अपने राजा के प्रति विनयशील, अनुपहत-शासन एवं बलयुक्त सेनापति सुषेण ने सभी उपहार आदि लेकर सिन्धु नदी को पार किया । राजा भरत के पास आकर सारा वृत्तान्त निवेदित किया । प्राप्त सभी उपहार राजा को अर्पित किये । राजा ने सेनापति का सत्कार किया, सम्मान किया, सहर्ष विदा किया ।

तत्पश्चात् सेनापति सुषेण ने स्नान किया, नित्य-नैमित्तिक कृत्य किये, अंजन आंजा, तिलक लगाया, मंगल-विधान किया । भोजन किया । विश्रामगृह में आया । शुद्ध जल से हाथ, मुंह आदि धोये, शुद्धि की । शरीर पर गोशीर्ष चन्दन का जल छिड़का, अपने आवास में गया । वहाँ मृदंग बज रहे थे । सुन्दर, तरुण स्त्रियाँ बत्तीस प्रकार के अभिनयों द्वारा वे उसके मन को अनुरंजित करती थीं । गीतों के अनुरूप वीणा, तबले एवं ढोल बज रहे थे। मृदंगों से बादल की-सी गंभीर ध्वनि निकल रही थी । वाद्य बजाने वाले वादक निपुणता से अपने-अपने वाद्य बजा रहे थे । सेनापति सुषेण इस प्रकार अपनी इच्छा के अनुरूप शब्द, स्पर्श, रस, रूप तथा गन्धमय मानवोचित, प्रिय कामभोगों का आनन्द लेने लगा ।

[७७] राजा भरत ने सेनापति सुषेण को बुलाकर कहा–जाओ, शीघ्र ही तमिस्र गुफा के दक्षिणी द्वारा के दोनों कपाट उद्घाटित करो । राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर सेनापति सुषेण अपने चित्त में हर्षित, परितुष्ट तथा आनन्दित हुआ । उसने अपने दोनों हाथ जोड़े । विनयपूर्वक राजा का वचन स्वीकार किया । पौषधशाला में आया । डाभ का बिछौना बिछाया। कृतमाल देव को उद्दिष्ट कर तेला किया, पौषध लिया । ब्रह्मचर्य स्वीकार किया । तेले के पूर्ण हो जाने पर वह पौषधशाला से बाहर निकला । स्नान किया, नित्यनैमित्तिक कृत्य किये । अंजन आंजा, तिलक लगाया, मंगल-विधान किया । उत्तम, प्रवेश्य, मांगलिक वस्त्र पहने । थोड़े पर बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया । धूप, पुष्प, सुगन्धित पदार्थ एवं मालाएँ हाथ में लीं । तमिस्रा गुफा के दक्षिणी द्वार के कपाट थे, उधर चला । माण्डलिक अधिपति, ऐश्वर्यशाली, प्रभावशाली पुरुष, राजसम्मानित विशिष्ट जन, जागीरदार तथा सार्थवाह आदि सेनापति सुषेण के पीछे-पीछे चले, बहुत सी दासियां पीछे-पीछे चलती थीं, वे चिन्तित तथा अभिलषित भाव को संकेत या चेष्टा मात्र से समझ लेने में विज्ञ थीं, प्रत्येक कार्य में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निपुण थीं, कुशल थीं तथा स्वभावतः विनयशील थीं ।

सब प्रकार की समृद्धि तथा द्युति से युक्त सेनापति सुषेण वाद्य-ध्वनि के साथ जहाँ तमिस्रा गुफा के दक्षिणी द्वार के कपाट थे, वहाँ आया । प्रणाम किया । मयूरपिच्छ की प्रमार्जनिका उठाई । कपाटों को प्रमार्जित किया– । उन पर दिव्य जलधारा छोड़ी । आर्द्र गोशीर्ष चन्दन से हथेली के थापे लगाये । अभिनव, उत्तम सुगन्धित पदार्थों से तथा मालाओं से अर्चना की । उन पर पुष्प, वस्त्र चढ़ाये । ऐसा कर इन सबके ऊपर से नीचे तक फैला, विस्तीर्ण, गोल चँदवा ताना । स्वच्छ बारीक चांदी के चावलों से, तमिस्रा गुफा के कपाटों के आगे स्वस्तिक, श्रीवत्स आदि आठ मांगलिक अंकित किये । कचग्रह ज्यों पांचों अंगुलियों से ग्रहीत पंचरंगे फूल उसने अपने करतल से उन पर छोड़े । वैडूर्य रत्नों से बना धूपपात्र हाथ में लिया । धूपपात्र का हत्था चन्द्रमा की ज्यों उज्ज्वल था, वज्ररत्न एवं वैडूर्यरत्न से बना था । धूप-पात्र पर स्वर्ण, मणि तथा रत्नों द्वारा चित्रांकन किया हुआ था । काले अगर, उत्तम कुन्दरुक, लोबान एवं धूप की गमगमाती महक उससे उठ रही थी । उसने उस धूपपात्र में धूप दिया– । फिर अपने बाएँ घुटने को जमीन से ऊँचा रखा दोनों हाथ मस्तक से लगाया। कपाटों को प्रणाम किया । दण्डरत्न को उठाया ।

वह दण्ड रत्नमय तिरछे अवयव-युक्त था, वज्रसार से बना था, समग्र शत्रु-सेना का विनाशक था, राजा के सैन्य-सन्निवेश में गड्ढो, कन्दराओं, ऊबड़-खाबड़ स्थलों, पहाड़ियों, चलते हुए मनुष्यों के लिए कष्टकर पथरीले टीलों को समतल बना देने वाला था । वह राजा के लिए शांतिकर, शुभकर, हितकर तथा उसके इच्छित मनोरथों का पूरक था, दिव्य था, अप्रतिहत था । वेग-आपादन हेतु वह सात आठ कदम पीछे हटा, तमिस्रा गुफा के दक्षिणी द्वार के किवाड़ों पर तीन बार प्रहार किया, जिससे भारी शब्द हुआ । इस प्रकार क्रोञ्च पक्षी की ज्यों जोर से आवाज कर अपने स्थान से कपाट सरके । यों सेनापति सुषेण ने तमिस्रागुफा के दक्षिणी द्वार के कपाट खोले । राजा को 'जय, विजय' शब्दों द्वारा वर्धापित कर कहा– तमिस्रागुफा के दक्षिणी द्वार के कपाट खोल दिये हैं । राजा भरत यह संवाद सुनकर अपने मन में हर्षित, परितुष्ट तथा आनन्दित हुआ । राजा ने सेनापति सुषेण का सत्कार किया, सम्मान किया । अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–आभिषेक्य हस्तिरत्न को शीघ्र तैयार करो। तब घोड़े, हाथी, रथ तथा श्रेष्ठ योद्धाओं से परिगठित चातुरंगिणी सेना से संपरिवृत, अनेकानेक सुभटों के विस्तार से युक्त राजा उच्च स्वर में समुद्र के गर्जन से सदृश सिंहनाद करता हुआ अंजनगिरि के शिखर के समान गजराज पर आरूढ हुआ ।

[७८] तत्पश्चात् राजा भरत ने मणिरत्न का स्पर्श किया । वह मणिरत्न विशिष्ट आकारयुक्त, सुन्दरतायुक्त था, चार अंगुल प्रमाण था, अमूल्य था–वह तिखूंटा, ऊपर नीचे षट्कोणयुक्त, अनुपम द्युतियुक्त, दिव्य, मणिरत्नों में सर्वोत्कृष्ट, सब लोगों का मन हरने वाला था–जो सर्व-कष्ट-निवारक था, सर्वकाल आरोग्यप्रद था । उसके प्रभाव से तिर्यञ्च, देव तथा मनुष्य कृत उपसर्ग–कभी भी दुःख उत्पन्न नहीं कर सकते थे । उस को धारण करने वाले मनुष्य को शस्त्र स्पर्श नहीं होता । से यौवन सदा स्थिर रहता था, बाल तथा नाखून नहीं बढ़ते थे । भयों से विमुक्ती होती । राजा भरत ने इन अनुपम विशेषताओं से युक्त मणिरत्न को गृहीत कर गजराज के मस्तक के दाहिने भाग पर बांधा । भरतक्षेत्र के अधिपति राजा भरत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का वक्षस्थल हारों से व्याप्त, सुशोभित एवं प्रीतिकर था । यावत् वह अपनी ऋद्धि से इन्द्र जैसा ऐश्वर्यशाली, यशस्वी लगता था । मणिरत्न से फैलते हुए प्रकाश तथा चक्ररत्न द्वारा निर्देशित किये जाते मार्ग के सहारे आगे बढ़ता हुआ, अपने पीछे-पीछे चलते हुए हजारों नरेशों से युक्त राजा भरत उच्च स्वर से समुद्र के गर्जन की ज्यों सिंहनाद करता हुआ, तमिस्रा गुफा के दक्षिणी द्वार आया । तमिस्रा गुफा में प्रविष्ट हुआ ।

फिर राजा भरत ने काकणी-रत्न लिया । वह रत्न चार दिशाओं तथा ऊपर नीचे छः तलयुक्त था । ऊपर, नीचे एवं तिरछे—चार-चार कोटियों से युक्त था, उसकी आठ कर्णिकाएँ थीं । अधिकारणी के आकारयुक्त था । वह अष्ट सौवर्णिक था—वह चार-अंगुल-परिमित था। विषनाशक, अनुपम, चतुरस्र-संस्थान-संस्थित, समतल तथा समुचित मानोन्मानयुक्त था, सर्वजन-प्रज्ञापक—था । जिस गुफा के अन्तर्वर्ती अन्धकार को न चन्द्रमा नष्ट कर पाता था, न सूर्य ही जिसे मिटा सकता था, न अग्नि ही उसे दूर कर सकती थी तथा न अन्य मणियाँ ही जिसे अपगत कर सकती थीं, उस अन्धकार को वह काकणी-रत्न नष्ट करता जाता था । उसकी दिव्य प्रभा बारह योजन तक विस्तृत थी । चक्रवर्ती के सैन्य-सन्निवेश में रात में दिन जैसा प्रकाश करते रहना उस मणि-रत्न का विशेष गुण था । उत्तर भरतक्षेत्र को विजय करने हेतु उसी के प्रकाश में राजा भरत ने सैन्यसहित तमिस्रा गुफा में प्रवेश किया । राजा भरत ने काकणी रत्न हाथ में लिए तमिस्रा गुफा की पूर्वदिशावर्ती तथा पश्चिमदिशावर्ती भित्तियों पर एक एक योजन के अन्तर से पाँच सौ धनुष प्रमाण विस्तीर्ण, एक योजन क्षेत्र को उद्योतित करने वाले, रथ के चक्के की परिधि की ज्यों गोल, चन्द्र-मण्डल की ज्यों भास्वर, उनचास मण्डल आलिखित किये । वह तमिस्रा गुफा राजा भरत द्वारा यों एक एक योजन की दूरी पर आलिखित एक योजन तक उद्योत करने वाले उनपचास मण्डलों से शीघ्र ही दिन के समान आलोकयुक्त हो गई ।

[७९] तमिस्रा गुफा के ठीक बीच में उन्मग्नजला तथा निमग्नजला नामक दो महानदियां हैं, जो तमिस्रा गुफा के पूर्वी भित्तिप्रदेश से निकलती हुई पश्चिमी भित्ति प्रदेश होती हुई सिन्धु महानदी में मिलती हैं । भगवन् ! इन नदियों के उन्मग्नजला तथा निमग्नजला—ये नाम किस कारण पड़े ? गौतम ! उन्मग्नजला महानदी में तृण, पत्र काष्ठ पाषाणखण्ड, घोड़ा, हाथी, रथ, योद्धा—या मनुष्य जो भी प्रक्षिप्त कर दिये जाएँ—वह नदी उन्हें तीन बार इधर-उधर घुमाकर किसी एकान्त, निर्जल स्थान में डाल देती है । निमग्नजला महानदी में तृण, पत्र, काष्ठ, यावत् मनुष्य जो भी प्रक्षिप्त कर दिये जाएं—वह उन्हें तीन बार इधर-उधर घुमाकर जल में निमग्न कर देती है—तत्पश्चात् अनेक नरेशों से युक्त राजा भरत चक्ररत्न द्वारा निर्देशित किये जाते मार्ग के सहारे आगे बढ़ता हुआ उच्च स्वर से सिंहनाद करता हुआ सिन्धु महानदी के पूर्वी तट पर अवस्थित उन्मग्नजला महानदी के निकट आया । वर्द्धकिरत्न को बुलाकर कहा—उन्मग्नजला और निमग्नजला महानदियों पर उत्तम पुलों का निर्माण करो, जो सैकड़ों खंभों पर सन्निविष्ट हों, अचल हों, अकम्प हों, कवच की ज्यों अभेद्य हों, जिसके ऊपर दोनों ओर दीवारें बनी हों, जो सर्वथा रत्नमय हों ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वार्ध की रत्न चित्त में हर्षित, परितुष्ट एवं आनन्दित हुआ । विनयपूर्वक राजा का आदेश स्वीकार किया । शीघ्र ही उत्तम पुलों का निर्माण कर दिया, तत्पश्चात् राजा भरत अपनी समग्र सेना के साथ उन पुलों द्वारा, उन्मग्नजला तथा निमग्नजला नदियों को पार किया । यों ज्योंही उसने नदियां पार की, तमिस्रा गुफा के उत्तरी द्वारा के कपाट क्रोञ्च पक्षी की तरह आवाज करते हुए सरसराहट के साथ अपने आप अपने स्थान से सरक गये– ।

[८०] उस समय उत्तरार्ध भरतक्षेत्र में–आपात संज्ञक किरात निवास करते थे । वे आढ्य, दीप्त, वित्त, भवन, शयन, आसन, यान, वाहन तथा स्वर्ण, रजत आदि प्रचुर धन के स्वामी थे । आयोग-प्रयोग-संप्रवृत्त–थे । उनके यहाँ भोजन कर चुकने के बाद भी खाने-पीने के बहुत पदार्थ बचते थे । उनके घरों में बहुत से नौकर-नौकरानियाँ, गायें, भैंसे, बैल, पाड़े, भेड़ें, बकरियाँ आदि थीं । वे लोगों द्वारा अपरिभूत थे, उनका कोई तिरस्कार या अपमान करने का साहस नहीं कर पाते थे । वे शूर थे, वीर थे, विक्रांत थे । उनके पास सेना और सवारियों की प्रचुरता एवं विपुलता थी । अनेक ऐसे युद्धों में, जिसमें मुकाबले की टक्करें थीं, उन्होंने अपना पराक्रम दिखाया था । उन आपात किरातों के देश में अकस्मात् सैकड़ों उत्पात हुए । असमय में बादल गरजने लगे, बिजली चमकने लगी, फूलों के खिलने का समय न आने पर भी पेड़ों पर फूल आते दिखाई देने लगे । आकाश में भूत-प्रेत पुनः पुनः नाचने लगे ।

आपात किरातों ने अपने देश में इन सैकड़ों उत्पातों को आविर्भूत होते देखा । वे आपस में कहने लगे–हमारे देश में असमय में बादलों का गरजना यावत् सैकड़ों उत्पात प्रकट हुए हैं । न मालूम हमारे देश में कैसा उपद्रव होगा । वे उन्मनस्क हो गये । राज्य-भ्रंश, धनापहार आदि की चिन्ता से उत्पन्न शोकरूपी सागर में डूब गये–अपनी हथेली पर मुंह रखे वे आर्तध्यान में ग्रस्त हो भूमि की और दृष्टि डाले सोच-विचार में पड़ गये । तब राजा भरत चक्ररत्न द्वारा निर्देशित किए जाते मार्ग के सहारे तमिस्रा गुफा के उत्तरी द्वार से निकला । आपात किरातों ने राजा भरत की सेना के अग्रभाग को जब आगे बढ़ते हुए देखा तो वे तत्काल अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, विकराल तथा कुपित होते हुए, मिसमिसाहट करते हुए–कहने लगे–अप्रार्थित मृत्यु को चाहने वाला, दुःखद अन्त एवं अशुभ लक्षणवाला, पुण्य चतुर्दशी जिस दिन हीन थी–उस अशुब दिन में जन्मा हुआ, अभागा, लज्जा, शोभा से परिवर्जित वह कौन है, जो हमारे देश पर बलपूर्वक जल्दी-जल्दी चढ़ा आ रहा है । हम उसकी सेना को तितर-भितर कर दें, जिससे वह आक्रमण न कर सके । इस प्रकार उन्होंने मुकाबला करने का निश्चय किया । लोहे के कवच धारण किये, वे युद्धार्थ तत्पर हुए, अपने धनुषों पर प्रत्यंचा चढ़ा कर उन्हें हाथ में लिया, गले पर ग्रैवेयक–बाँधे, विशिष्ट वीरता सूचक चिह्न के रूप में उज्ज्वल वस्त्र-विशेष मस्तक-पर बाँधे । विविध प्रकार के आयुध, तलवार आदि शस्त्र धारण किये । वे, जहाँ राजा भरत की सेना का अग्रभाग था वहां पहुंचकर वे उससे भिड़ गये । उन आपात किरातों ने राजा भरत की सेना के अग्रभाग के कतिपय विशिष्ट योद्धाओं को मार डाला, मथ डाला, घायल् कर डाला, गिरा डाला । उनकी गरुड आदि चिह्नों से युक्त ध्वजाएँ, पताकाएँ नष्ट कर डालीं । राजा भरत की सेना के अग्रभाग के सैनिक बड़ी कठिनाई से अपने प्राण बचाकर इधर-उधर भाग छूटे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[८१] सेनापति सुषेण ने राजा भरत के सैन्य के अग्रभाग के अनेक योद्धाओं को आपात किरातों द्वारा हत, मथित देखा । सैनिकों को भागते देखा । सेनापति सुषेण तत्काल अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, विकराल एवं कुपित हुआ । वह मिसमिसाहट करता हुआ--कमलामेल नामक अश्वरत्न पर--आरूढ़ हुआ । वह घोड़ा अस्सी अंगुल ऊँचा था, निन्यानवें अंगुल मध्य परिधियुक्त था, एक सौ आठ अंगुल लम्बा था । उसका मस्तक बत्तीस अंगुल-प्रमाण था । उसके कान चार अंगुल प्रमाण थे । उसकी बाहा--बीस अंगुल था । उसके घुटने चार अंगुल-प्रमाण थे । जंघा--सोलह अंगुल थी । खुर चार अंगुल ऊँचे थे । देह का मध्य भाग मुक्तोली--सदृश गोल तथा वलित था । पीठ उपर जब सवार बैठता, तब वह कुछ कम एक अंगुल झुक जाती थी । पीठ क्रमशः देहानुरूप अभिनत थी, देह-प्रमाण के अनुरूप थी, सुजात थी, प्रशस्त थी, शालिहोत्रशास्त्र निरूपित लक्षणों के अनुरूप थी, विशिष्ट थी । हरिणी के जानु--ज्यों उन्नत थी, दोनों पार्श्व-भागों में विस्तृत तथा चरम भाग में स्तब्ध थी । उसका शरीर वेत्र, लता, कशा, आदि के प्रहारों से परिवर्जित था--घुड़सवार के मनोनुकूल चलते रहने के कारण उसे बेंत, छड़ी, चाबुक आदि से तर्जित करना, ताडित करना सर्वथा अनपेक्षित था । लगाम स्वर्ण में जड़े दर्पण जैसा आकार लिये अश्वोचित स्वर्णाभरणों से युक्त थी । काठी बाँधने हेतु प्रयोजनीय रस्सी, उत्तम स्वर्णघटित सुन्दर पुष्पों तथा दर्पणों से समायुक्त थी, विविध-रत्नमय थी । उसकी पीठ, स्वर्णयुक्त मणि-रचित तथा केवल स्वर्ण-निर्मित पत्रकसंज्ञक आभूषण जिनके बीच-बीच में जड़े थे, ऐसी नाना प्रकार की घंटियों और मोतियों की लड़ियों से परिमंडित थी, वह अश्व बड़ा सुन्दर प्रतीत होता था । मुखालंकरण हेतु कर्केतन मणि, इन्द्रनील मणि, मरकत मणि आदि रत्नों द्वारा रचित एवं माणिक के साथ आवद्धि--से वह विभूषित था । स्वर्णमय कमल के तिलक से उसका मुख सुसज्ज था ।

वह अश्व देवमति से--विरचित था । वह देवराज इन्द्र की सवारी के उच्चैःश्रवा नामक अश्व के समान गतिशील तथा सुन्दर रूप युक्त था । अपने मस्तक, गले, ललाट, मौलि एवं दोनों कानों के मूल में विनिवेशित पाँच चँवरों को--धारण किये था । वह अनभ्रचारी था--उसकी अन्यान्य विशेषताएँ उच्चैःश्रवा जैसी ही थीं । उसकी आँखें विकसित थीं, दृढ़ थीं, रोमयुक्त थीं--थीं । डांस, मच्छर आदि से रक्षा हेतु उस पर लगाये गये प्रच्छादनपट में--स्वर्ण के तार गुंथे थे । तालु तथा जिह्वा तपाये हुए स्वर्ण की ज्यों लाल थे । नासिका पर लक्ष्मी के अभिषेक का चिह्न था । जलगत कमल-पत्र जैसे वायु द्वारा आहत पानी की बूँदों से युक्त होकर सुन्दर प्रतीत होता है, उसी प्रकार वह अश्व अपने शरीर के लावण्य से बड़ा सुन्दर प्रतीत होता था । वह अचंचल था--उसके शरीर में स्फूर्ति थी । वह अश्व अपवित्र स्थानों को छोड़ता हुआ उत्तम एवं सुगम मार्ग द्वारा चलने की वृत्ति वाला था । अपने खुरों की टापों से भूमितल को अभिहत करता हुआ चलता था । अपने आरोहक द्वारा नचाये जाने पर वह अपने आगे के दोनों पैर एक साथ इस प्रकार ऊपर उठाता था, जिससे ऐसा प्रतीत होता, मानो उसके दोनों पैर एक ही साथ उसके मुख से निकल रहें हों । उसकी गति लाघवयुक्त--थी था--वह जल में भी स्थल की ज्यों शीघ्रता से चलने में समर्थ था ।

वह प्रशस्त बारह आवर्तों से युक्त था, जिनसे उसके उत्तम जाति, कुल तथा रूप का परिचय मिलता था । वह अश्वशास्त्रोक्त उत्तम कुल प्रसूत था । मेघावी--था । भद्र एवं विनीत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था, उसके रोम अति सूक्ष्म, सुकोमल एवं स्निग्ध थे, अपनी गति से दोड, मन वायु तथा गरुड़ की गति को जीतने वाला था, बहुत चपल और द्रुतगामी था । क्षमा में ऋषितुल्य था–प्रत्यक्षतः विनीत था । वह उदक, अग्नि, पत्थर, मिट्टी, कोचड़, कंकड़ों से युक्त स्थान, रेतीले स्थान, नदियों के तट, पहाड़ों की तलहटियाँ, ऊँचे-नीचे पठार, पर्वतीय गुफाएँ–इन सबको लांघने में, समर्थ था । प्रबल योद्धाओं द्वारा युद्ध में पातित–दण्ड की ज्यों शत्रु की छावनी पर अतर्कित रूप में आक्रमण करने की विशेषता से युक्त था । मार्ग में चलने से होनेवाली थकावट के बावजूद उसकी आँखों से कभी आँसू नहीं गिरते थे । उसका तालु कालेपन से रहित था । वह समुचित समय पर ही हिनहिनाहट करता था । वह जितनिद्र–था । मूत्र, पुरीष–का उत्सर्ग उचित स्थान खोजकर करता था । कष्टों में भी अखिन्न रहता था । नाक मोगरे के फूल के सदृश शुभ था । वर्ण तोते के पंख के समान सुन्दर था । देह कोमल थी। वह वास्तव में मनोहर था ।

ऐसे अश्वरत्न पर आरूढ सेनापति सुषेण ने राजा के हाथ से असिरत्न ली । वह तलवार नीलकमल की तरह श्यामल थी । घुमाये जाने पर चन्द्रमण्डल के सदृश दिखाई देती थी । शत्रुओं का विनाश करनेवाली थी । मूठ स्वर्ण तथा रत्न से निर्मित थी । उसमें से नवमालिका के पुष्प जैसी सुगन्ध आती थी । विविध प्रकार की मणियों से निर्मित बेल आदि के चित्र थे । धार बड़ी चमकीली और तीक्ष्ण भी । लोक में वह अनुपम थी । वह बाँस, वृक्ष, भैंसे आदि के सींग, हाथी आदि के दाँत, लोह, लोहमय भारी दण्ड, उत्कृष्ट वज्र–आदि का भेदन करने में समर्थ थी । वह सर्वत्र अप्रतिहत थी–बिना किसी रुकावट के दुर्भेद्य वस्तुओं के भेदन में समर्थ थी ।

[८२] वह तलवार पचास अंगुल लम्बी, सोलह अंगुल चौड़ी और मोटाई अर्ध-अंगुल-प्रमाण थी ।

[८३] राजा के हाथ से उत्तम तलवार को लेकर सेनापति सुषेण, आपात किरातो से भिड़ गया । उसने आपात किरातों में से अनेक प्रबल योद्धाओं को मार डाला, मथ डाला तथा घायल कर डाला ।

[८४] सेनापति सुषेण द्वारा हत-मथित किये जाने पर, मेदान छोड़कर भागे हुए आपात किरात बड़े भीत, त्रस्त, व्यथित, पीड़ायुक्त, उद्विग्न होकर घबरा गये । वे अपने को निर्बल, निर्वीर्य तथा पौरुष-पराक्रम रहित अनुभव करने लगे । शत्रु-सेना का सामना करना शक्य नहीं है, यह सोचकर वे वहाँ से अनेक योजन दूर भाग गये । यों दूर जाकर वे एक स्थान पर आपस में मिले, सिन्धु महानदी आये । बालू के बिछौने तैयार किये । तेले की तपस्या की । वे अपने मुख ऊँचे किये, निर्वस्त्र हो घोर आतापना सहते हुए मेघमुख नामक नागकुमारों का, जो उनके कुल-देवता थे, मन में ध्यान करते हुए अभिरत हो गए । मेघमुख नागकुमार देवों के आसन चलित हुए । मेघमुख नागकुमार देवों ने अवधिज्ञान द्वारा आपात किरातों को देखा । उन्हें देखकर कहने लगे–जम्बूद्वीप के उत्तरार्ध भरतक्षेत्र में सिन्धु महानदी पर आपात किरात हमारा ध्यान करते हुए विद्यमान हैं । देवानुप्रियो ! यह उचित है कि हम उन आपात किरातों के समक्ष प्रकट हों ।

इस प्रकार परस्पर विचार कर उन्होंने वैसा करने का निश्चय किया । वे उत्कृष्ट, तीव्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गति से, आपात किरात थे, वहाँ आये । उन्होंने छोटी-छोटी घण्टिओं सहित पंचरंगे उत्तम वस्त्र पहन रखे थे । आकाश में अधर अवस्थित होते हुए वे आपात किरातों से बोले–तुम बालू के संस्तारकों पर अवस्थित हो, यावत् हमारा–ध्यान कर रहे हो । यह देखकर हम तुम्हारे कुलदेव मेघमुख नागकुमार तुम्हारे समक्ष प्रकट हुए हैं । तुम क्या चाहते हो ? हम तुम्हारे लिए क्या करें ? मेघमुख नागकुमार देवों का यह कथन सुनकर आपात किरात अपने चित्त में हर्षित, परितुष्ट तथा आनन्दित हुए, मेघमुख नागकुमार देव को हाथ जोड़े, मेघमुख नागकुमार देवों को जय-विजय शब्दों द्वारा वर्धापित किया और बोले–

देवानुप्रियो ! अप्रार्थित मृत्यु का प्रार्थी यावत् लज्जा, शोभा से परिवर्जित कोई पुरुष है, जो बलपूर्वक जल्दी-जल्दी हमारे देश पर चढ़ा आ रहा है । आप उसे वहाँ से हटा दीजिए, जिससे वह हमारे देश पर आक्रमण नहीं कर सके । तब मेघमुख नागकुमार देवों ने कहा–तुम्हारे देश पर आक्रमण करनेवाला महाऋद्धिशाली, परम द्युतिमान्, परम सौख्ययुक्त, चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा है । उसे न कोई देव, न कोई किंपुरुष, न कोई महोरग तथा न कोई गन्धर्व ही रोक सकता है, न बाधा उत्पन्न कर सकता है । न उसे शस्त्र, अग्नि तथा मन्त्र प्रयोग द्वारा ही उपद्रुत किया जा सकता है । फिर भी तुम्हारे अभीष्ट हेतु उपसर्ग करेंगे। उन्होंने वैक्रिय समुद्घात द्वारा आत्मप्रदेशों को देह से बाहर निकाला । गृहीत पुद्गलों के सहारे बादलों की विकुर्वणा की । जहाँ राजा भरत की छावनी थी, वहाँ आये । बादल शीघ्र ही धीमे-धीमे गरजने लगे । बिजलियाँ चमकने लगीं । पानी बरसाने लगे । सात दिन-रात तक युग, मूसल एवं मुष्टिका के सदृश मोटी धाराओं से पानी बरसता रहा ।

[८५] राजा भरत ने उस वर्षा को देखा । अपने चर्मरत्न का स्पर्श किया । वह चर्मरत्न कुछ अधिक बारह योजन तिरछा विस्तीर्ण हो गया– । तत्पश्चात् राजा भरत अपनी सेना सहित उस चर्मरत्न पर आरूढ हो गया । छत्ररत्न छुआ, वह छत्ररत्न निन्यानवें हजार स्वर्ण-निर्मित शलाकाओं से - ताड़ियों से परिमण्डित था । बहुमूल्य था, अयोध्या था, निर्व्रण था, सुप्रशस्त, विशिष्ट, मनोहर एवं स्वर्णमय सुदृढ दण्ड से युक्त था । उसका आकार मृदु था। वह बस्ति-प्रदेश में–अनेक शलाकाओं से युक्त था । पिंजरे जैसा प्रतीत होता था । उस पर विविध प्रकार की चित्रकारी थी । उस पर मणि, मोती, मूंगे, तपाये हुए स्वर्ण तथा रत्नों द्वारा पूर्ण कलश आदि मांगलिक-वस्तुओं के पंचरंगे उज्ज्वल आकार बने थे । रत्नों की किरणों के सदृश रंगरचना में निपुण पुरुषों द्वारा वह सुन्दर रूप में रंगा हुआ था । उस पर राजलक्ष्मी का चिह्न अंकित था । अर्जुन स्वर्ण द्वारा उसका पृष्ठभाग आच्छादित था । उसके चार कोण परितापित स्वर्णमय पट्ट से परिवेष्टित थे । वह अत्यधिक श्री से युक्त था । उसका रूप शरद् ऋतु के निर्मल, परिपूर्ण चन्द्रमण्डल के सदृश था । उसका स्वाभाविक विस्तार राजा भरत द्वारा तिर्यक्प्रसारित–अपनी दोनों भुजाओं के विस्तार जितना था । वह कुमुद–वन सदृश धवल था। राजा भरत का मानो जंगम विमान था । सूर्य के आतप, आयु, वर्षा आदि दोषों–का विनाशक था । पूर्व जन्म में आचरित तप, पुण्यकर्म के फलस्वरूप वह प्राप्त था ।

[८६] वह छत्ररत्न अहत–था, ऐश्वर्य आदि अनेक गुणों का प्रदायक था । हेमन्त आदि ऋतुओं में तद्विपरीत सुखप्रद छाया देता था । छत्रों में उत्कृष्ट एवं प्रधान था ।

[८७] अल्पपुण्य–पुरुषों के लिए दुर्लभ था । वह छत्ररत्न छह खण्डों के अधिपति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्रवर्ती राजाओं के पूर्वाचरित तप के फल का एक भाग था । देवयोनि में भी अत्यन्त दुर्लभ था । उस पर फूलों की मालाएँ लटकती थीं, शरद् ऋतु के धवल मेघ तथा चन्द्रमा के प्रकाश के समान भास्वर था । एक सहस्र देवों से अधिष्ठित था । राजा भरत का वह छत्ररत्न ऐसा प्रतीत होता था, मानो भूतल पर परिपूर्ण चन्द्रमण्डल हो । राजा भरत द्वारा छुए जाने पर वह छत्ररत्न कुछ अधिक बारह योजन तिरछा विस्तीर्ण हो गया– ।

[८८] राजा भरत ने छत्ररत्न को अपनी सेना पर तान दिया । मणिरत्न का स्पर्श किया । उस मणिरत्न को राजा भरत ने छत्ररत्न के बस्तिभाग में–स्थापित किया । राजा भरत के साथ गाथापतिरत्न था । वह अपनी अनुपम विशेषता–लिये था । शिला की ज्यों अति स्थिर चर्मरत्न पर केवल वपन मात्र द्वारा शालि, जौ, गेहूँ, मूंग, उर्द, तिल, कुलथी, षष्टिक, निष्पाव, चने, कोद्रव, कुस्तुंभरी, कंगु, वरक, रालक, धनिया, वरण, लौकी, ककड़ी, तुम्बक, बिजौरा, कटहल, आम, इमली आदि समग्र फल, सब्जी आदि पदार्थों को उत्पन्न करने में कुशल था । उस श्रेष्ठ गाथापति ने उसी दिन बोये हुए, पके हुए, साफ किये हुए सब प्रकार के धान्यों के सहस्रों कुंभ राजा भरत को समर्पित किये । राजा भरत उस भीषण वर्षा के समय चर्मरत्न पर आरूढ रहा, छत्ररत्न द्वारा आच्छादित रहा, मणिरत्न द्वारा किये गये प्रकाश में सात दिन-रात सुखपूर्वक सुरक्षित रहा ।

[८९] उस अवधि में राजा भरत को तथा उसकी सेना को न भूख ने पीडित किया, न उन्होंने दैन्य का अनुभव किया और न वे भयभीत और दुःखित ही हुए ।

[९०] राजा भरत को इस रूप में रहते हुए सात दिन रात व्यतीत हो गये तो उसके मन में ऐसा विचार, भाव, संकल्प उत्पन्न हुआ–कौन ऐसा है, जो मेरी दिव्य ऋद्धि तथा दिव्य द्युति की विद्यमानता में भी मेरी सेना पर युग, मूसल एवं मुष्टिका प्रमाण जलधारा द्वारा सात दिन-रात हुए, भारी वर्षा करता जा रहा है । राजा भरत के मन में ऐसा विचार, भाव १६००० देव, जानकर चौदह रत्नों के रक्षक १४००० देव तथा २००० राजा भरत के अंगरक्षक देव–युद्ध हेतु सन्नद्ध हो गये । मेघमुख नागकुमार देव थे, वहाँ आकर बोले–मृत्यु को चाहने वाले, मेघमुख नागकुमार देवो ! क्या तुम चातुरन्त चक्रवर्ती राजा भरत को नहीं जानते ? वह महा ऋद्धिशाली है । फिर भी तुम राजा भरत की सेना पर युग, मूसल तथा मुष्टिकाप्रमाण जल-धाराओं द्वारा सात दिन-रात हुए भीषण वर्षा कर रहे हो । तुम्हारा यह कार्य अनुचित है–तुम अब शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ, अन्यथा मृत्यु की तैयारी करो ।

जब उन देवताओं ने मेघमुख नागकुमार देवों को इस प्रकार कहा तो वे भीत, त्रस्त, व्यथित एवं उद्विग्न हो गये, बहुत डर गये । उन्होंने बादलों की घटाएँ समेट लीं । जहाँ आपात किरात थे, वहाँ आए और बोले–राजा भरत महा ऋद्धिशाली है । फिर भी हमने तुम्हारा अभीष्ट साधने हेतु राजा भरत के लिए उपसर्ग–किया । अब तुम जाओ, स्नान करो, गीली धोती, गीला दुपट्टा धारण किए हुये, वस्त्रों के नीचे लटकते किनारों को सम्हाले हुए–श्रेष्ठ, उत्तम रत्नों को लेकर हाथ जोड़े राजा भरत के चरणों में पड़ों, उसकी शरण लो । उत्तम पुरुष विनम्र जनों के प्रति वात्सल्य-भाव रखते हैं, उनका हित करते हैं । तुम्हें राजा भरत से कोई भय नहीं होगा । मेघमुख नागकुमार देवों द्वारा यों कहे जाने पर वे आपात किरात उठे । स्नान किया यावत् श्रेष्ठ, उत्तम रत्न लेकर जहाँ राजा भरत था, वहाँ आये । हाथ जोड़े, राजा भरत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को 'जय विजय' शब्दों द्वारा वर्धापित किया, श्रेष्ठ, उत्तम रत्न भेंट किये तथा इस प्रकार बोले–

[९१] षट्खण्डवर्ती वैभव के स्वामिन् ! गुणभूषित ! जयशील ! लज्जा, लक्ष्मी, धृति, कीर्ति के धारक ! राजोचित सहस्त्रों लक्षणों से सम्पन्न ! नरेन्द्र ! हमारे इस राज्य का चिरकाल पर्यन्त आप पालन करें ।

[९२] अश्वपते ! गजपते ! नरपते ! नवनिधिपते ! भरत क्षेत्र के प्रथमाधिपते ! बत्तीस हजार देशों के राजाओं के अधिनायक ! आप चिरकाल तक जीवित रहें–दीर्घायु हों ।

[९३] प्रथम नरेश्वर ! ऐश्वर्यशालिन् ! ६४००० नारियों के हृदयेश्वर–मागध तीर्थाधिपति आदि लाखों देव के स्वामिन् ! चतुर्दशरत्नों के धारक ! यशस्विन् !

[९४] आपने दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम दिशा में समुद्रपर्यन्त और उत्तर दिशा में क्षुल्ल हिमवान् गिरि पर्यन्त समग्र भरतक्षेत्र को जीत लिया है हम आपके प्रजाजन हैं ।

[९५] आपकी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार तथा पराक्रम–ये सब आश्चर्यकारक हैं । आपको दिव्य देव-द्युति–परमोत्कृष्ट प्रभाव अपने पुण्योदय से प्राप्त है । हमने आपकी ऋद्धि का साक्षात् अनुभव किया है । देवानुप्रिय ! हम आपसे क्षमायाचना करते हैं । आप हमें क्षमा करें । हम भविष्य में फिर कभी ऐसा नहीं करेंगे । यों कहकर वे हाथ जोड़े राजा भरत के चरणों में गिर पड़े । फिर राजा भरत ने उन आपात किरातों द्वारा भेंट के रूप में उपस्थापित उत्तम, श्रेष्ठ रत्न स्वीकार किये । उनसे कहा–तुम अब अपने स्थान पर जाओ । मैंने तुमको अपनी भुजाओं की छाया में स्वीकार कर लिया है । तुम निर्भय, निरुद्वेग, व्यथा रहित होकर सुखपूर्वक रहो । अब तुम्हें किसी से भी भय नहीं है । यों कहकर राजा भरत ने उन्हें सत्कृत, सम्मानित कर विदा किया । तब राजा भरत ने सेनापति सुषेण को बुलाया और कहा–जाओ, पूर्वसाधित निष्कुट, सिन्धु महानदी के पश्चिम भागवर्ती कोण में विद्यमान, पश्चिम में सिन्धु महानदी तथा पश्चिमी समुद्र, उत्तर में क्षुल्ल हिमवान् पर्वत तथा दक्षिण में वैताढ्य पर्वत द्वारा मर्यादित–प्रदेश को, उसके, सम-विषम कोणस्थ स्थानों को साधित करो । वहाँ से उत्तम, श्रेष्ठ रत्नों को भेंट के रूप में प्राप्त करो । यह सब कर मुझे शीघ्र ही अवगत कराओ । शेष वर्णन पूर्ववत् जानना ।

[९६] तत्पश्चात् वह दिव्य चक्ररत्न शास्त्रागार से बाहर निकला, ईसान-कोण में लघु हिमवान् पर्वत की ओर चला । राजा भरत ने क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत से कुछ ही दूरी पर सैन्य-शिविर स्थापित किया । उसने क्षुद्र हिमवान् गिरिकुमार देव को उद्दिष्ट कर तेले की तपस्या की । शेष कथन मागधतीर्थ समान जानना । राजा भरत क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत आया। उसने वेगपूर्वक चलते हुए घोड़ों को नियन्त्रित किया । यावत् राजा भरत द्वारा ऊपर आकाश में छोड़ा गया वह बाण शीघ्र ही बहत्तर योजन तक जाकर क्षुद्र हिमवान् गिरिकुमार देव की मर्यादा में– गिरा । यावत् उसने प्रीतिदान–रूप में सर्वोषधियाँ, कल्पवृक्ष के फूलों की माला, गोशीर्ष चन्दन, कटक, पद्मद्रह का जल लिया । राजा भरत के पास आकर बोला–मैं क्षुद्र हिमवान् पर्वत की सीमा में आपके देश का वासी हूँ । मैं आपका आज्ञानुवर्ती सेवक हूँ । आपका उत्तर दिशा का अन्तपाल हूँ–आप मेरे द्वारा उपहृत भेंट स्वीकार करें । राजा भरत ने क्षुद्र हिमवान्-गिरिकुमार देव द्वारा इस प्रकार भेंट किये गये उपहार स्वीकार स्वीकार करके देव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को विदा किया ।

[९७] तत्पश्चात् राजा भरत ने अपने रथ के घोड़ों को नियन्त्रित किया रथ को वापस मोड़ा । ऋषभकूट पर्वत आया । रथ के अग्र भाग से तीन बार ऋषभकूट पर्वत का स्पर्श किया । काकणी रत्न का स्पर्श किया । वह रत्न चार दिशाओं तथा ऊपर, नीचे छह तलयुक्त था । यावत् अष्टस्वर्णमानपरिमाण था । राजा ने काकणी रत्न का स्पर्श कर ऋषभकूट पर्वत के पूर्वीय कटक में–नामांकन किया–

[९८] इस अवसर्पिणी काल के तीसरे आरक के पश्चिम भाग में–मैं भरत चक्रवर्ती हुआ हूँ ।

[९९] मैं भरतक्षेत्र का प्रथम राजा–हूँ, अधिपति हूँ, नरवरेन्द्र हूँ । मेरा कोई प्रतिशत्रु–नहीं है । मैंने भरतक्षेत्र को जीत लिया है ।

[१००] वैसा कर अपने रथ को वापस मोड़ा । अपना सैन्य-शिबिर था, वहाँ आया। यावत् क्षुद्र हिमवान्-गिरिकुमार देव को विजय करने के उपलक्ष्य में समायोजित अष्ट दिवसीय महोत्सव के सम्पन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न शस्त्रागार से बाहर निकला । दक्षिण दिशा में वैताढ्य पर्वत की ओर प्रयाण किया ।

[१०१] राजा भरत ने उस दिव्य चक्ररत्न को दक्षिण दिशा में वैताढ्य पर्वत की ओर जाते हुए देखा । वह वैताढ्य पर्वत की उत्तर दिशावर्ती तलहटो में आया । वहाँ सैन्यशिबिर स्थापित किया । पौषधशाला में प्रविष्ट हुआ । श्रीऋषभस्वामी के कच्छ तथा महाकच्छ नामक प्रधान सामन्तों के पुत्र नमि एवं विनमि नामक विद्याधर राजाओं को उद्दिष्ट कर तेला किया। नमि, विनमि विद्याधर राजाओं का मन में ध्यान करता हुआ वह स्थित रहा । तब नमि, विनमि विद्याधर राजाओं को अपनी दिव्य मति द्वारा इसका भान हुआ । वे एक दूसरे के पास आये और कहने लगे–जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में भरत चक्रवर्ती उत्पन्न हुआ है । अतीत, प्रत्युत्पन्न तथा अनागत–विद्याधर राजाओं के लिए यह उचित है–कि वे राजा को उपहार भेंट करें । यह सोचकर विद्याधरराज विनमि ने चक्रवर्ती राजा भरत को भेंट करने हेतु सुभद्रा नामक स्त्रीरत्न लिया । स्त्रीरत्न–सुभद्रा का शरीर मानोन्मान प्रमाणयुक्त था–वह तेजस्विनी थी, रूपवती एवं लावण्यमयी थी । वह स्थिर यौवन युक्त थी–शरीर के केश तथा नाखून नहीं बढ़तें थे । उसके स्पर्श से सब रोग मिट जाते थे । वह बल-वृद्धिकारिणी थी–ग्रीष्म ऋतु में वह शीतस्पर्शा तथा शीत ऋतु में उष्णस्पर्शा थी ।

[१०२] वह तीन स्थानों में–कृश थी । तीन स्थानों में लाल थी । त्रिवलियुक्त थी। तीन स्थानों में–उन्नत थी । तीन स्थानों में गंभीर थी । तीन स्थानों में कृष्णवर्ण थी । तीन स्थानों में–श्वेतता लिये थी । तीन स्थानों में–लम्बाई लिये थी । तीन स्थानों में–चौड़ाई युक्त थी ।

[१०३] वह समचौरस दैहिक संस्थानयुक्त थी । भरतक्षेत्र में समग्र महिलाओं में वह प्रधान–थी । उसके स्तन, जघन, हाथ, पैर, नेत्र, केश, दाँत–सभी सुन्दर थे, देखने वाले पुरुष के चित्त को आह्लादित करनेवाले थे, आकृष्ट करनेवाले थे । वह मानो श्रृंगार-रस का आगार थी । लोक-व्यवहार में वह कुशल थी । वह रूप में देवांगनाओं के सौन्दर्य का अनुसरण करती थी । वह सुखप्रद यौवन में विद्यमान थी । विद्याधरराज नमि ने चक्रवर्ती भरत को भेंट करने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हेतु रत्न, कटक तथा त्रुटित लिये । उत्कृष्ट त्वरित, तीव्र विद्याधर-गति द्वारा वे दोनों, राजा भरत था, वहाँ आये । वे आकाश में अवस्थित हुए । उन्होंने जय-विजय शब्दों द्वारा राजा भरत को वर्धापति किया और कहा--हम आपके आज्ञानुवर्ती सेवक हैं । यह कहकर विनमि ने स्त्रीरत्न तथा नमि ने रत्न, आभरण भेंट किये । राजा भरत ने उपहार स्वीकार कर नमि एवं विनमि का सत्कार किया, सम्मान किया । विदा किया । यावत् अष्ट दिवसीय महोत्सव आयोजित किया । पश्चात् दिव्य चक्ररत्न शस्त्रागार से बाहर निकाला । उसने ईशान-कोण में गंगा देवी के भवन की ओर प्रयाण किया । शेष कथन सिन्धु देवी के प्रसंग समान है । विशेष यह कि गंगा देवी ने राजा भरत को भेंट रूप में विविध रत्नों से युक्त १००८ कलश, स्वर्ण एवं विविध प्रकार की मणियों से चित्रित--दो सोने के सिंहासन विशेषरूप से उपहृत किये। फिर राजा ने अष्टदिवसीय महोत्सव आयोजित करवाया ।

[१०४] तत्पश्चात् वह दिव्य चक्ररत्न शस्त्रागार से बाहर निकला । उसने गंगा महानदी के पश्चिमी किनारे दक्षिण दिशा के खण्डप्रपात गुफा की ओर प्रयाण किया । तब राजा भरत खण्डप्रपात गुफा आया । शेष कथन तमिस्रा गुफा के अधिपति कृतमाल देव समान है । केवल इतना सा अन्तर है, खण्डप्रपात गुफा के अधिपति नृत्तमालक देव ने प्रीतिदान के रूप में राजा भरत को आभूषणों से भरा हुआ पात्र, कटक--भेंट किये । नृत्तमालक देव को विजय करने के उपलक्ष्य में आयोजित अष्टदिवसीय महोत्सव के सम्पन्न हो जाने पर राजा भरत ने सेनापति सुषेण को बुलाया । शेष कथन सिन्धुदेवी समान है ।

सेनापति सुषेण ने गंगा महानदी के पूर्वभागवर्ती कोण-प्रदेश को, जो पश्चिम में महानदी से, पूर्व में समुद्र से, दक्षिण में वैताढ्य पर्वत से एवं उत्तर में लघु हिमवान् पर्वत से मर्यादित था, तथा सम-विषम अवान्तरक्षेत्रीय कोणवर्ती भागों को साधा । श्रेष्ठ, उत्तम रत्न भेंट में प्राप्त किये । वैसा कर सेनापति सुषेण गंगा महानदी आया । उसने निर्मल जल की ऊँची उछलती लहरों से युक्त गंगा महानदी को नौका के रूप में परिणत चर्मरत्न द्वारा सेनासहित पार किया । जहाँ राजा भरत था, वहाँ आकर आभिषेक्य हस्तिरत्न से नीचे उतरा । उत्तम, श्रेष्ठ रत्न लिये, जहाँ दोनों हाथ जोड़े अंजलि बाँधे राजा भरत को जय-विजय समर्पित किये। राजा भरत ने सेनापति सुषेण द्वारा समर्पित रत्न स्वीकार कर सेनापति सुषेण का सत्कार किया, सम्मान किया । विदा किया । शेष कथन पूर्ववत् जानना । तत्पश्चात् एक समय राजा भरत ने सेनापतिरत्न सुषेण को बुलाकर कहा--जाओ, खण्डप्रपात गुफा के उत्तरी द्वार के कपाट उद्घाटित करो । शेष कथन तमिस्रा गुफा के समान है ।

फिर राजा भरत उत्तरी द्वार से गया । सघन अन्धकार को चीर कर जैसे चन्द्रमा आगे बढ़ता है, उसी तरह खण्डप्रपात गुफा में प्रविष्ट हुआ, मण्डलों का आलेखन किया । खण्डप्रपात गुफा के ठीक बीच के भाग से उन्मग्नजला तथा निमग्नजला नामक दो बड़ी नदियाँ निकलती हैं । इनका वर्णन पूर्ववत् है । केवल इतना अन्तर है, ये नदियां खण्डप्रपात गुफा के पश्चिमी भाग से निकलती हुई, आगे बढ़ती हुई पूर्वी भाग में गंगा महानदी में मिल जाती हैं । शेष वर्णन पूर्ववत् । केवल इतना अन्तर है, पुल गंगा के पश्चिमी किनारे पर बनाया । तत्पश्चात् खण्डप्रपात गुफा के दक्षिणी द्वार के कपाट क्रौञ्चपक्षी की ज्यों जोर से आवाज करते हुए सरसराहट के साथ स्वयमेव अपने स्थान से सरक गये, चक्ररत्न द्वारा निर्देशित मार्ग का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुसरण करता हुआ, राजा भरत निबिड अन्धकार को चीर कर आगे बढ़ते हुए चन्द्रमा की ज्यों खण्डप्रपात गुफा के दक्षिणी द्वार से निकला ।

[१०५] तत्पश्चात्–गुफा से निकलने के बाद राजा भरत ने गंगा महानदी के पश्चिमी तट पर बारह योजन लम्बा, नौ योजन चौड़ा, श्रेष्ठ-नगर-सदृश-सैन्यशिबिर स्थापित किया । शेष कथन मागध देव समान है । फिर राजा ने नौ निधिरत्नों को–उद्दिष्ट कर तेला किया । राजा भरत नौ निधियों का मन में चिन्तन करता हुआ पौषधशाला में अवस्थित रहा । नौ निधियां अपने अधिष्ठातृ-देवों के साथ वहाँ राजा भरत के समक्ष उपस्थित हुईं । वे निधियाँ अपरिमित–लाल, नीले, पीले, हरे, सफेद आदि अनेक वर्णों के रत्नों से युक्त थीं, ध्रुव, अक्षय तथा अव्यय–थीं, लोकविश्रुत थीं । वे इस प्रकार है–

[१०६] नैसर्प, पाण्डुक, पिंगलक, सर्वरत्न, महापद्म, काल, महाकाल, माणवक तथा शंखनिधि ।

[१०७] नैसर्प निधि–ग्राम, आकर, नगर, पट्टन, द्रोणमुख, मडम्ब, स्कन्धावार, आपण तथा भवन–इनके स्थापन–की विशेषता होती है ।

[१०८] पाण्डुक निधि–गिने जाने योग्य, मापे जानेवाले धान्य आदि, तोले जानेवाले चीनी, गुड़ आदि, कमल जाति के उत्तम चावल आदि धान्यों के बीजों को उत्पन्न करने में समर्थ होती है ।

[१०९] पिंगलक निधि–पुरुषों, नारियों, घोड़ों तथा हाथियों के आभूषणों को उत्पन्न करने में समर्थ होती है ।

[११०] सर्वरत्न निधि–चक्रवर्ती के चौदह उत्तम रत्नों को उत्पन्न करती है । उनमें चक्ररत्न आदि सात एकेन्द्रिय होते हैं । सेनापतिरत्न आदि सात पंचेन्द्रिय होते हैं ।

[१११] महापद्म निधि–सब प्रकार के वस्त्रों को उत्पन्न करती है । वस्त्रों के रंगने, धोने आदि समग्र सज्जा के निष्पादन में समर्थ होती है ।

[११२] काल निधि–समस्त ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान, तीर्थंकर, चक्रवर्ति तथा बलदेववासुदेव-वंश–में जो शुभ, अशुभ घटित हुआ, होगा, हो रहा है, उन सबके ज्ञान, सौ प्रकार के शिल्पों के ज्ञान, उत्तम, मध्यम तथा अधम कर्मों के ज्ञान को उत्पन्न करने में समर्थ होती है ।

[११३] महाकाल निधि–विविध प्रकार के लोह, रजत, स्वर्ण, मणि, मोती, स्फटिक तथा प्रवाल आदि के आकारों को उत्पन्न करने की विशेषतायुक्त होती है ।

[११४] माणवक निधि–योद्धाओं, आवरणों, प्रहरणों, सब प्रकार की युद्ध-नीति के तथा साम, दाम, दण्ड एवं भेदमूलक राजनीति के उद्भव की विशेषता युक्त होती है ।

[११५] शंख निधि–नृत्य-विधि, नाटक-विधि–धर्म, अर्थ, काकम और मोक्ष–के प्रतिपादक काव्यों की अथवा गद्य, पद्य, गेय, चौर्ण–काव्यों की उत्पत्ति एवं सब प्रकार को वाद्यों को उत्पन्न करने की विशेषतायुक्त होती है ।

[११६] उनमें से प्रत्येक निधि का अवस्थान आठ-आठ चक्रों के ऊपर होता है–जहाँ-जहाँ ये ले जाई जाती हैं, वहाँ-वहाँ ये आठ चक्रों पर प्रतिष्ठित होकर जाती हैं । उनकी ऊँचाई आठ-आठ योजन की, चौड़ाई नौ-नौ योजन की तथा लम्बाई बारह-बारह योजन की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होती है । उनका आकर मंजूषा–पेटी जैसा होता है । गंगा जहाँ समुद्र में मिलती है, वहाँ उनका निवास है ।

[११७] उनके कपाट वैडूर्य मणिमय होते हैं । वे स्वर्ण-घटित होती हैं । विविध प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण–होती हैं । उन पर चन्द्र, सूर्य तथा चक्र के आकार के चिह्न होते हैं । उनके द्वारों की रचना अनुसम–अविषम होती है ।

[११८]निधियों के नामों के सदृश नामयुक्त देवों की स्थिति एक पल्योपम होती है। उन देवों के आवास अक्रयणीय–होते हैं–उन पर आधिपत्य प्राप्त नहीं कर सकता ।

[११९] प्रचुर धन-रत्न-संचय युक्त ये नौ निधियां भरतक्षेत्र के छहों खण्डों को विजय करने वाले चक्रवर्ती राजाओं के वंशगत होती हैं ।

[१२०] राजा भरत तेले की तपस्या के परिपूर्ण हो जाने पर पौषधशाला से बाहर निकला, स्नानघर में प्रविष्ट हुआ । स्नान आदि सम्पन्न कर उसने श्रेमि-प्रश्रेणि-जनों को बुलाया, नौ निधियों को साध लेने के उपलक्ष्य में । अष्टदिवसीय महोत्सव के सम्पन्न हो जाने पर राजा भरत ने सेनापति सुषेण को बुलाया । उससे कहा–जाओ, गंगा महानदी के पूर्व में अवस्थित, भरतक्षेत्र के कोणस्थित दूसरे प्रदेश को, जो पश्चिम दिशा में गंगा से, पूर्व एवं दक्षिण दिशा में समुद्रों से और उत्तर दिशा में वैताढ्य पर्वत से मर्यादित हैं तथा वहाँ के अवान्तरक्षेत्रीय समविषम कोणस्थ प्रदेशों को अधिकृत करो । शेष वर्णन पूर्ववत् । सेनापति सुषेण ने उन क्षेत्रों को अधिकृत कर राजा भरत को उससे अवगत कराया । राजा भरत ने उसे सत्कृत, सम्मानित कर विदा किया । तत्पश्चात् वह दिव्य चक्ररत्न शास्त्रागार से बाहर निकला । यावत् वह एक सहस्र योद्धाओं से संपरिवृत था–घिरा था । दिव्य नैऋत्य कोण में विनीता राजधानी की ओर प्रयाण किया । राजा भरत ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–आभिषेक्य हस्तिरत्न को तैयार करो । मेरे आदेशानुरूप यह सब संपादित कर मुझे सूचित करो।

[१२१] राजा भरत ने इस प्रकार राज्य अर्जित किया– । शत्रुओं को जीता । उसके यहाँ समग्र रत्न उद्भूत हुए । नौ निधियाँ प्राप्त हुईं । खजाना समृद्ध था– । बत्तीस हजार राजाओं से अनुगत था । साठ हजार वर्षों में समस्त भरतक्षेत्र को साध लिया । तदनन्तर राजा भरत ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–'देवानुप्रियो ! शीघ्र ही आभिषेक्य हस्तिरत्न को तैयार करो, चातुरंगिणी सेना सजाओ । राजा स्नान आदि कृत्यों से निवृत्त होकर अंजनगिरि के शिखर के समान उन्नत गजराज पर आरूढ हुआ । स्वस्तिक, श्रीवत्स आदि ये आठ मंगल राजा के आगे चले–उनके बाद जल से परिपूर्ण कलश, भृंगार, दिव्य छत्र, पताका, चंवर तथा दर्शन रचित–राजा को दिखाई देने वाली, आलोक-दर्शनीय–हवा से फहराती, उच्छित, विजयध्वजा लिये राजपुरुष चले । तदनन्तर वैडूर्य–की प्रभा से देदीप्यमान उज्ज्वल दंडयुक्त, लटकती हुई कोरंट पुष्पों की मालाओं से सुशोभित, चन्द्रमंडल के सदृश आभामय, समुच्छित–आतपत्र, सिंहासन, श्रेष्ठ मणि-रत्नों से विभूषित–पादुकाओं की जोड़ी रखी थी, वह पादपीठ–चौकी, जो किङ्करों, भृत्यों तथा पदातियों–क्रमशः आगे रवाना किये गये । तत्पश्चात् चक्ररत्न, छत्ररत्न, चर्मरत्न, दण्डरत्न, असिरत्न, मणिरत्न, काकणीरत्न–ये सात एकेन्द्रिय रत्न यथाक्रम चले । उनके पीछे क्रमशः नौ निधियाँ चलीं । उनके बाद १६००० देव चले । उनके पीछे ३२००० राजा चले । उनके पीछे सेनापतिरत्न, गाथापतिरत्न, वर्धकिरत्न तथा पुरोहितरत्न ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्थान किया । तत्पश्चात् स्त्रीरत्न–सुभद्रा, ३२००० ऋतुकल्याणिकाएँ तथा ३२००० जनपदकल्याणिकाएँ–यथाक्रम चलीं । उनके पीछे बत्तीस-बत्तीस अभिनेतव्य प्रकारों से परिबद्ध–३२००० नाटक चले ।

तदनन्तर ३६० सूपकार, अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि जन–चले । उनके पीछे क्रमशः चौरासी लाख घोड़े, चौरासी लाख हाथी, छियानवै करोड़ मनुष्य–चले । तत्पश्चात् अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, सार्थवाह आदि चले । तत्पश्चात् असिग्राह, लष्टिग्राह, कुन्तग्राह, चापग्राह, चमरग्राह, पाशग्राह, फलकग्राह, परशुग्राह, पुस्तकग्राह, वीणाग्राह, कूप्यग्राह, हड़प्फग्राह तथा दीपिकाग्राह–यथाक्रम चले । उसके बाद बहुत से दण्डी, मुण्डी, शिखण्डी, जटी, पिच्छी, हासकारक, विदूषक, खेड्डुकारक, द्रवकारक, चाटुकारक, कान्दर्पिक, कौत्कुचिक तथा मौखरिक–यताक्रम चलते गये । यह प्रसंग विस्तार से औपपातिकसूत्र के अनुसार संग्राह्य है । राजा भरत के आगे-आगे बड़े-बड़े कद्दावर घोड़े, घुड़सवार दोनों ओर हाथी, हाथियों पर सवार पुरुष चलते थे । उसके पीछे रथ-समुदाय यथावत् रूप से चलता था ।

तब नरेन्द्र भरतक्षेत्र का अधिपति राजा भरत, जिसका वक्षःस्थल हारों से व्याप्त, सुशोभित एवं प्रीतिकर था, अमरपति–तुल्य जिसकी समृद्धि सुप्रशस्त थी, जिससे उसकी कीर्ति विश्रुत थी, समुद्र के गर्जन की ज्यों सिंहनाद करता हुआ, सब प्रकार की ऋद्धि तथा द्युति से समन्वित, भेरी, झालर, मृदंग आदि अन्य वाद्यों की ध्वनि के साथ सहस्रों ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्वट, मडम्ब से युक्त मेदिनी को जीतता हुआ उत्तम, श्रेष्ठ रत्न भेंट के रूप में प्राप्त करता हुआ, दिव्य चक्ररत्न का अनुसरण करता हुआ, एक-एक योजन के अन्तर पर पड़ाव डालता हुआ, रुकता हुआ, जहाँ विनीता राजधानी थी, वहाँ आया । राजधानी से थोड़ी ही दूरी पर बारह योजन लम्बा, नौ योजन चौड़ा सैन्य शिबिर स्थापित किया ।

अपने उत्तम शिल्पकार को बुलाया । विनीता राजधानी को उद्दिष्ट कर–राजा ने तेला किया, डाभ के बिछौने पर अवस्थित राजा भरत तेले में प्रतिजागरित–रहा । तेला पूर्ण हो जाने पर राजा भरत पौषधशाला से बाहर निकला । कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, आभिषेक्य हस्तिरत्न को तैयार करने, स्नान करने आदि का वर्णन पूर्ववत् है । आगे का वर्णन विनीता राजधानी से विजय हेतु अभियान के समान है । केवल इतना अन्तर है कि विनीता राजधानी में प्रवेश करने के अवसर पर नौ महानिधियों ने तथा चार सेनाओं ने राजधानी में प्रवेश नहीं किया । राजा भरत ने तुमुल वाद्य-ध्वनि के साथ विनीता राजधानी के बीचों-बीच चलते हुए जहाँ अपना पैतृक घर था, जगद्वर्ति निवास-गृहों में सर्वोत्कृष्ट प्रासाद का बाहरी द्वार था, उधर चला । जब राजा भरत निकल रहा था, उस समय कतिपय जन विनीता राजधानी के बाहर-भीतर पानी का छिड़काव कर रहे थे, गोबर आदि का लेप कर रहे थे, मंचातिमंच–की रचना कर रहे थे, तरह-तरह के रंगों के वस्त्रों से बनी, ऊँची, सिंह, चक्र आदि के चिह्नों से युक्त ध्वजाओं एवं पताकाओं ने नगरी के स्थानों को सजा रहे थे । अनेक दीवारों को लीप रहे थे, अनेक धूप की महक से नगरी को उत्कृष्ट सुरभिमय बना रहे थे, कतिपय देवता उस समय चाँदी की, स्वर्ण, रत्न, हीरों एवं आभूषणों की वर्षा कर रहे थे ।

जब राजा भरत विनीता राजधानी के बीच से किल रहा था तो नगरी के सिंघाटक, तिकोने स्थानों, महापथों, पर बहुत से अभ्यर्थी, कामार्थी, भोगार्थी, लाभार्थी, ऋद्धि के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिलाषी, किल्बिषिक, कापालिक, करबाधित, शांखिक, चाक्रिक, लांगलिक, मुखमांगलिक, भाट, चारण, वर्धमानक, लंख, मंख, उदार, इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम, शिव, धन्य, मंगल, सश्रीक, हृदयगमनीय, हृदय-प्रह्लादनीय, वाणी से एवं मांगलिक शब्दों से राजा का अनवरत–अभिनन्दन करते हुए, अभिस्तवन करते हुए–जन-जन को आनन्द देने वाले राजन्! आपकी जय हो, आपकी विजय हो । जन-जन के लिए कल्याणस्वरूप राजन् ! आप सदा जयशील हों । आपका कल्याण हो । जिन्हें नहीं जीता है, उन पर आप विजय प्राप्त करें। जिनको जीत लिया है, उनका पालन करें, उनके बीच निवास करें । देवों में इन्द्र की तरह, तारों में चन्द्र की तरह, असुरों में चमरेन्द्र की तरह तथा नागों में धरणेन्द्र की तरह लाखों पूर्व, करोड़ों पूर्व, कोडाकोडी पूर्व पर्यन्त सम्पूर्ण भरतक्षेत्र के ग्राम, आकर–यावत् सन्निवेश–इन सबका सम्यक् पालन कर यश अर्जित करते हुए, इन सबका आधिपत्य, पौरोवृत्य, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरत्व, आज्ञेश्वरत्व, सेनापतित्व–इन सबका सर्वाधिकृत रूप में सर्वथा निर्वाह करते हुए निर्बाध, निरन्तर अविच्छिन्न रूप में नृत्य, गीत, वाद्य, वीणा, करताल, तूर्य–एवं घनमृदंग–आदि के निपुणतापूर्ण प्रयोग द्वारा निकलती सुन्दर ध्वनियों से आनन्दित होते हुए, विपुल–प्रचुर–अत्यधिक भोग भोगते हुए सुखी रहें, यों कहकर उन्होंने जयघोष किया ।

राजा भरत का सहस्त्रों नर-नारी अपने नेत्रों से बार-बार दर्शन कर रहे थे । वचनों द्वारा गुणसंकीर्तन कर रहे थे । हृदय से अभिनन्दन कर रहे थे । अपने शुभ मनोरथ–इत्यादि उत्सुकतापूर्ण मनःकामनाएँ लिये हुए थे । सहस्त्रों नर-नारी–ये स्वामी हमें सदा प्राप्त रहें, बार-बार ऐसी अभिलाषा करते थे । नर-नारियों द्वारा अपने हजारों हाथों से उपस्थापित अंजलिमाला–को अपना दाहिना हाथ ऊँचा उठाकर बार-बार स्वीकार करता हुआ, घरों की हजारों पंक्तियों लांघता हुआ, वाद्यों की मधुर, मनोहर, सुन्दर ध्वनि में तन्मय होता हुआ, उसका आनन्द लेता हुआ, जहाँ अपना सर्वोत्तम प्रासाद का द्वार था, वहाँ आया । अभिषेक्य हस्तिरत्न को ठहराया, नीचे उतरकर १६००० देवों का, ३२००० राजाओं का, सेनापतिरत्न, गाथापतिरत्न, वर्धकिरत्न तथा पुरोहितरत्न का, तीन सौ साठ पाचकों का, अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि-जनों का, माण्डलिक राजाओं, ऐश्वर्यशाली, प्रभावशाली पुरुषों तथा सार्थवाहों आदि का सत्कार-सम्मान किया । उन्हें सत्कृत-सम्मानित कर सुभद्रा नामक स्त्रीरत्न, ३२००० ऋतु-कल्याणिकाओं तथा ३२००० जनपद-कल्याणिकाओं, बत्तीस-बत्तीस अभिनेतव्य विधिक्रमों से परिबद्ध बत्तीस हजार नाटकों से–संपरिवृत राजा भरत कुबेर की ज्यों कैलास पर्वत के शिखर के तुल्य अपने उत्तम प्रासाद में गया । राजा ने अपने मित्रों, निजक, स्वजन तथा सम्बन्धियों से कुशल-समाचार पूछे । स्नान आदि संपन्न कर स्नानघर से बाहर निकला, भोजनमण्डप में आकर सुखासन पर बैठा, तेले का पारणा किया । अपने महल में गया । वहाँ मृदंग बज रहे थे । बत्तीस-बत्तीस अभिनेतव्य विधिक्रम से नाटक चल रहे थे, नृत्य हो रहे थे । यों नाटककार, नृत्यकार, संगीतकार राजा का मनोरंजन कर रहे थे । राजा का कीर्ति-स्तवन कर रहे थे । राजा उनका आनन्द लेता हुआ सांसारिक सुख का भोग करने लगा ।

[१२२] राजा भरत अपने राज्य का दायित्व सम्हाले था । एक दिन उसके मन में ऐसा भाव, उत्पन्न हुआ–मैंने अपने बल, वीर्य, पौरुष एवं पराक्रम द्वारा समस्त भरतक्षेत्र को जीत लिया है । इसलिए अब उचित है, मैं विराट् राज्याभिषेक-समारोह आयोजित करवाऊं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसमें मेरा राजतिलक हो । दूसरे दिन राजा भरत, स्नान आदि कर बाहर निकला, पूर्व की ओर मुँह किये सिंहासन पर बैठा । उसने १६००० अभियोगिक देवों, ३२००० प्रमुख राजाओं, सेनापति यावत् पुरोहितरत्न, ३६० सूपकारों, अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि जनों तथा अन्य बहुत से माण्डलिक राजाओं, यावत् सार्थवाहों को–बुलाया । उसने कहा–'देवानुप्रियो ! मैंने समग्र भरतक्षेत्र को जीत लिया है । तुम लोग मेरे राज्याभिषेक के विराट् समारोह की तैयारी करो । राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वे सोलह हजार आभियोगिक देव आदि बहुत हर्षित एवं परितुष्ट हुए । उन्होंने हाथ जोड़े, राजा भरत का आदेश विनयपूर्वक स्वीकार किया ।

तत्पश्चात् राजा भरत पौषधशाला में आया, तेला किया । तेला पूर्ण हो जाने पर आभियोगिक देवों का आह्वान कर कहा–विनीता राजधानी के–ईशानकोण में एक विशाल अभिषेकमण्डप की विकुर्वणा करो–राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वे आभियोगिक देवोने राजा भरत का आदेश विनयपूर्वक स्वीकार किया । विनीता राजधानी के ईशानकोण में गये। वहाँ जाकर वैक्रिय समुद्घात द्वारा अपने आत्मप्रदेशों को बाहर निकाला । उन्हें संख्यात योजन पर्यन्त दण्डरूप में परिणित किया । उनसे गृह्यमाण रत्नों के बादर, असार पुद्गलों को छोड़ दिया । सारभूत सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण किया । पुनः वैक्रिय समुद्घात द्वारा अपने आत्मप्रदेशों को बाहर निकाल कर मृदंग के ऊपरी भाग की ज्यों समतल, सुन्दर भूमिभाग की विकुर्वणा की–उसके ठीक बीच में एक विशाल अभिषेक-मण्डप की रचना की । वह मण्डप सैकड़ों खंभों पर टिका था । यावत्–जिससे सुगन्धित धुएं की प्रचुरता के कारण वहाँ गोल-गोल धूममय छल्ले बनते दिखाई देते थे । अभिषेकमण्डप के ठीक बीच में एक विशाल अभिषेकपीठ की रचना की । वह अभिषेकपीठ स्वच्छ– ता श्लक्ष्ण पुद्गलों से बना होने से मुलायम था। उस की तीन दिशाओं में उन्होंने तीन-तीन सोपानमार्गों की रचना की । उस का भूमिभाग बहुत समतल एवं रमणीय था । उस अत्यधिक समतल, सुन्दर भूमिभाग के ठीक बीच में उन्होंने एक विशाल सिंहासन का निर्माण किया । सिंहासन का वर्णन विजयदेव के सिंहासन जैसा है । अभिषेकमण्डप की रचना कर वे जहाँ राजा भरत था, वहाँ आये । उसे इससे अवगत कराया ।

राजा भरत उन आभियोगिक देवों से यह सुनकर हर्षित एवं परितुष्ट हुआ, पौषधशाला से बाहर निकला । उसने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–शीघ्र ही हस्तिरत्न को तैयार करो । हस्तिरत्न को तैयार कर चातुरंगिणी सेना को सजाओ । कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा किया एवं राजा को उसकी सूचना दी । फिर राजा भरत स्नानादि से निवृत्त होकर गजराज पर आरूढ हुआ । आठ मंगल-प्रतीक, राजा के आगे-आगे रवाना किये गये । विनीता से अभिनिष्क्रमण का वर्णन विनीता में प्रवेश के समान है । राजा भरत विनीता राजधानी के बीच से निकला । विनीता राजधानी के ईशानकोण में अभिषेकमण्डप आकर आभिषेक्य हस्तिरत्न को ठहराया । नीचे उतर कर स्त्रीरत्न–सुभद्रा, ३२००० ऋतुकल्याणिकाओं, ३२००० जनपदकल्याणिकाओं, बत्तीस-बत्तीस पात्रों, आदि से घिरा हुआ राजा भरत अभिषेकमण्डप में प्रविष्ट हुआ । अभिषेकपीठ के पास आकर प्रदक्षिणा की । पूर्व की ओर स्थित तीन सीढ़ियों से होता हुआ जहाँ सिंहासन था, वहाँ आकर पूर्व की ओर मुँह करके सिंहासन पर बैठा । राजा भरत के अनुगत बत्तीस हजार प्रमुख राजाने अभिषेकमण्डप में प्रवेश किया । प्रवेश कर जहाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा भरत था, वहाँ आकर उन्होंने हाथ जोड़े, राजा भरत को जय-विजय शब्दों द्वारा वर्धापित किया । थोड़ी ही दूरी पर शुश्रूषा करते हुए—प्रणाम करते हुए, विनयपूर्वक सामने हाथ जोड़े हुए, राजा की पर्युपासना करते हुए यथास्थान बैठ गये । तदनन्तर राजा भरत का सेनापतिरत्न यावत् सार्थवाह आदि वहाँ आये । उनके आने का वर्णन पूर्ववत् है केवल इतना अन्तर है कि वे दक्षिण की ओर के त्रिसोपान-मार्ग से अभिषेकपीठ पर गये ।

तत्पश्चात राजा भरत ने आभियोगिक देवों को आह्वान कर कहा—मेरे लिए महार्थ, महार्घ, महार्ह—ऐसे महाराज्याभिषेक का प्रबन्ध करो—राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वे आभियोगिक देव—ईशान-कोण में गये । वहाँ जाकर वैक्रिय समुद्घात द्वारा उन्होंने आत्मप्रदेशों को बाहर निकाला । शेष वर्णन विजयदेव के समान है । वे देव पंडकवन में मिले । मिलकर दक्षिणार्थ भरतक्षेत्र में विनीता राजधानी आये । प्रदक्षिणा की, अभिषेकमण्डप में आकर महार्थ, महार्घ तथा महार्ह महाराज्याभिषेक के लिए अपेक्षित समस्त सामग्री राजा के समक्ष उपस्थित की । ३२००० राजाओं ने श्रेष्ठ तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र एवं मुहूर्त्त में—उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र तथा विजय मुहूर्त्त में स्वाभाविक तथा उत्तरविक्रिया द्वारा निष्पादित, श्रेष्ठ कमलों पर प्रतिष्ठापित, सुरभित, उत्तम जल से परिपूर्ण १००८ कलशों से राजा भरत का बड़े आनन्दोत्सव के साथ अभिषेक किया । अभिषेक वर्णन विजयदेव के सदृश है उन राजाओं में से प्रत्येक ने इष्ट वाणी द्वारा राजा का अभिनन्दन, अभिस्तवन किया । वे बोले—राजन् ! आप सदा जयशील हों । आपका कल्याण हो । यावत् आप सांसारिक सुख भोगें, यों कह कर उन्होंने जयघोष किया । तत्पश्चात् सेनापतिरत्न, ३६० सूपकारों, अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि जनों तथा और बहुत से माण्डलिक राजाओं, सार्थवाहों ने राजा भरत का अभिषेक किया । उन्होंने उदार, इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम, शिव, धन्य, मंगल, सश्रीक, लालित्ययुक्त, हृदयगमनीय, हृदयप्रह्लादनीय, अनवरत अभिनन्दन किया, अभिस्तवन किया ।

१६००० देवों ने अगर आदि सुगन्धित पदार्थों एवं आमलक आदि कसैले पदार्थों से संस्कारित, अनुवासित अति सुकुमार रोओं वाले तौलिये से राजा का शरीर पोंछा । यावत् विभिन्न रत्नों से जुड़ा हुआ मुकुट पहनाया । तत्पश्चात् उन देवों ने दर्दर तथा मलय चन्दन की सुगन्ध से युक्त, केसर, कपूर, कस्तूरी आदि के सारभूत, सघन-सुगन्ध-व्याप्त रस—राजा पर छिड़के । उसे दिव्य पुष्पों की माला पहनाई । उन्होंने उसको ग्रन्थिम, वेष्टिम, पूरिम तथा संघातिम मालाओं से विभूषित किया । उससे सुशोभित राजा कल्पवृक्ष सदृश प्रतीत होता था। इस प्रकार विशाल राज्याभिषेक समारोह में अभिषिक्त होकर राजा भरत ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । उनसे कहा—देवानुप्रियो ! हाथी पर सवार होकर तुम लोग विनीता राजधानी के तिकोने स्थानों, तिराहों, चौराहों, चत्वरों तथा विशाल राजमार्गों पर यह घोषणा करो कि इस उपलक्ष्य में मेरे राज्य के निवासी बारह वर्ष पर्यन्त प्रमोदोत्सव मनाएं । इस बीच राज्य में कोई भी क्रय-विक्रय आदि सम्बन्धी शुल्क, नहीं लिया जायेगा । ग्राह्य में—किसी से युदि कुछ लेना है, उसमें खिंचाव न किया जाए, आदान-प्रदान का, नाप-जोख का क्रम बन्द रहे, राज्य के कर्मचारी, अधिकारी किसी के घर में प्रवेश न करें, दण्ड, कुदण्ड न लिये जाएं।

राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वे कौटुम्बिक पुरुष बहुत हर्षित तथा परितुष्ट हुए, उन्होंने विनयपूर्वक राजा का आदेश स्वीकार किया । वे शीघ्र ही हाथी पर सवार हुए, उन्होंने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा के आदेशानुरूप घोषणा की । विराट् राज्याभिषेक-समारोह में अभिषिक्त राजा भरत सिंहासन से उठा । स्त्रीरत्न सुभद्रा आदि से संपरिवृत राजा अभिषेक-पीठ से उसके पूर्वी त्रिसोपानोपगत मार्ग से नीचे उतरा । अभिषेक-मण्डप से बाहर निकला । जहाँ आभिषेक्य हस्तिरत्न था, वहाँ आकर आरूढ हुआ । राजा भरत के अनुगत बत्तीस हजार प्रमुख राजा अभिषेक-पीठ स उसके उत्तरी त्रिसोपानोपगत मार्ग से नीचे उतरे । राजा भरत का सेनापतिरत्न, सार्थवाह आदि अभिषेक-पीठ से उसके दक्षिणी त्रिसोपानोपगत मार्ग से नीचे उतरे । आभिषेक्य हस्तिरत्न पर आरूढ राजा के आगे मंगल-प्रतीक रवाना किया गये । शेष पूर्ववत् । तत्पश्चात् राजा भरत स्नानादि परिसंपन्न कर भोजन-मण्डप में आया, सुखासन पर बैठा, तेले का पारणा किया । भोजन-मण्डप से निकल कर वह अपने श्रेष्ठ उत्तम प्रासाद में गया । वहाँ मृदंग बज रहे थे । यावत् राजा उनका आनन्द लेता हुआ सांसारिक सुखों का भोग करने लगा । प्रमोदोत्सव में बारह वर्ष पूर्ण हो गये । राजा भरत स्नान कर वहाँ से निकला, बाह्य उपस्थानशाला में आकर पूर्व की ओर मुँह कर सिंहासन पर बैठा । सोलह हजार देवों का यावत् सार्थवाह आदि का सत्कार किया, सम्मान किया । उन्हें विदा किया । विदा कर वह अपने श्रेष्ठ–महल में गया । वहाँ विपुल भोग भोगने लगा ।

[१२३] चक्ररत्न, दण्डरत्न, असिरत्न तथा छत्ररत्न–ये चार एकेन्द्रिय रत्न आयुधगृहशाला में–उत्पन्न हुए । चर्मरत्न, मणिरत्न, काकणीरत्न तथा नौ महानिधियां, श्रीगृह में, सेनापतिरत्न, गाथापतिरत्न, वर्धकिरत्न तथा पुरोहितरत्न, ये चार मनुष्यरत्न, विनीता राजधानी में, अश्वरत्न तथा हस्तिरत्न, ये दो पञ्चेन्द्रियरत्न वैताढ्य पर्वत की तलहटी में और सुभद्रा स्त्रीरत्न उत्तर विद्याधरश्रेणी में उत्पन्न हुआ ।

[१२४] राजा भरत चौदह रत्नों, नौ महानिधियों, १६००० देवताओं, ३२००० राजाओं, ३२००० ऋतुकल्याणिकाओं, ३२००० जनपदकल्याणिकाओं, बत्तीस-बत्तीस पात्रों, अभिनेतव्व क्रमोपक्रमों से अनुबद्ध, ३२००० नाटकों, ३६० सूपकारों, अठारह श्रेणी-प्रश्रेणि-जनों, चौरासी लाख घोड़ों, चौरासी लाख हाथियों, चौरासी लाख रथों, छियानवै करोड़ मनुष्यों, ७२००० पुरवरों, ३२००० जनपदों, छियानवै करोड़ गाँवों, ९९००० द्रोणमुखों, ४८००० पत्तनों, २४००० कर्वटों, २४००० मडम्बों, २०००० आकरों, १६००० खेटों, १४००० संबाधों, छप्पन अन्तरोदकों तथा उनचास कुराज्यों, विनीता राजधानी का, समस्त भरतक्षेत्र का, अन्य अनेक माण्डलिक राजा, ऐश्वर्यशाली, प्रभावशाली पुरुष, तलवर, सार्थवाह आदि का आधिपत्य पौरोवृत्य, भर्तृत्व, स्वामित्व, महत्तरत्व–आज्ञेश्वरत्व, सैनापत्य–इन सबका सर्वाधिकृत रूप में पालन करता हुआ, सम्यक् निर्वाह करता हुआ राज्य करता था । राजा भरत ने अपने कण्टकों–की समग्र सम्पत्ति का हरण कर लिया, उन्हें विनष्ट कर दिया तथा अपने अगोत्रज समस्त शत्रुओं को मसल डाला, कुचल डाला । उन्हें देश से निर्वासित कर दिया । राजा भरत को सर्वविध औषधियां, रत्न तथा समितियाँ संप्राप्त थीं । अमित्रों–का उसने मान-भंग कर दिया । उसके समस्त मनोरथ सम्यक् सम्पूर्ण थे–जिसके अंग श्रेष्ठ चन्दन से चर्चित थे, वक्षःस्थल हारों से सुशोभित था, प्रीतिकर था, श्रेष्ठ मुकुट से विभूषित था, उत्तम, बहुमूल्य आभूषण धारण किये था, सब ऋतुओं में खिलने वाले फूलों की सुहावनी माला से जिसका मस्तक शोभित था, उत्कृष्ट नाटक प्रतिबद्ध पात्रों– तथा सुन्दर स्त्रियों के समूह से संपरिवृत वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा भरत अपने पूर्व जन्म में आचीर्ण तप के, संचित निकाचित पुण्य कर्मों के परिणामस्वरूप मनुष्य जीवन के सुखों का परिभोग करने लगा ।

[१२५] किसी दिन राजा भरत ने स्नान किया । देखने में प्रिय एवं सुन्दर लगनेवाला राजा स्नानघर से बाहर निकला । जहाँ आदर्शगृह में, जहाँ सिंहासन था, वहाँ आया । पूर्व की ओर मुँह किये सिंहासन पर बैठा । शीशों पर पड़ते अपने प्रतिबिम्ब को बार बार देखता रहा । शुभ परिणाम, प्रशस्त–अध्यवसाय, विशुद्ध होती हुई लेश्याओं, विशुद्धिक्रम से ईहा, अपोह, मार्गण तथा गवेषण–करते हुए राजा भरत को कर्मक्षय से–कर्म-रज के निवारक अपूर्वकरण में–अवस्थिति द्वारा अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हुए ।

तब केवली सर्वज्ञ भरत ने स्वयं ही अपने आभूषण, अलंकार उतार दिये । स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया । वे शीशमहल से प्रतिनिष्क्रान्त हुए । अन्तःपुर के बीच से होते हुए राजभवन से बाहर निकले । अपने द्वारा प्रतिबोधित दश हजार राजाओं से संपरिवृत केवली भरत विनीता राजधानी के बीच से होते हुए बाहर चले गये । कोशलदेश में सुखपूर्वक विहार करते हुए वे अष्टापद पर्वत वहाँ आकर पर्वत पर चढ़कर सघन मेघ के समान श्याम तथा देव-सन्निपात–के कारण जहाँ देवों का आवागमन रहता था, ऐसे पृथ्वीशिलापट्टक का प्रतिलेखन किया । वहाँ संलेखना–स्वीकार किया, खान-पान का परित्याग किया, पादोपगत–संथारा अंगीकार किया । जीवन और मरण की आकांक्षा– न करते हुए वे आत्माराधना में अभिरत रहे । केवली भरत ७७ लाख पूर्व तक कुमारावस्था में रहे, १००० वर्ष तक मांडलिक राजा के रूप में रहे, १००० वर्ष कम छह लाख पूर्व तक महाराज के रूप में रहे । वे तियासी लाख पूर्व तक गृहस्थवास में रहे । अन्तमुहूर्त्त कम एक लाख पूर्व तक वे केवलिपर्याय में रहे । एक लाख पूर्व पर्यन्त बहु-प्रतिपूर्ण श्रामण्य-पर्याय–का पालन किया । चौरासी लाख पूर्व का समग्र आयुष्य भोगा । एक महीने के अनशन द्वारा वेदनीय, आयुष्य, नाम तथा गोत्र–इन चार भवोपग्राही, कर्मों के क्षीण हो जाने पर श्रवण नक्षत्र में जब चन्द्र का योग था, देह-त्याग किया । जन्म, जरा तथा मृत्यु के बन्धन को छिन्न कर डाला– । वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत तथा सब प्रकार के दुःखों के प्रहाता हो गये ।

[१२६] यहाँ भरतक्षेत्र में महान् ऋद्धिशाली, परम द्युतिशाली, पल्योपमस्थितिक–एक पल्योपम आयुष्य युक्त भरत नामक देव निवास करता है । गौतम ! इस कारण यह क्षेत्र भरतवर्ष या भरतक्षेत्र कहा जाता है । गौतम ! भरतवर्ष नाम शाश्वत है–कभी नहीं था, कभी नहीं है, कभी नहीं होगा ऐसा नहीं है । यह था, यह है, यह होगा । ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित एवं नित्य है ।

वक्षस्कार-३-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

वक्षस्कार-४

[१२७] भगवन् ! जम्बूद्वीप में चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत कहाँ है ? गौतम ! जम्बूद्वीप में चुल्ल हिमवान् नामक वर्षधर पर्वत हैमवतक्षेत्र के दक्षिण में, भरतक्षेत्र के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में बतलाया गया है । वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है । वह दो ओर से लवणसमुद्र को छुए हुए है । अपनी पूर्वी कोटि से पूर्वी लवणसमुद्र को तथा पश्चिमी कोटि से पश्चिमी लवणसमुद्र को । वह एक सौ योजन ऊँचा है । पच्चीस योजन भूगत है–वह १०५२–१२/१९ योजन चौड़ा है । उसकी बाहा–पूर्व-पश्चिम ५३५०–१५११/१९ योजन लम्बा है । उसकी जीवा–पूर्व-पश्चिम लम्बी है । जीवा २४९३२ योजन एवं आधे योजन से कुछ कम लम्बी है । दक्षिण में उसका धनु पृष्ठ भाग परिधि की अपेक्षा से २५२३०–४/१९ योजन है । वह रुचक-संस्थान-संस्थित है–सर्वथा स्वर्णमय है । वह स्वच्छ, सुकोमल तथा सुन्दर है । वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं एवं दो वनखंडों से घिरा हुआ है । चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत के ऊपर बहुत समतल और रमणीय भूमिभाग है । वह आलिंगपुष्कर–के सदृश समतल है । वहां बहुत से वाणव्यन्तर देव तथा देवियाँ विहार करते हैं ।

[१२८] उस अति समतल भूमिभाग के ठीक बीच में पद्मद्रह है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है । उसकी लम्बाई १००० योजन तथा चौड़ाई ५०० योजन है । उसकी गहराई दश योजन है वह स्वच्छ, सुकोमल, रजतमय, तटयुक्त, सुन्दर एवं प्रतिरूप–है । वह द्रह एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वनखण्ड द्वारा सब ओर से परिवेष्टित है । उस पद्मद्रह की चारों दिशाओं में तीन-तीन सीढ़ियाँ बनी हुई हैं । उन सीढ़ियों में से प्रत्येक के आगे तोरणद्वार बने हैं । वे नाना प्रकार की मणियों से सुसज्जित हैं । उस पद्मद्रह के बीचों बीच एक विशाल पद्म है । वह एक योजन लम्बा और एक योजन चौड़ा है । आधा योजन मोटा है । दश योजन जल के भीतर गहरा है । दो कोश जल ऊँचा उठ हुआ है । इस प्रकार उसका कुल विस्तार दश योजन से कुछ अधिक है । वह एक जगती–द्वारा सब ओर से घिरा है । उस प्रकार का प्रमाण जम्बूद्वीप के प्राकार के तुल्य है । उसका गवाक्षसमूह–भी प्रमाण में जम्बूद्वीप के गवाक्षों के सदृश हैं ।

वह पद्म के मूल वज्ररत्नमय हैं । कन्द–रिष्टरत्नमय है । नाल वैडूर्यरत्नमय है । बाह्य पत्र–वैडूर्यरत्न हैं । आभ्यन्तर पत्र–जम्बूनद स्वर्णमय है केसर–किञ्जल्क तपनीय रक्त स्वर्णमय हैं । पुष्करास्थिभाग विविध मणिमय हैं । कर्णिका स्वर्णमय है । वह कर्णिका आधा योजन लम्बी-चौड़ी है, सर्वथा स्वर्णमय है । स्वच्छ–उज्ज्वल है । उस कर्णिका के ऊपर अत्यन्त समतल एवं सुन्दर भूमिभाग है । वह ढोलक पर मढ़े हुए चर्मपुट की ज्यों समतल है । उस भूमिभाग के ठीक बीच में एक विशाल भवन है । वह एक कोश लम्बा, आधा कोश चौड़ा तथा कुछ कम एक कोश ऊँचा है, सैकड़ों खंभों से युक्त है, सुन्दर एवं दर्शनीय है । उस भवन के तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं । वे पाँच सौ धनुष ऊँचे हैं, अढ़ाई सौ धनुष चौड़े हैं तथा उनके प्रवेशमार्ग भी उतने ही चौड़े हैं । उन पर उत्तम स्वर्णमय छोटे-छोटे शिखर हैं । वे पुष्पमालाओं से सजे हैं । उस भवन का भीतरी भूमिभाग बहुत समतल तथा रमणीय है । वह ढोलक पर मढ़े चमड़े की ज्यों समतल है । उसके ठीक बीच में एक विशाल मणिपीठिका है । वह मणिपीठिका पाँच सौ धनुष लम्बी-चौड़ी तथा अढ़ाई सौ धनुष मोटी है, सर्वथा स्वर्णमय है, स्वच्छ है । उस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल शय्या है ।

वह पद्म दूसरे एक सौ आठ पद्मों से, जो ऊँचाई में, प्रमाण में–आधे हैं, सब ओर से घिरा हुआ है । वे पद्म आधा योजन लम्बे-चौड़े, एक कोश मोटे, दश योजन जलगत–

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

तथा एक कोश जल से ऊपर ऊँचे उठे हुए हैं । यों जल के भीतर से लेकर ऊँचाई तक वे दश योजन से कुछ अधिक हैं । उन पद्मों के मूल वज्ररत्नमय यावत् तथा कर्णिका कनकमय है । वह कर्णिका एक कोश लम्बी, आधा कोश मोटी, सर्वथा स्वर्णमय तथा स्वच्छ है । उस कर्णिका के ऊपर एक बहुत समतल, रमणीय, भूमिभाग है, जो नाना प्रकार की मणियों से सुशोभित है । उन मूल पद्म के वायव्यकोण में, उत्तर में तथा ईशानकोण में श्री देवी के सामानिक देवों के चार हजार पद्म हैं । उस के पूर्व में श्री देवी की चार महत्तरिकाओं के चार पद्म हैं । उनके आग्नेयकोण में भी देवी का आभ्यन्तर परिषद् के आठ हजार देवों के आठ हजार पद्म हैं । दक्षिण में श्री देवी की मध्यम परिषद् के दश हजार देवों के दश हजार पद्म हैं । नैर्ऋत्यकोण में श्री देवी की बाह्य परिषद् के बारह हजार देवों के बारह हजार पद्म हैं। पश्चिम में सात अनीकाधिपति के सात पद्म हैं । उस पद्म की चारों दिशाओं में सब ओर श्री देवी के सोलह हजार आत्मरक्षक देवों के सोलह हजार पद्म हैं ।

वह मूल पद्मआभ्यन्तर, मध्यम तथा बाह्य तीन पद्म-परिक्षेपों–प्राचीरों द्वारा सब ओर से घिरा हुआ है । आभ्यन्तर पद्म-परिक्षेप में बत्तीस लाख पद्म हैं, मध्यम पद्म-परिक्षेप में चालीस लाख पद्म हैं, तथा बाह्य पद्मपरिक्षेप में अड़तालीस लाख पद्म हैं । इस प्रकार तीनों पद्म-परिक्षेपों में एक करोड़ बीस लाख पद्म हैं । भगवन् ! यह द्रह पद्मद्रह किस कारण कहलाता है ? गौतम ! पद्मद्रह में स्थान-स्थान पर बहुत से उत्पल यावत् शतसहस्रपत्र प्रभृति अनेकविध पद्म हैं । वे पद्म–कमल पद्मद्रह के सदृश आकारयुक्त, वर्णयुक्त एवं आभायुक्त हैं। इस कारण वह पद्मद्रह कहा जाता है । वहाँ परम ऋद्धिशालिनी पल्योपम-स्थितियुक्त श्री नामक देवी निवास करती है । अथवा गौतम ! पद्मद्रह नाम शाश्वत कहा गया है । वह कभी नष्ट नहीं होता ।

[१२९] उस पद्मद्रह के पूर्वी तोरण-द्वार से गंगा महानदी निकलती है । वह पर्वत पर पांच ५०० बहती है, गंगावर्तकूट के पास से वापस मुड़ती है, ५२३–३/१९ योजन दक्षिण की ओर बहती है । घड़े के मुंह से निकलते हुए पानी की ज्यों जोर से शब्द करती हुई वेगपूर्वक, मोतियों के बने हार के सदृश आकार में वह प्रपात-कुण्ड में गिरती है । उस समय उसका प्रवाह चुल्ल हिमवान् पर्वत के शिखर से प्रपात-कुण्ड तक कुछ अधिक सौ योजन होता है । जहाँ गंगा महानदी गिरती है, वहाँ एक जिह्विका– है । वह आधा योजन लम्बी तथा छह योजन एवं एक कोस चौड़ी है । वह आधा कोस मोटी है । उसका आकार मगरमच्छ के खुले मुँह जैसा है । वह सम्पूर्णतः हीरकमय है, स्वच्छ एवं सुकोमल है । गंगा महानदी जिसमें गिरती है, उस कुण्ड का नाम गंगाप्रपातकुण्ड है । वह बहुत बड़ा है । उसकी लम्बाई-चौड़ाई साठ योजन है । परिधि १९०० योजन से कुछ अधिक है । वह दस योजन गहरा है, स्वच्छ एवं सुकोमल है, रजतमय कूलयुक्त है, समतल तटयुक्त है, हीरकमय पाषाणयुक्त है– पैंदे में हीरे हैं । बालू स्वर्ण तथा शुभ्र रजतमय है । तट के निकटवर्ती उन्नत प्रदेश वैडूर्यमणि–बिल्लौर की पट्टियों से बने हैं । उसमें प्रवेश करने एवं बाहर निकलने के मार्ग सुखावह हैं । उसके घाट अनेक प्रकार की मणियों से बँधे हैं । वह गोलाकार है । उसमें विद्यमान जल उत्तरोत्तर गहरा और शीतल होता गया है । वह कमलों के पत्तों, कन्दों तथा नालों से परिव्याप्त है । अनेक उत्पल यावत् शत-सहस्र-पत्र–कमलों के प्रफुल्लित किञ्जल्क से सुशोभित है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ भौंरे कमलों का परिभोग करते हैं । उसका जल स्वच्छ, निर्मल और पथ्य है । वह कुण्ड जल से आपूर्ण है । इधर-उधर घूमती हुई मछलियों, कछुओं तथा पक्षियों के समुन्नत–गुंजित रहता है, सुन्दर प्रतीत होता है । वह एक पद्मवरवेदिका एवं वनखण्ड द्वारा सब ओर से घिरा हुआ है ।

उस गंगाप्रपातकुण्ड की तीन दिशाओं में–तीन-तीन सीढ़ियां बनी हुई हैं । उन सीढ़ियों के नेम–वज्ररत्नमय हैं । प्रतिष्ठान–रिष्टरत्नमय हैं । खंभे वैडूर्यरत्नमय हैं । फलक–सोने-चाँदी से बने हैं । सूचियाँ–लोहिताक्ष रत्न-निर्मित हैं । सन्धियाँ–वज्ररत्नमय हैं । आलम्बन–विविध प्रकार की मणियों से बने हैं । तीनों दिशाओं में विद्यमान उन तीन-तीन सीढ़ियों के आगे तोरण-द्वार बने हैं । वे अनेकविध रत्नों से सज्जित हैं, मणिमय खंभों पर टिके हैं, सीढ़ियों के सन्निकटवर्ती हैं । उनमें बीच-बीच में विविध तारों के आकार में बहुत प्रकार के मोती जड़े हैं । वे ईहामृग, वृषभ, अश्व, मनुष्य, मकर, खग, सर्प, किन्नर, रुरुसंज्ञक मृग, शरभ, चमर, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के चित्रांकनों से सुशोभित हैं । उनके खंभों पर उत्कीर्ण वज्ररत्नमयी वेदिकाएँ हैं । उन पर चित्रित विद्याधर-युगल, एक आकारयुक्त कठपुतलियों की ज्यों संचरणशील से प्रतीत होते हैं । हजारों रत्नों की प्रभा से वे सुशोभित हैं । सहस्रों चित्रों से वे देदीप्यमान हैं, देखने मात्र से नेत्रों में समा जाते हैं । वे सुखमय स्पर्शयुक्त एवं शोभामय रूपयुक्त हैं । उन पर जो घंटियाँ लगी हैं, वे पवन से आन्दोलित होने पर बड़ा मधुर शब्द करती हैं, मनोरम प्रतीत होती हैं । उन तोरण-द्वारों पर स्वस्तिक, श्रीवत्स आदि आठ-आठ मंगल-द्रव्य स्थापित हैं । काले चँवरों की ध्वजाएँ यावत् तथा शत-सहस्रपत्रों–कमलों के ढेर के ढेर लगे हैं, जो सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ एवं सुन्दर हैं ।

उस गंगाप्रपातकुण्ड के ठीक बीच में गंगाद्वीप द्वीप है । वह आठ योजन लम्बा-चौड़ा है । उसकी परिधि कुछ अधिक पच्चीस योजन है । जल से ऊपर दो कोस ऊँचा उठा हुआ है । वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ एवं सुकोमल है । वह एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड द्वारा सब ओर से घिरा हुआ है । गंगाद्वीप पर बहुत समतल, सुन्दर भूमिभाग है । उसके ठीक बीच में गंगा देवी का विशाल भवन है । वह एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा तथा कम एक कोस ऊँचा है । वह सैकड़ों खंभों पर अवस्थित है । उसके ठीक बीच में एक मणपीठिका है । उस पर शय्या है । परम ऋद्धिशालिनी गंगादेवी का आवास-स्थान होने से वह द्वीप गंगाद्वीप कहा जाता है, अथवा यह शाश्वत नाम है– । उस गंगाप्रपातकुण्ड के दक्षिणी तोरण से गंगा महानदी आगे निकलती है । वह उत्तरार्ध भरतक्षेत्र की ओर आगे बढ़ती है तब सात हजार नदियाँ उसमें आ मिलती हैं । वह उनसे आपूर्ण होकर खण्डप्रपात गुफा होती हुई, वैताढ्य पर्वत को चीरती हुई–दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र की ओर जाती है । वह दक्षिणार्ध भरत के ठीक बीच से बहती हुई पूर्व की ओर मुड़ती है । फिर १४००० नदियाँ के परिवार से युक्त होकर वह जम्बूद्वीप की जगती को विदीर्ण कर–पूर्वी–लवणसमुद्र में मिल जाती है ।

गंगा महानदी का प्रवह–एक कोस अधिक छः योजन का विस्तार–लिये हुए है । वह आधा कोस गहरा है । तत्पश्चात् वह महानदी क्रमशः मात्रा में–विस्तार में बढ़ती जाती है । जब समुद्र में मिलती है, उस समय उसकी चौड़ाई साढ़े बासठ योजन होती है, गहराई एक योजन एक कोस–होती है । वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं तथा वनखण्डों द्वारा संपरिवृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है । गंगा महानदी के अनुरूप ही सिन्धु महानदी का आयाम-विस्तार है । इतना अन्तर है– सिन्धु महानदी उस पद्मद्रह के पश्चिम दिग्वर्ती तोरण से निकलती है, पश्चिम दिशा की ओर बहती है, सिन्ध्वावर्त कूट से मुड़कर दक्षिणाभिमुख होती हुई बहती है । फिर नीचे तिमिस्रा गुफा से होती हुई वह वैताढ्य पर्वत को चीरकर पश्चिम की ओर मुड़ती है । उसमें वहाँ १४००० नदियां मिलती हैं । फिर वह जगती को विदीर्ण करती हुई पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती है । उस पद्मद्रह के उत्तरी तोरण से रोहितांशा महानदी निकलती है । वह पर्वत पर उत्तर में २७६–६/१९ योजन बहती है । घड़े के मुंह से निकलते हुए पानी की ज्यों और से शब्द करती हुई वेगपूर्वक मोतियों के हार के सदृश आकार में पर्वत-शिखर से प्रपात तक कुछ अधिक एक सौ योजन परिमित प्रवाह के रूप में प्रपात में गिरती है । रोहितांशा महानदी जहाँ गिरती है, वहाँ एक जिह्वाका है । उसका आयाम एक योजन है, विस्तार साढ़े बारह योजन है । उसका मोटापन एक कोस है । उसका आकार मगरमच्छ के खुले मुख के आकार जैसा है । वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है ।

रोहितांशा महानदी जहाँ गिरती है, वह रोहितांशाप्रपातकुण्ड है । उसकी लम्बाई-चौड़ाई १२० योजन है । उसकी परिधि कुछ कम १८३ योजन है । उसकी गहराई दस योजन है। उस रोहितांशाप्रपात कुण्ड के ठीक बीच में रोहितांशद्वीप है । उसकी लम्बाई-चौड़ाई सोलह योजन है । उसकी परिधि कुछ अधिक पचास योजन है । वह जल से ऊपर दो कोश ऊँचा उठा हुआ है । वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ एवं सुकोमल है । उस रोहितांशाप्रपातकुण्ड के उत्तरी तोरण से रोहितांशा महानदी आगे निकलती है, हैमवत क्षेत्र की ओर बढ़ती है । १४००० नदियाँ उसमें मिलती हैं । उनसे आपूर्ण होती हुई वह शब्दापाती वृत्तवैताढ्य पर्वत के आधा योजन दूर रहने पर पश्चिम की ओर मुड़ती है । वह हैमवत क्षेत्र को दो भागों में विभक्त करती हुई आगे बढ़ती है । तत्पश्चात् २८००० नदियों के परिवार सहित–नीचे की ओर जगती को विदीर्ण करती हुई–पश्चिम-दिग्वर्ती लवणसमुद्र में मिल जाती है । रोहितांशा महानदी जहाँ से निकलती है, वहाँ उसका विस्तार साढ़े बारह योजन है । उसकी गहराई एक कोश है । तत्पश्चात् वह क्रमशः बढ़ती जाती है । मुख-मूल में–उसका विस्तार १२५ योजन होता है, गहराई अढाई योजन होती है । वह अपने दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो वनखण्डों से संपरिवृत है ।

[१३०] भगवन् ! चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत के कितने कूट हैं ? गौतम ! ग्यारह, सिद्धायतन, चुल्लहिमवान्, भरत, इलादेवी, गंगादेवी, श्री, रोहितांशा, सिन्धुदेवी, सुरादेवी, हैमवत तथा वैश्रवणकूट । भगवन् ! चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत पर सिद्धायतनकूट कहाँ है ? गौतम ! पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, चुल्ल हिमवान्कूट के पूर्व में है । वह पांच सौ योजन ऊँचा है । मूल में पांच सौ योजन, मध्य में ३७५ योजन तथा ऊपर २५० योजन विस्तीर्ण है । मूल में उसकी परिधि कुछ अधिक १५८१ योजन, मध्य में कुछ कम ११८६ योजन तथा ऊपर कुछ कम ७९१ योजन है । मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त एवं ऊपर तनुक है । उसका आकार गाय की ऊर्ध्वीकृत पूँछ के आकार जैसा है । वहा सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है। वह एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड द्वारा सब ओर से घिरा हुआ है । सिद्धायतनकूट के ऊपर एक बहुत समतल तथा रमणीय भूमिभाग है । उस भूमिभाग के ठीक बीच में एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशाल सिद्धायतन है । वह पचास योजन लम्बा, पच्चीस योजन चौड़ा और छत्तीस योजन ऊँचा है । उससे सम्बद्ध जिनप्रतिमा पर्यन्त का वर्णन पूर्ववत् है ।

भगवन् ! चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत पर चुल्लहिमवान् नामक कूट कहां है ? गौतम ! भरतकूट के पूर्व में, सिद्धायतनकू के पश्चिम में चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत पर चुल्लहिमवान् नामक कूट है । सिद्धायतनकूट की ऊँचाई, विस्तार तथा घेरा जितना है, उतना ही उस का है । उस कूट पर एक बहुत ही समतल एवं रमणीय भूमिभाग है । उसके ठीक बीच में एक बहुत बड़ा उत्तम प्रासाद है । वह ६२११ योजन ऊँचा है । ३१ योजन और १ कोस चौड़ा है । वह बहुत ऊँचा उठा हुआ है । अत्यन्त धवल प्रभापुंज लिये रहने से वह हँसता हुआ-सा प्रतीत होता है । उस पर अनेक प्रकार की मणियाँ तथा रत्न जड़े हुए हैं । अपने पर लगी, पवन से हिलती, फहराती विजयसूचक ध्वजाओं, पताकाओं, छत्रों तथा अतिछत्रों से वह बड़ा सुहावना लगता है । उसके शिखर बहुत ऊँचे हैं, जालियों में जड़े रत्न-समूह हैं, स्तूपिकाएँ, मणियों एवं रत्नों से निर्मित हैं । उस पर विकसित शतपत्र, पुण्डरीक, तिलक, रत्न तथा अर्धचन्द्र के चित्र अंकित हैं । अनेक मणिनिर्मित मालाओं से वह अलंकृत है । भीतर-बाहर वज्ररत्नमय, तपनीय-स्वर्णमय, चिकनी, रुचिर बालुका से आच्छादित है । उसका स्पर्श सुखप्रद है, रूप सश्रीक है । वह आनन्दप्रद, यावत् प्रतिरूप है । उस उत्तम प्रासाद के भीतर बहुत समतल एवं रमणीय भूमिभाग है ।

भगवन् ! वह चुल्ल हिमवान् कूट क्यों कहलाता है ? गौतम ! परम ऋद्धिशाली चुल्ल हिमवान् नामक देव वहाँ निवास करता है, इसलिए । भगवन् ! चुल्ल हिमवान् गिरिकुमार देव की चुल्लहिमवन्ता नामक राजधानी कहाँ है ? गौतम ! चुल्लहिमवान्कूट के दक्षिण में तिर्यक् लोक में असंख्य द्वीपों, समुद्रों को पार कर अन्य जम्बूद्वीप में दक्षिण में १२००० योजन पार करने पर है उनका आयाम-विस्तार १२००० योजन है । वर्णन विजय-राजधानी सदृश जानना । बाकी के कूटों का आयाम-विस्तार, परिधि, प्रासाद, देव, सिंहासन, तत्सम्बद्ध सामग्री, देवों एवं देवियों की राजधानियों आदि का वर्णन पूर्वानुरूप है । इन कूटों में से चुल्लहिमवान्, भरत, हैमवत तथा वैश्रवण कूटों में देव निवास करते हैं और उनके अतिरिक्त अन्य कूटों में देवियाँ निवास करती हैं । भगवन् ! वह पर्वत चुल्लहिमवावर्षधर क्यों कहलाता है ? गौतम ! महाहिमवान्वर्षधर पर्वत की अपेक्षा चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत आयाम–आदि में कम है । इसके अतिरिक्त वहाँ परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्ययुक्त चुल्लहिमवान् नामक देव निवास करता है, अथवा चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत–नाम शाश्वत है, जो न कभी नष्ट हुआ, न कभी नष्ट होगा ।

[१३१] भगवन् ! जम्बूद्वीप में हैमवत क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है, पलंग के आकार में अवस्थित है । वह दो ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श करता है । वह २१०–५/१९ योजन चौड़ा है । उसकी बाहा पूर्व-पश्चिम में ६७५५–३/१९ योजन लम्बी है । उत्तर दिशा में उसकी जीवा पूर्व तथा पश्चिम दोनों ओर लवणसमुद्र का स्पर्श करती है। उसकी लम्बाई कुछ कम ३७६७४–१६/१९ योजन है । दक्षिण में उसका धनुपृष्ठ परिधि की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपेक्षा से ६८७४–१०/१९ योजन है । भगवन् ! हैवमत क्षेत्र का आकार, भाव, प्रत्यवतार– कैसी है ? गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल एवं रमणीय है । उसका स्वरूप आदि सुषम-दुःषमा काल के सदृश है ।

[१३२] भगवन् ! हैमवतक्षेत्र में शब्दापाती नामक वृत्तवैताढ्यपर्वत कहाँ है ? गौतम ! रोहिता महानदी के पश्चिम में, रोहितांशा महानदी के पूर्व में, हैमवत क्षेत्र के बीचोंबीच है । वह १००० योजन ऊँचा है, २५० योजन भूमिगत है, सर्वत्र समतल है । उसकी आकृति पलंग जैसी है । लम्बाई-चौड़ाई १००० योजन है । परिधि कुछ अधिक ३१६२ योजन है। वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है । एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड द्वारा सब ओर से संपरिवृत है । शब्दापाती वृत्तवैताढ्य पर्वत पर बहुत समतल एवं रमणीय भूमिभाग है । उस भूमिभाग के बीचोंबीच एक विशाल, उत्तम प्रासाद है । वह ६२॥ योजन ऊँचा है, ३१। योजन लम्बा-चौड़ा है । भगवन् ! वह शब्दापाती वृत्तवैताढ्यपर्वत क्यों कहा जाता है ? गौतम ! उस पर छोटी-छोटी चौरस बावड़ियों यावत् अनेकविध जलाशयों में बहुत से उत्पल हैं, पद्म हैं, जिनकी प्रभा, शब्दापाती के सदृश है । इसके अतिरिक्त, पल्योपम आयुष्ययुक्त शब्दापाती देव वहाँ निवास करता है । उसके ४००० सामानिक देव हैं । उसकी राजधानी अन्य जम्बूद्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में है । यावत् यह नाम शाश्वत है ।

[१३३] भगवन् ! वह हैमवतक्षेत्र क्यों कहा जाता है ? गौतम ! वह महाहिमवान् पर्वत से दक्षिण में एवं चुल्ल हिमवान् पर्वत से उत्तर में, उनके अन्तराल में है । वहाँ जो यौगलिक मनुष्य निवास करते हैं, वे बैठने आदि के निमित्त नित्य स्वर्णमय शिलापट्टक आदि का उपयोग करते हैं । उन्हें नित्य स्वर्ण देकर वह यह प्रकाशित करता है कि वह स्वर्णमय विशिष्ट वैभवयुक्त है । वहाँ परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्ययुक्त हैमवत नामक देव निवास करता है । गौतम ! इस कारण वह हैमवतक्षेत्र कहा जाता है ।

[१३४] भगवन् ! जम्बूद्वीप में महाहिमवान् नामक वर्षधर पर्वत कहाँ है ? गौतम ! हरिवर्षक्षेत्र के दक्षिण में, हैमवतक्षेत्र के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् है । वह पर्वत पूर्व-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है । वह पलंग का-सा आकार लिये हुए है । वह दो ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श करता है । वह २०० योजन ऊँचा है, ५० योजन भूमिगत है । वह ४२१०–१०/१९ योजन चौड़ा है । उसकी बाहा पूर्व-पश्चिम ९२७६–९११/१९ योजन लम्बी है । उत्तर में उसकी जीवा पूर्व-पश्चिम लम्बी है । वह लवणसमुद्र का दो ओर से स्पर्श करती है। वह कुछ अधिक ५३९३१–६/१९ योजन लम्बी है । दक्षिण में उसका धनुपृष्ठ है, जिसकी परिधि ५७२९३–१०/१९ योजन है । वह रुचकसदृश आकार है, सर्वथा रत्नमय है, स्वच्छ है । अपने दोनों ओर वह दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो वनखण्डों से घिरा हुआ है । महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के ऊपर अत्यन्त समतल तथा रमणीय भूमिभाग है । वह विविध प्रकार के पंचरंगे रत्नों तथा तृणों से सुशोभित है । वहाँ देव-देवियाँ निवास करते हैं ।

[१३५] महाहिमवान्पर्वत के बीचोंबीच महापद्मद्रह है । वह २००० योजन लम्बा तथा १००० योजन चौड़ा है । वह दश योजन जमीन में गहरा है । वह स्वच्छ है, रजतमय तटयुक्त है । शेष वर्णन पद्मद्रह के सदृश है । उसके मध्य में जो पद्म है, वह दो योजन का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है । शेष वर्णन पद्मद्रह के पद्म के सदृश है । वहाँ एक पल्योपमस्थितिकी ही देवी निवास करती है । अथवा गौतम ! महापद्मद्रह नाम शाश्वत बतलाया गया है । उस महापद्मद्रह के दक्षिणी तोरण से रोहिता महानदी निकलती है । वह हिमवान् पर्वत पर दक्षिणाभिमुख होती हुई १६०५-५/१९ योजन बहती है । घड़े के मुँह से निकलते हुए जल की ज्यों जोर से शब्द करती हुई वेगपूर्वक मोतियों से निर्मित हार के-से आकार में वह प्रपात में गिरती है । तब उसका प्रवाह साधिक २०० योजन होता है । रोहिता महानदी जहाँ गिरती है, वहाँ एक विशाल जिह्विका है । उसकी लम्बाई एक योजन और विस्तार १२११ योजन है । मोटाई एक कोश है । आकार मगरमच्छ के खुले मुँह जैसा है । वह सर्वथा स्वर्णमय है, स्वच्छ है।

रोहिता महानदी जहाँ गिरती है, उस प्रपात का नाम रोहिताप्रपातकुण्ड है । वह १२० योजन लम्बा-चौड़ा है । परिधि कुछ कम ३८० योजन है । दश योजन गहरा है, स्वच्छ एवं सुकोमल है । उसका पेंदा हीरों से बना है । वह गोलाकार है । उसका तट समतल है । रोहिताप्रपातकुण्ड के बीचोंबीच रोहित द्वीप है । वह १६ योजन लम्बाचौड़ा है । परिधि कुछ अधिक ५० योजन है । जल से दो कोश ऊपर ऊँचा उठा हुआ है । वह संपूर्णतः हीरकमय है, उज्ज्वल है-है । चारों ओर एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वनखण्ड द्वारा घिरा हुआ है। रोहितद्वीप पर बहुत समतल तथा रमणीय भूमिभाग है । उस के ठीक बीच में एक विशाल भवन है । वह एक कोश लम्बा है । उस रोहितप्रपातकुण्ड के दक्षिणी तोरण से रोहिता महानदी निकलती है । वह हैमवत क्षेत्र की ओर आगे बढ़ती है । शब्दापाती वृत्तवैताढ्यपर्वत जब आधा योजन दूर रह जाता है, तब वह पूर्व की ओर मुड़ती है और हैमवत क्षेत्र को दो भागों में बाँटती है । उसमें २८००० नदियाँ मिलती हैं । वह उनसे आपूर्ण होकर नीचे जम्बूद्वीप की जगती को चीरती हुई-पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है । शेष वर्णन रोहितांशा महानदी जैसा है ।

उस महापद्मद्रह के उत्तरी तोरण से हरिकान्ता महानदी निकलती है । वह उत्तराभिमुख होती हुई १६०५-५/१९ योजन पर्वत पर बहती है । फिर घड़े के मुँह से निकलते हुए जल की ज्यों जोर से शब्द करती हुई, वेगपूर्वक मोतियों से बने हार के आकार में प्रपात में गिरती है । उस समय ऊपर पर्वत-शिखर से नीचे प्रपात तक उसका प्रवाह कुछ अधिक २०० योजन का होता है । हरिकान्ता महानदी जहाँ गिरती है, वहाँ एक विशाल जिह्विका-है । वह दो योजन लम्बी तथा पच्चीस योजन चौड़ी है । आधा योजन मोटी है । उसका आकार मगरमच्छ के खुले हुए मुख के आकार जैसा है । वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है । हरिकान्ता महानदी जिसमें गिरती है, उसका नाम हरिकान्ताप्रपातकुण्ड है । २४० योजन लम्बा-चौड़ा है। परिधि ७५९ योजन की है । वह निर्मल है । शेष पूर्ववत् ।

हरिकान्ताप्रपातकुण्ड के बीचों-बीच हरिकान्तद्वीप है । वह ३२ योजन लम्बा-चौड़ा है। उसकी परिधि १०१ योजन है, वह जल से ऊपर दो कोश ऊँचा उठा हुआ है । वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है । चारों ओर एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड द्वारा घिरा हुआ है । शेष वर्णन पूर्ववत् जानना । हरिकान्ताप्रपातकुण्ड के उत्तरी तोरण से हरिकान्ता महानदी निकलती है । हरिवर्षक्षेत्र में बहती है, विकटापाती वृत्तवैताढ्यपर्वत के एक योजन दूर रहने पर वह पश्चिम की ओर मुड़ती है । हरिवर्षक्षेत्र को दो भागों में बांटती है । उसमें ५६०००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नदियाँ मिलती हैं । वह उनसे आपूर्ण होकर नीचे की ओर जम्बूद्वीप की जगती को चीरती हुई पश्चिमी लवणसमुद्र में मिल जाती है । हरिकान्ता महानदी जिस स्थान से उद्गत होती है, वहाँ उसकी चौड़ाई पच्चीस योजन तथा गहराई आधा योजन है । तदनन्तर क्रमशः उसकी मात्रा–बढ़ती है । जब वह समुद्र में मिलती है, तब उसकी चौड़ाई २५० योजन तथा गहराई पाँच योजन होती है । वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं से तथा दो वनखण्डों से घिरी हुई है ।

[१३६] भगवन् ! महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के कितने कूट हैं ? गौतम ! आठ, जैसे–सिद्धायतनकूट, महाहिमवान्कूट, हैमवतकूट, रोहितकूट, ह्रीकूट, हरिकान्तकूट, हरिवर्षकूट तथा वैडूर्यकूट । शेष वर्णन चूल्लहिमवान् वत् जानना । यह पर्वत महाहिमवान् वर्षधर पर्वत क्यों कहा जाता है ? गौतम ! महाहिमवान् वर्षधरपर्वत, चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत की अपेक्षा लम्बाई आदि में दीर्घतर है । परम ऋद्धिशाली, पल्योपम आयुष्ययुक्त महाहिमवान् देव वहाँ निवास करता है, इसलिए वह महाहिमवान् वर्षधर पर्वत कहा जाता है ।

[१३७] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् हरिवर्ष नामक क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के है । वह दोनो किनारे से लवणसमुद्र का स्पर्श करता है । उसका विस्तार ८४२१–१/१९ योजन है । उसकी बाहा पूर्व-पश्चिम १३३६१–६॥/१९ लम्बी है । उत्तर में उसकी जीवा है, जो पूर्व-पश्चिम लम्बी है । वह दो ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श करती है । वह ७३९०१–१७॥/१९ योजन लम्बी है ।

भगवन् ! हरिवर्षक्षेत्र का आकार, भाव, प्रत्यवतार कैसा है ? गौतम ! उसमें अत्यन्त समतल तथा रमणीय भूमिभाग है । वह मणियों तथा तृणों से सुशोभित है । हरिवर्षक्षेत्र में जहाँ तहाँ छोटी-छोटी वापिकाएँ आदि हैं । अवसर्पिणी काल के सुषमा नामक द्वितीय आरक का वहाँ प्रभाव है– । शेष पूर्ववत् । भगवन् ! हरिवर्षक्षेत्र में विकटापाती नामक वृत्तवैताढ्य पर्वत कहाँ है ? गौतम ! हरि या हरिसलिला नामक महानदी के पश्चिम में, हरिकान्ता महानदी के पूर्व में, हरिवर्ष क्षेत्र के बीचोंबीच विकटापाती वृत्तवैताढ्य पर्वत है । उसकी चौड़ाई आदि शब्दापाती समान का है । इतना अन्तर है–वहाँ अरुण देव है । वहाँ विद्यमान कमल आदि के वर्ण, आभा, आकार आदि विकटापाती वृत्तवैताढ्य पर्वत के-से हैं । दक्षिण में उसकी राजधानी है । भगवन् ! हरिवर्षक्षेत्र नाम किस कारण पड़ा ? गौतम ! वहां मनुष्य रक्तवर्णयुक्त हैं, कतिपय शंख-खण्ड के सदृश श्वेत हैं । वहाँ परम ऋद्धिशाली, पल्योपमस्थितिक–हरिवर्ष देव निवास करता है । इस कारण वह हरिवर्ष कहलाता है ।

[१३८] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् निषध नामक वर्षधर पर्वत कहाँ है ? गौतम ! महाविदेहक्षेत्र के दक्षिण में, हरिवर्षक्षेत्र के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् है । वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है । वह दो ओर लवणसमुद्र का स्पर्श करता है । वह ४०० योजन ऊँचा है, ४०० कोस जमीन में गहरा है । वह १६८४२–२/१९ योजन चौड़ा है । उसकी बाहा–२०१६५–२॥/१९ योजन लम्बी है । उत्तर में उसकी जीवा ९४१५६–२/१९ योजन लम्बाई लिये है । दक्षिण की ओर स्थित उसके धनुपृष्ठ की परिधि १२४३४६–९/१९ योजन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है । उसका रुचक–जैसा आकार है । वह सम्पूर्णतः तपनीय स्वर्णमय है, स्वच्छ है। दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो वनखण्डों द्वारा सब ओर से घिरा है ।

निषध वर्षधर पर्वत के ऊपर एक बहुत समतल तथा सुन्दर भूमिभाग है, जहाँ देव-देवियाँ निवास करते हैं । उस भूमिभाग में ठीक बीच में एक तिगिंछद्रह द्रह है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बा है, उत्तर-दक्षिण चौड़ा है । वह ४००० योजन लम्बा २००० योजन चौड़ा तथा १० योजन जमीन में गहरा है । वह स्वच्छ, स्निग्ध तथा रजतमय तटयुक्त है । उस तिगिंछद्रह के चारों ओर तीन-तीन सीढ़ियाँ बनी हैं । शेष वर्णन पद्मद्रह के समान है । परम ऋद्धिशालिनी, एक पल्योपम के आयुष्य वाली धृति देवी वहाँ निवास करती है । उसमें विद्यमान कमल आदि के वर्ण, प्रभा आदि तिगिंच्छ-परिमल–के सदृश हैं । अतएव वह तिगिंछद्रह कहलाता है ।

[१३९] उस तिगिंछद्रह के दक्षिणी तोरण से हरिसलिला महानदी निकलती है । वह दक्षिण में उस पर्वत पर ७४२१–१/१९ योजन बहती है । घड़े के मुँह से निकलते पानी की ज्यों जोर से शब्द करती हुई वह वेगपूर्वक प्रपात में गिरती है । उस समय उसका प्रवाह कुछ अधिक ४०० योजन का होता है । शेष वर्णन हरिकान्ता महानदी समान है । नीचे जम्बूद्वीप की जगती को विदीर्ण कर वह आगे बढ़ती है । ५६००० नदियों से आपूर्ण वह महानदी पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है । शेष कथन हरिकान्ता महानदी समान है । तिगिंछद्रह के उत्तरी तोरण से शीतोदा महानदी निकलती है । वह उत्तर में उस पर्वत पर ७४२१–१/१९ योजन बहती है । घड़े के मुँह से निकलते जल की ज्यों जोर से शब्द करती हुई वेगपूर्वक वह प्रपात में गिरती है । तब उसका प्रवाह कुछ अधिक ४०० योजन होता है । शीतोदा महानदी जहाँ से गिरती है, वहाँ एक विशाल जिह्विका है । वह चार योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी तथा एक योजन मोटी है । उसका आकार मगरमच्छ के खुले हुए मुख के आकार जैसा है । वह संपूर्णतः वज्ररत्नमय है, स्वच्छ है ।

शीतोदा महानदी जिस कुण्ड में गिरती है, उसका नाम शीतोदाप्रपातकुण्ड है । उसकी लम्बाई-चौड़ाई ४८० योजन है । परिधि कुछ कम १५१८ योजन है । शेष पूर्ववत् । शीतोदाप्रपातकुण्ड के बीचोंबीच शीतोदाद्वीप है । उसकी लम्बाई-चौड़ाई ६४ योजन है, परिधि २०२ योजन है । वह जल के ऊपर दो कोस ऊँचा उठा है । वह सर्ववज्ररत्नमय है, स्वच्छ है । शेष वर्णन पूर्ववत् । उस शीतोदाप्रपातकुण्ड के उत्तरी तोरण से शीतोदा महानदी आगे निकलती है । देवकुरुक्षेत्र में आगे बढ़ती है । चित्र-विचित्र कूटों, पर्वतों, निषध, देवकुरु, सूर, सुलस एवं विद्युत्प्रभ नामक द्रहों को विभक्त करती हुई जाती है । उस बीच उसम ८४००० नदियाँ मिलती हैं । वह भद्रशाल वन की ओर आगे जाती है । जब मन्दर पर्वत दो योजन दूर रह जाता है, तब वह पश्चिम की ओर मुड़ती है । नीचे विद्युत्प्रभ नामक वक्षस्कार पर्वत को भेद कर मन्दर पर्वत के पश्चिम में–पश्चिम विदेहक्षेत्र को दो भागों में विभक्त करती है । उस बीच उसमें १६ चक्रवर्ती विजयों में से एक-एक से अड़ाईस-अड़ाईस हजार नदियाँ आ मिलती हैं । इस प्रकार ४४८००० ये तथा ८४००० पहले की कुल ५३२००० नदियों से आपूर्ण वह शीतोदा महानदी नीचे जम्बूद्वीप के पश्चिम दिग्वर्ती जयन्त द्वार की जगती को विदीर्ण कर पश्चिमी लवणसमुद्र में मिल जाती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शीतोदा महानदी अपने उद्गम-स्थान में पचास योजन चौड़ी है । एक योजन गहरी है । प्रमाण में क्रमशः बढ़ती-बढ़ती जब समुद्र में मिलती है, तब वह ५०० योजन चौड़ी हो जाती है । वह अपने दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो वनखण्डों द्वारा परिवृत है । भगवन् ! निषध वर्षधर पर्वत के कितने कूट हैं ? गौतम ! नौ, –सिद्धायतनकूट, निषधकूट, हरिवर्षकूट, पूर्वविदेहकूट, हरिकूट, धृतिकूट, शीतोदाकूट, अपरविदेहकूट तथा रुचककूट । शेष वर्णन चुल्लहिमवंत पर्वत समान है । भगवन् ! वह निषध वर्षधर पर्वत क्यों कहा जाता है ? गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत के बहुत से कूट निषध के–आकार के सदृश हैं । उस पर एक पल्योपम आयुष्ययुक्त निषध देव निवास करता है । इसलिए वह निषध वर्षधर पर्वत कहा जाता है ।

[१४०] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् महाविदेह क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् है । वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है, पलंग के आकार के समान संस्थित है । वह दो ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श करता है । उसकी चौड़ाई ३३६८४–४/१९ योजन है । उसकी बाहा पूर्व-पश्चिम ३३७६७–७/१९ योजन लम्बी है । उसकी जीवा पूर्व-पश्चिम लम्बी है । वह दो ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श करती है । एक लाख योजन लम्बी है । उसका धनुपृष्ठ उत्तर-दक्षिण दोनों ओर परिधि की दृष्टि से कुछ अधिक १५८११३–१६/१९ योजन है । महाविदेह क्षेत्र के चार भाग हैं–पूर्व विदेह, पश्चिम विदेह, देवकुरु तथा उत्तरकुरु ।

भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र का आकार, भाव, प्रत्यवतार किस प्रकार का है ? गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल एवं रमणीय है । वह नानाविध पंचरंगे रत्नों से, तृणों से सुशोभित है । महाविदेह क्षेत्र में मनुष्यों का आकार, भाव, प्रत्यवतार किस प्रकार का है ? गौतम ! वहाँ के मनुष्य छह प्रकार के संहनन, छह प्रकार के संस्थानवाले होते हैं । पाँच सौ धनुष ऊँचे होते हैं । आयुष्य जघन्य अन्तमुहूर्त्त तथा उत्कृष्ट एक पूर्व कोटि होता है । अपना आयुष्य पूर्ण कर उनमें से कतिपय नरकगामी होते हैं, यावत् कतिपय सिद्ध, होते हैं, समग्र दुःखों का अन्त करते हैं । वह महाविदेह क्षेत्र क्यों कहा जाता है ? गौतम ! भरतक्षेत्र, ऐरवतक्षेत्र, आदि की अपेक्षा महाविदेहक्षेत्र–अति विस्तीर्ण, विपुलतर, महत्तर तथा वृहत् प्रमाणयुक्त है । विशाल देहयुक्त मनुष्य उसमें निवास करते हैं । परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्यवाला महाविदेह नामक देव उसमें निवास करता है । इस कारण वह महाविदेह क्षेत्र कहा जाता है । इसके अतिरिक्त महाविदेह नाम शाश्वत है ।

[१४१] भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में गन्धमादन नामक वक्षस्कारपर्वत कहाँ है ? गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, मन्दरपर्वत–वायव्य कोण में, गन्धिलावती विजय के पूर्व में तथा उत्तरकुरु के पश्चिम में महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत् है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बा और पूर्व-पश्चिम चौड़ा है । उसकी लम्बाई ३०२०९–६/१९ योजन है । वह नीलवान् वर्षधर पर्वत के पास ४०० योजन ऊँचा है, ४०० कोश जमीन में गहरा है, ५०० योजन चौड़ा है । उसके अनन्तर क्रमशः उसकी ऊँचाई तथा गहराई बढ़ती जाती है, चौड़ाई घटती जाती है । यों वह मन्दर पर्वत के पास ५०० योजन ऊँचा, ५०० कोश गहरा हो जाता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसकी चौड़ाई अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी रह जाती है । उसका आकार हाथी दांत जैसा है। वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है । वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं द्वारा तथा दो वनखण्डों द्वारा घिरा हुआ है । गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत के ऊपर बहुत समतल, सुन्दर भूमिभाग है । उसकी चोटियों पर जहाँ तहाँ अनेक देव-देवियाँ निवास करते हैं ।

भगवन् ! गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत के कितने कूट हैं ? गौतम ! सात, –सिद्धायतनकूट, गन्धमादनकूट, गन्धिलावतीकूट, उत्तरकुरुकूट, स्फटिककूट, लोहिताक्षकूट तथा आनन्दकूट । गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत पर सिद्धायतन कूट कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत के उत्तर-पश्चिम में, गन्धमादन कूट के दक्षिण-पूर्व में है । शेष चुल्लहिमवान् के सिद्धायतन कूट समान जानना। तीन कूट विदिशाओं में–गन्धमादनकूट है । चौथा उत्तरकुरुकूट तीसरे गन्धिलावतीकूट के वायव्य कोण में तथा पाँचवें स्फटिककूट के दक्षिण में है । इनके सिवाय बाकी के तीन–उत्तर-दक्षिणश्रेणियों में अवस्थित हैं स्फटिककूट तथा लोहिताक्षकूट पर भोगंकरा एवं भोगवती नामक दो दिक्कुमारिकाएँ निवास करती हैं । बाकी के कूटों पर तत्सदृश–नाम वाले देव निवास करते हैं । उन कूटों पर तदधिष्ठातृ-देवों के उत्तम प्रासाद हैं, विदिशाओं में राजधानियाँ हैं ।

भगवन् ! गन्धमादन वक्षस्कारपर्वत नाम किस प्रकार पड़ा ? गौतम ! पीसे हुए, कूटे हुए, बिखेरे हुए कोष्ठ से निकलने वाली सुगन्ध के सदृश उत्तम, मनोज्ञ, सुगन्ध गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत से निकलती रहती है । वह सुगन्ध उससे इष्टतर यावत् मनोरम है । वहाँ गन्धमादन नामक परम ऋद्धिशाली देव निवास करता है । इसलिए वह गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत कहा जाता है । अथवा यह नाम शाश्वत है ।

[१४२] भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में उत्तरकुरु नामक क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत के उत्तर में, नीलवान् वर्षधरपर्वत के दक्षिण में, गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में तथा माल्यवान् वक्षस्कारपर्वत के पश्चिम में है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बा है, उत्तर-दक्षिण चौड़ा है, अर्ध चन्द्र के आकार में विद्यमान है । वह ११८४२–२/१९ योजन चौड़ा है । उत्तर में उसकी जीवा पूर्व-पश्चिम लम्बी है । वह दो तरफ से वक्षस्कार पर्वत का स्पर्श करती है। वह ५३००० योजन लम्बी है । दक्षिण में उसके धनुपृष्ठ की परिधि ६०४१८–१२/१९ योजन है । उत्तर कुरुक्षेत्र का आकार, भाव, प्रत्यवतार कैसा है ? गौतम ! वहाँ बहुत समतल, सुन्दर भूमिभाग है । शेष सुषमसुषमा के वर्णन के अनुरूप है–वहाँ के मनुष्य पद्मगन्ध, मृगगन्ध, अमम, कार्यक्षम, तेतली तथा शनैश्चारी–होते हैं ।

[१४३] भगवन् ! उत्तरकुरु में यमक पर्वत कहाँ हैं ? गौतम ! नीलवान् वर्षधरपर्वत के दक्षिण दिशा के अन्तिम कोने से ८३४–४/७ योजन के अन्तराल पर शीतोदा नदी के दोनों–पूर्वी, पश्चिमी तट पर यमक संज्ञक दो पर्वत हैं । वे १००० योजन ऊँचे, २५० योजन जमीन में गहरे, मूल में १००० योजन, मध्य में ७५० योजन तथा ऊपर ५०० योजन लम्बे-चौड़े हैं । उनकी परिधि मूल में कुछ अधिक ३१६२ योजन, मध्य में कुछ अधिक २३७२ योजन एवं ऊपर कुछ अधिक १५८१ योजन है । वे मूल में विस्तीर्ण–मध्य में संक्षिप्त और ऊपर–पतले हैं । वे यमकसंस्थानसंस्थित हैं–वे सर्वथा स्वर्णमय, स्वच्छ एवं सुकोमल हैं । उनमें से प्रत्येक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा वन-खण्ड द्वारा घिरा हुआ है । वे पद्मवरवेदिकाएँ दो-दो कोश ऊँची हैं । पाँच-पाँच सौ धनुष चौड़ी हैं । उन यमक पर्वतों पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत समतल एवं रमणीय भूमिभाग है । उस के बीचोंबीच दो उत्तम प्रासाद हैं । वे प्रासाद ६२।। योजन ऊँचे हैं । ३१। योजन लम्बे-चौड़े हैं । इन यमक देवों के १६००० आत्मरक्षक देव हैं । उनके १६००० उत्तम आसन–हैं ।

भगवन् ! उन्हें यमक पर्वत क्यों कहा जाता है ? गौतम ! उन पर्वतों पर जहाँ तहाँ बहुत सी छोटी-छोटी वावड़ियों, पुष्करिणियों आदि में जो अनेक उत्पल, कमल आदि खिलते हैं, उनका आकार एवं आभा यमक के सदृश हैं । वहाँ यमक नामक दो परम ऋद्धिशाली देव हैं । उनके ४००० सामानिक देव हैं, गौतम ! इस कारण वे यमक पर्वत कहलाते हैं । अथवा यह नाम शाश्वत है । यमक देवों की यमिका राजधानियाँ कहाँ हैं ? गौतम ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् मन्दर पर्वत के उत्तर में अन्य जम्बूद्वीप में १२००० योजन जाने पर हैं । वे १२००० योजन लम्बी-चौड़ी हैं । उनकी परिधि कुछ अधिक ३७९४८ योजन है । प्रत्येक राजधानी आकार–से परिवेष्टित है– । वे प्राकार ३७।। योजन ऊँचे हैं । वे मूल में १२।। योजन, मध्य में ६। योजन तथा ऊपर तीन योजन आधा कोश चौड़े हैं । वे मूल में विस्तीर्ण–बीच में संक्षिप्त तथा ऊपर पतले हैं । वे बाहर वृत्त तथा भीतर से चौकोर प्रतीत होते हैं । वे सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं । नाना प्रकार के पंचरंगे रत्नों से निर्मित कपिशीर्षकों द्वारा सुशोभित हैं । वे कंगूरे आधा कोश ऊँचे तथा पाँच सौ धनुष मोटे हैं, सर्वरत्नमय हैं, उज्ज्वल हैं ।

यमिका राजधानियों के प्रत्येक पार्श्व में १२५-१२५ द्वार हैं । वे द्वार ६२।। योजन ऊँचे हैं । ३१। योजन चौड़े हैं । प्रवेश-मार्ग भी उतने ही प्रमाण के हैं । यमिका राजधानियों की चारों दिशाओं में पाँच-पाँच सौ योजन के व्यवधान से अशोकवन, सप्तवर्णवन, चम्पकवन तथा आम्रवन हैं । ये वन-खण्ड कुछ अधिक १२००० योजन लम्बे तथा ५०० योजन चौड़े हैं । प्रत्येक वन-खण्ड प्राकार द्वारा परिवेष्टित है । यमिका राजधानियों में से प्रत्येक में बहुत समतल सुन्दर भूमिभाग हैं । उन के बीचोंबीच दो प्रासाद-पीठिकाएँ हैं । वे १२०० योजन लम्बी-चौड़ी हैं । उनकी परिधि ३७९५ योजन है । वे आधा कोश मोटी हैं। वे सम्पूर्णतः उत्तम जम्बूनद जातीय स्वर्णमय हैं, उज्ज्वल हैं । उनमें से प्रत्येक पद्मवरवेदिका तथा वन-खण्ड द्वारा परिवेष्टित है ।

उसके बीचोंबीच एक उत्तम प्रासाद है । वह ६२।। योजन ऊँचा है । ३१। योजन लम्बा-चौड़ा है । प्रासाद-पंक्तियों में से प्रथम पंक्ति के प्रासाद ३१। योजन ऊँचे हैं । वे कुछ अधिक १५।। योजन लम्बे-चौड़े हैं । द्वितीय पंक्ति के प्रासाद कुछ अधिक १५।। योजन ऊँचे हैं । वे कुछ अधिक ७। योजन लम्बे-चौड़े हैं । तृतीय पंक्ति के प्रासाद कुछ अधिक ७।। योजन ऊँचे हैं, कुछ अधिक ३।। योजन लम्बे-चौड़े हैं । मूल प्रासाद के ईशान कोण में यमक देवों की सुधर्मासभाएँ हैं । वे सभाएँ १२।। योजन लम्बी, ६। योजन चौड़ी तथा ९ योजन ऊँची हैं । सैकड़ों खंभों पर अवस्थित हैं । उन सुधर्मासभाओं की तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं । वे दो योजन ऊँचे हैं, एक योजन चौड़े हैं । उनके प्रवेश-मार्गों का प्रमाण–भी उतना ही है ।

उन द्वारों में से प्रत्येक के आगे मुख-मण्डप–हैं । वे १२।। योजन लम्बे, ६। योजन चौड़े तथा कुछ अधिक दो योजन ऊँचे हैं । प्रेक्षागृहों–का प्रमाण मुखमण्डपों के सदृश है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुख-मण्डपों में अवस्थित मणिपीठिकाएँ १ योजन लम्बी-चौड़ी तथा आधा योजन मोटी हैं । वे सर्वथा मणिमय हैं । प्रेक्षागृह-मण्डपों के आगे जो मणिपीठिकाएँ हैं, वे दो योजन लम्बी-चौड़ी तथा एक योजन मोटी हैं । वे सम्पूर्णतः मणिमय हैं । उनमें से प्रत्येक पर तीन-तीन स्तूप–हैं । वे स्तूप दो योजन ऊँचे हैं, दो योजन लम्बे-चौड़े हैं वे शंख की ज्यों श्वेत हैं । उन स्तूपों की चारों दिशाओं में चार मणिपीठिकाएँ हैं । वे मणिपीठिकाएँ एक योजन लम्बी-चौड़ी तथा आधा योजन मोटी हैं । वहाँ स्थित जिन-प्रतिमाओं का वर्णन पूर्वानुरूप है ।

वहाँ के चैत्यवृक्षों की मणिपीठिकाएँ दो योजन लम्बी-चौड़ी और एक योजन मोटी हैं। उन चैत्यवृक्षों के आगे तीन मणिपीठिकाएँ हैं । वे एक योजन लम्बी-चौड़ी तथा आधा योजन मोटी हैं । उनमें से प्रत्येक पर एक-एक महेन्द्रध्वजा है । वे ध्वजाएँ साढ़े सात योजन ऊँची हैं और आधा कोश जमीन में गहरी गड़ी हैं । वे वज्ररत्नमय हैं, वर्तुलाकार हैं । उन सुधर्मा सभाओं में ६००० पीठिकाएँ हैं । पूर्व में २००० पीठिकाएँ, पश्चिम में २००० पीठिकाएँ, दक्षिण में १००० पीठिकाएँ तथा उत्तर में १००० पीठिकाएँ हैं । उन सुधर्मासभाओं के भीतर बहुत समतल, सुन्दर भूमिभाग हैं । मणिपीठिकाएँ हैं । वे दो योजन लम्बी-चौड़ी हैं तथा एक योजन मोटी हैं । उन मणिपीठिकाओं के ऊपर महेन्द्रध्वज के समान प्रमाणयुक्त–माणवक चैत्य-स्तंभ हैं । उसमें ऊपर के छह कोश तथा नीचे के छह कोश वर्जित कर बीच में–साढ़े चार योजन के अन्तराल में जिनदंष्ट्राएँ निक्षिप्त हैं । शयनीयों के–ईशान कोण में दो छोटे महेन्द्रध्वज हैं । उनका प्रमाण महेन्द्रध्वज जितना है । वे मणिपीठिकारहित हैं ।

उनके पश्चिम में चोप्फाल नामक प्रहरण-कोश–है । वहाँ परिघरत्न–आदि शस्त्र रखे हुए हैं । उन सुधर्मा सभाओं के ऊपर आठ-आठ मांगलिक पदार्थ प्रस्थापित हैं । उनके ईशानकोण में दो सिद्धायतन हैं । जिनगृह सम्बन्धी वर्णन पूर्ववत् है, केवल इतना अन्तर है–इन जिन-गृहों में बीचों-बीच प्रत्येक में मणिपीठिका है । वे दो योजन लम्बी-चौड़ी तथा एक योजन मोटी हैं। उन मणिपीठिकाओं में से प्रत्येक पर जिनदेव के आसन हैं । वे आसन दो योजन लम्बे-चौड़े हैं, कुछ अधिक दो योजन ऊँचे हैं । वे सम्पूर्णतः रत्नमय हैं । धूपदान पर्यन्त जिन-प्रतिमा वर्णन पूर्वानुरूप है । अभिषेक सभा में तथा आलंकारिक सभा में बहुत से अलंकार-पात्र हैं, व्यवसाय-सभा में–पुस्तक-रत्न हैं । वहाँ नन्दा पुष्करिणियाँ हैं, पूजा-पीठ हैं । वे पीठ दो योजन लम्बे-चौड़े तथा एक योजन मोटे हैं ।

[१४४] उपपात, संकल्प, अभिषेक, त्रिभूषणा, व्यवसाय, अर्चनिका, सुधर्मासभा में गमन, परिवारणा, ऋद्धि–आदि यमक देवों का वर्णन-क्रम है ।

[१४५] नीलवान् पर्वत से यमक पर्वतों का जितना अन्तर है, उतना ही यमक-द्रहो का अन्य द्रहों से अन्तर है ।

[१४६] भगवन् ! उत्तरकुरु में नीलवान् द्रह कहाँ है ? गौतम ! यमक पर्वतों के दक्षिणी छोर से ८३४-४/७ योजन के अन्तराल पर शीता महानदी के ठीक बीच में नीलवान् नामक द्रह है । वह दक्षिण-उत्तर लम्बा एवं पूर्व-पश्चिम चौड़ा है । शेष वर्णन पद्मद्रह समान है । केवल इतना अन्तर है–नीलवान् द्रह दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो वनखण्डों द्वारा परिवेष्टित है । वहाँ नीलवान् नामक नागकुमार देव निवास करता है । नीलवान् द्रह के पूर्वी पश्चिमी पार्श्व में दश-दश योजन के अन्तराल पर बीस काञ्चनक पर्वत हैं । वे सौ योजन ऊँचे हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१४७] काञ्चनक पर्वतों का विस्तार मूल में सौ योजन, मध्य में ७५ योजन तथा ऊपर ५० योजन है ।

[१४८] उनकी परिधि मूल में ३१६ योजन, मध्य में २३७ योजन तथा ऊपर १५८ योजन है ।

[१४९] पहला नीलवान्, दूसरा उत्तरकुरु, तीसरा चन्द्र, चौथा ऐरावत तथा पाँचवां माल्यवान्–ये पाँच द्रह हैं ।

[१५०] अन्य द्रहों का प्रमाण, वर्णन नीलवान् द्रह के सदृश है । उनमें एक पल्योपम आयुष्यवाले देव निवास करते हैं । प्रथम नीलवान् द्रह में नागेन्द्र देव तथा अन्य चार में व्यन्तरेन्द्र देव निवास करते हैं ।

[१५१] भगवन् ! उत्तरकुरु में जम्बूपीठ कहाँ है ? गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, मन्दर पर्वत के उत्तर में माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में एवं शीता महानदी के पूर्वी तट पर है । वह ५०० योजन लम्बा-चौड़ा है । उसकी परिधि कुछ अधिक १५८१ योजन है । वह पीठ बीच में बारह योजन मोटा है । फिर क्रमशः मोटाई में कम होता हुआ आखिरी छोरों पर दो दो कोश मोटा है । वह सम्पूर्णतः जम्बूनदजातीय स्वर्णमय है, उज्ज्वल है । एक पद्मवरवेदिका से तथा एक वन-खण्ड से सब ओर से घिरा है । जम्बूपीठ की चारों दिशाओं में तीन-तीन सोपानपंक्तियां हैं । जम्बूपीठ के बीचोंबीच एक मणि-पीठिका है । वह आठ योजन लम्बी-चौड़ी है, चार योजन मोटी है । उस के ऊपर जम्बू सुदर्शना नामक वृक्ष है । वह आठ योजन ऊँचा तथा आधा योजन जमीन में गहरा है उसका स्कन्ध–दो योजन ऊँचा और आधा योजन मोटा है । शाखा ६ योजन ऊँची है । बीच में उसका आयाम-विस्तार आठ योजन है । यों सर्वांगतः उसका आयाम-विस्तार कुछ अधिक आठ योजन है ।

वह जम्बू वृक्ष के मूल वज्ररत्नमय हैं, विडिमा से ऊर्ध्व विनिर्गत–हुई शाखा रजत-घटित है । यावत् वह वृक्ष दर्शनीय है । जम्बू सुदर्शना की चारों दिशाओं में चार शाखाएँ हैं । उन शाखाओं के बीचोंबीच एक सिद्धायतन है । वह एक कोश लम्बा, आधा कोश चौड़ा तथा कुछ कम एक कोश ऊँचा है । वह सैकड़ों खंभों पर टिका है । उसके द्वार पांच सौ धनुष ऊँचे हैं । उपर्युक्त मणिपीठिका ५०० धनुष लम्बी-चौड़ी है, २५० धनुष मोटी है । उस मणिपीठिका पर देवच्छन्दक– है । वह पाँच सौ धनुष लम्बा-चौड़ा है, कुछ अधिक पाँच सौ धनुष ऊँचा है । आगे जिन-प्रतिमाओं तक का वर्णन पूर्ववत् है । उपर्युक्त शाखाओं में जो पूर्वी शाखा है, वहाँ एक भवन है । वह एक कोश लम्बा है । बाकी की दिशाओं में जो शाखाएँ हैं, वहाँ प्रासादावतंसक– हैं । वह जम्बू बारह पद्मवरवेदिकाओं द्वारा सब ओर से घिरा हुआ है । पुनः वह अन्य १०८ जम्बू वृक्षों से घिरा हुआ है, जो उससे आधे ऊँचे हैं । वे जम्बू वृक्ष छह पद्मवरवेदिकाओं से घिरे हुए हैं । जम्बू के ईशान कोण में, उत्तर में तथा वायव्य कोण में अनादृत नामक देव, जो अपने को वैभव, ऐश्वर्य तथा ऋद्धि में अनुपम, अप्रतिम मानता हुआ जम्बूद्वीप के अन्य देवों को आदर नहीं देता रहता है । ४००० सामानिक देवों के ४००० जम्बू वृक्ष हैं । पूर्व में चार अग्रमहिषियों–के चार जम्बू हैं ।

[१५२] आग्नेय कोण में, दक्षिण में तथा नैर्ऋत्य कोण में क्रमशः ८०००, १०,०००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और १२,००० जम्बू हैं ।

[१५३] पश्चिम में सात अनीकाधियों–के सात जम्बू हैं । चारों दिशाओं में १६,००० आत्मरक्षक देवों के १६००० जम्बू हैं ।

[१५४] जम्बू ३०० वनखण्डों द्वारा सब ओर से घिरा हुआ है । उसके पूर्व में पचास योजन पर अवस्थित प्रथम वनखण्ड में जाने पर एक भवन आता है, जो एक कोश लम्बा है । बाकी की दिशाओं में भी भवन हैं । जम्बू सुदर्शन के ईशान कोण में प्रथम वनखण्ड में पचास योजन की दूरी पर पद्म, पद्मप्रभा, कुमुदा एवं कुमुदप्रभा नामक चार पुष्करिणियाँ हैं। वे एक कोश लम्बी, आधा कोश चौड़ी तथा पाँच सौ धनुष भूमि में गहरी हैं । उनके बीच-बीच में उत्तम प्रासाद हैं । वे एक कोश लम्बे, आधा कोश चौड़े तथा कुछ कम एक कोश ऊँचे हैं । इसी प्रकार बाकी की विदिशाओं में–भी पुष्करिणियाँ हैं । उनके नाम–

[१५५] पद्मा, पद्मप्रभा, कुमुदा, कुमुदप्रभा, उत्पलगुल्मा, नलिना, उत्पला, उत्पलोज्ज्वला ।

[१५६] भृंगा, भृंगप्रभा, अंजना, कज्जलप्रभा, श्रीकान्ता, श्रीमहिता, श्रीचन्द्रा तथा श्रीनिलया ।

[१५७] जम्बू के पूर्व दिग्वर्ती भवन के उत्तर में, ईशानकोणस्थित उत्तम प्रासाद के दक्षिण में एक कूट है । वह आठ योजन ऊँचा एवं दो योजन जमीन में गहरा है । वह मूल में ८ योजन, बीच में ६ योजन तता ऊपर ४ योजन लम्बा-चौड़ा है ।

[१५८] उस शिखर की परिधि मूल में कुछ अधिक २५ योजन, मध्य में कुछ अधिक १८ योजन तथा ऊपर कुछ अधिक बारह योजन है ।

[१५९] वह मूल में चौड़ा, बीच में संकड़ा और ऊपर पतला है, सर्व स्वर्णमय है, उज्ज्वल है । इसी प्रकार अन्य शिखर हैं । जम्बू सुदर्शना के बारह नाम हैं–

[१६०] सुदर्शना, अमोघा, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, विदेहजम्बू, सौमनस्या, नियता, नित्यमण्डिता । तथा–

[१६१] सुभद्रा, विशाला, सुजाता एवं सुमना ।

[१६२] जम्बू सुदर्शना पर आठ-आठ मांगलिक द्रव्य प्रस्थापित हैं ।

भगवन् ! इसका नाम जम्बू सुदर्शना किस कारण पड़ा ? गौतम ! वहाँ जम्बूद्वीपाधिपति, परम ऋद्धिशाली अनादृत नामक देव अपने ४००० सामानिक देवों, यावत् १६००० आत्मरक्षक देवों का, जम्बूद्वीप का, जम्बू सुदर्शना का, अनादृता नामक राजधानी का, अन्य अनेक देव-देवियों का आधिपत्य करता हुआ निवास करता है । अथवा गौतम ! जम्बू सुदर्शना नाम ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय तथा अवस्थित है । अनादृत देव की अनादृता राजधानी कहाँ है ? गौतम ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् मन्दर पर्वत के उत्तर में है । उसके प्रमाण आदि यमिका राजधानी सदृश हैं ।

[१६३] भगवन् ! उत्तरकुरु–नाम किस कारण पड़ा ? गौतम ! उत्तरकुरु में परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्ययुक्त उत्तरकुरु नामक देव निवास करता है । अथवा उत्तरकुरु नाम शाश्वत है । महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत माल्यवान् नामक वक्षस्कारपर्वत कहाँ है ? गौतम ! मन्देरपर्वत के ईशानकोण में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, उत्तरकुरु के पूर्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में, कच्छ नामक चक्रवर्ति-विजय के पश्चिम में है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बा एवं पूर्व-पश्चिम चौड़ा है । गन्धमादन के समान प्रमाण, विस्तार है । इतना अन्तर है–वह सर्वथा वैडूर्य-रत्नमय है । गौतम ! यावत्–शिखर नौ हैं– यथा–

[१६४] सिद्धायतनकूट, माल्यवान्कूट, उत्तरकुरुकूट, कच्छकूट, सागरकूट, रजतकूट, शीताकूट, पूर्णभद्रकूट एवं हरिस्सह्कूट ।

[१६५] भगवन् ! माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत पर सिद्धायतनकूट कूट कहाँ है ? गौतम ! मन्दरपर्वत के–ईशान-कोण में, माल्यवान् कूट के नैर्ऋत्य कोण में है । वह पाँच सौ योजन ऊँचा है । भगवन् ! माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत पर सागरकूट कहाँ है ? गौतम ! कच्छकूट के–ईशानकोण में और रजतकूट के दक्षिण में है । वह पाँच सौ योजन ऊँचा है । वहाँ सुभोगा नामक देवी निवास करती है । ईशानकोण में उसकी राजधानी है । रजतकूट पर भोगमालिनी देवी है । उत्तर-पूर्व में उसकी राजधानी है । पिछले कूट से अगला कूट उत्तर में, अगले कूट से पिछला कूट दक्षिण में–इस क्रम से अवस्थित हैं, समान प्रमाणयुक्त हैं ।

[१६६] भगवन् ! माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत पर हरिस्सह्कूट कूट कहाँ है ? गौतम ! पूर्णभद्रकूट के उत्तर में, नीलवान् पर्वत के दक्षिण में है । वह एक हजार योजन ऊँचा है । लम्बाई, आदि सब यमक पर्वत के सदृश है । मन्दर पर्वत के उत्तर में असंख्य तिर्यक् द्वीप-समुद्रों को लांघकर अन्य जम्बूद्वीप के अन्तर्गत उत्तर के १२००० योजन जाने पर हरिस्सहकूट के अधिष्ठायक हरिस्सह देव की हरिस्सहा राजधानी है । वह ८४००० योजन लम्बी-चौड़ी है। उसकी परिधि २६५६३६ योजन है । वह ऋद्धिमय तथा द्युतिमय है । भगवन् ! माल्यवान् वक्षस्कारपर्वत–नाम क्यों है ? गौतम ! माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत पर जहाँ तहाँ बहुत से सरिकाओं, नवमालिकाओं, मगदन्तिकाओं–आदि पुष्पलताओं के गुल्म हैं । वे लताएँ पवन द्वारा प्रकम्पित अपनी टहनियों के अग्रभाग से मुक्त हुए पुष्पों द्वारा माल्यवान् वक्षस्कारपर्वत के अत्यन्त समतल एवं सुन्दर भूमिभाग को सुशोभित, सुसज्जित करती हैं । वहाँ एक पल्योपम आयुष्ययुक्त माल्यवान् देव है, अथवा उसका यह नाम नित्य है ।

[१६७] भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में कच्छ विजय कहाँ है ? गौतम ! शीता महानदी के उत्तर में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में, माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बी एवं पूर्व-पश्चिम चौड़ी है, पलंग के आकार में अवस्थित है । गंगा महानदी, सिन्धु महानदी तथा वैताढ्य पर्वत द्वारा वह छह भागों में विभक्त है । वह १६५९२–२/१९ योजन लम्बी तथा कुछ कम २२१३ योजन चौड़ी है । कच्छ विजय के बीचोंबीच वैताढ्य पर्वत है, जो कच्छ विजय को दक्षिणार्ध तथा उत्तरार्ध रूप में दो भागों में बाँटता है ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेहक्षेत्र में दक्षिणार्ध कच्छ कहाँ है ? गौतम ! वैताढ्य पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में, माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बा तथा पूर्व-पश्चिम चौड़ा है। ८२७१–१/१९ योजन लम्बा है, कुछ कम २२१३ योजन चौड़ा है, पलंग के आकार में विद्यमान है । दक्षिणार्ध कच्छविजय का आकार, भाव, प्रत्यवतार किस प्रकार का है ? गौतम ! वहाँ का भूमिभाग बहुत समतल एवं सुन्दर है । वह कृत्रिम मणियों तथा तृणों आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से सुशोभित है । दक्षिणार्ध कच्छविजय में मनुष्यों का आकार, भाव, प्रत्यवतार कैसा है ? गौतम ! वहाँ मनुष्य छह प्रकार के संहननों से युक्त होते हैं । शेष वर्णन पूर्ववत् ।

जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में वैताढ्य पर्वत कहाँ है ? गौतम ! दक्षिणार्ध कच्छविजय के उत्तर में, उत्तरार्ध कच्छविजय के दक्षिण में, चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में तथा माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में है, वह पूर्व-पश्चिम लम्बा है, उत्तर-दक्षिण चौड़ा है । दो ओर से वक्षस्कार-पर्वतों का स्पर्श करता है । वह भरत क्षेत्रवर्ती वैताढ्य पर्वत के सदृश है। अवक्रक्षेत्रवर्ती होने के कारण उसमें बाहाएँ, जीवा तथा धनुपृष्ठ–नहीं कहना । चौड़ाई, ऊँचाई एवं गहराई में भरतक्षेत्रवर्ती वैताढ्य पर्वत के समान है । इसकी दक्षिणी श्रेणी में ५५ तथा उत्तरी श्रेणी में ५५ विद्याधर–नगरावास हैं । आभियोग्य श्रेण्यन्तर्गत, शीता महानदी के उत्तर में जो श्रेणियां हैं, वे ईशानदेव–की हैं, बाकी की श्रेणियाँ शक्र–की हैं । वहाँ कूट–इस प्रकार हैं–

[१६८] सिद्धायतनकूट, दक्षिणकच्छार्धकूट, खण्डप्रपातगुहाकूट, माणिभद्रकूट, वैताढ्यकूट, पूर्णभद्रकूट, तमिस्रगुहाकूट, उत्तरार्धकच्छकूट, वैश्रवणकूट ।

[१६९] भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में उत्तरार्ध कच्छ कहाँ है ? गौतम ! वैताढ्य पर्वत के उत्तर में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में तथा चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में है । अवशेष वर्णन पूर्ववत् । जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में उत्तरार्धकच्छविजय में सिन्धुकुण्ड कहाँ है ? गौतम ! माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में, ऋषभकूट के पश्चिम में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिणी नितम्ब में–है । वह साठ योजन लम्बा-चौड़ा है । उस सिन्धुकुण्ड के दक्षिणी तोरण से सिन्धु महानदी निकलती है । उत्तरार्ध कच्छ विजय में बहती है । उसमें वहाँ ७००० नदियाँ मिलती हैं । वह उनसे आपूर्ण होकर नीचे तिमिस्रगुहा से होती हुई वैताढ्य पर्वत के विदीर्ण कर–दक्षिणार्ध कच्छ विजय में जाती है । वहाँ १४००० नदियों से युक्त होकर वह दक्षिण में शीता महानदी में मिल जाती है । सिन्दुमहानदी अपने उद्गम तथा संगम पर प्रवाह–में भरत क्षेत्रवर्ती सिन्धु महानदी के सदृश है ।

भगवन् ! उत्तरार्ध कच्छ विजय में ऋषभकूट पर्वत कहाँ है ? गौतम ! सिन्धुकूट के पूर्व में, गंगाकूट के पश्चिम में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिणी ढलान में है । वह आठ योजन ऊँचा है । उसकी राजधानी उत्तर में है । उत्तरार्ध कच्छविजय में गंगाकुण्ड कहाँ है ? गौतम ! चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में, ऋषभकूटपर्वत के पूर्व में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिणी ढलान में है । वह ६० योजन लम्बा-चौड़ा है । वह एक वनखण्ड द्वारा परिवेष्टित है–भगवन् ! वह कच्छविजय क्यों कहा जाता है ? गौतम ! कच्छविजय में वैताढ्य पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, गंगा महामदी के पश्चिम में, सिन्धु महानदी के पूर्व में दक्षिणार्ध कच्छ विजय के बीचोंबीच उसकी क्षेमा राजधानी है । क्षेमा राजधानी में कच्छ नामक षट्खण्ड-भोक्ता चक्रवर्ती राजा समुत्पन्न होता है–कच्छविजय में परम समृद्धिशाली, एक पल्योपम आयु-स्थितियुक्त कच्छ देव निवास करता है । अथवा उसका कच्छविजय नाम नित्य है,. शाश्वत है ।

[१७०] भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत कहाँ है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौतम ! शीता महानदी के उत्तर में, नीलवान् वर्षधरपर्वत के दक्षिण में, कच्छविजय के पूर्व में तथा सुकच्छविजय के दक्षिण में है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बा तथा पूर्व-पश्चिम चौड़ा है। १६५९२ योजन लम्बा है ५०० योजन चौड़ा है, नीलवान् वर्षधर पर्वत के पास ४०० योजन ऊँचा है तथा ४०० कोश जमीन में गहरा है । तत्पश्चात् ऊँचाई एवं गहराई में क्रमशः बढ़ता जाता है । शीता महानदी के पास वह ५०० योजन ऊँचा तथा ५०० कोश जमीन में गहरा हो जाता है । उसका आकार घोड़े के कन्धे जैसा है, वह सर्वरत्नमय है । वह अपने दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं से तथा दो वन-खण्डों से घिरा है । चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के ऊपर बहुत समतल एवं सुन्दर भूमिभाग है । वहाँ देव-देवियाँ आश्रय लेते हैं, विश्राम करते हैं ।

चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के कितने कूट हैं ? गौतम ! चार, –सिद्धायतनकूट, चित्रकूट, कच्छकूट तथा सुकच्छकूट । ये परस्पर उत्तर-दक्षिण में एक समान हैं । पहला सिद्धायतनकूट शीता महानदी के उत्तर में तथा चौथा सुकच्छकूट नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में है । चित्रकूट नामक देव वहाँ निवास करता है ।

[१७१] भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में सुकच्छ विजय कहाँ है ? गौतम ! शीता महानदी के उत्तर में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, ग्राहावती महानदी के पश्चिम में तथा चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बा है । क्षेमपुरा उसकी राजधानी है । वहाँ सुकच्छ नामक राजा समुत्पन्न होता है । बाकी कच्छ विजय की ज्यों हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में ग्राहावतीकुण्ड कहाँ है ? गौतम ! सुकच्छविजय के पूर्व में, महाकच्छ विजय के पश्चिम में नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिणी ढलान में है । उस के दक्षिणी तोरण-द्वार से ग्राहावती महानदी निकलती है । वह सुकच्छ महाकच्छ विजय को दो भागों में विभक्त है । उसमें २८००० नदियाँ मिलती हैं । वह उनसे आपूर्ण होकर दक्षिण में शीता महानदी से मिल जाती है । ग्राहावती महानदी उद्गम-स्थान पर, संगम-स्थान पर–सर्वत्र एक समान है । वह १२५ योजन चौड़ी है, अढ़ाई योजन जमीन में गहरी है । वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं द्वारा, दो वन-खण्डों द्वारा घिरी है ।

भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में महाकच्छ विजय कहाँ है ? गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में पद्मकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में, ग्राहावती महानदी के पूर्व में है । यहाँ महाकच्छ नामक देव रहता है । महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत् पद्मकूट वक्षस्कार पर्वत कहाँ है ? गौतम ! नीलवान् वक्षस्कार पर्वत के दक्षिण में शीता महानदी के उत्तर में, महाकच्छ विजय के पूर्व में, कच्छावती विजय के पश्चिम में है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बा है, पूर्व-पश्चिम चौड़ा है । पद्मकूट के चार कूट–हैं–सिद्धायतनकूट, पद्मकूट, महाकच्छकूट, कच्छावतीकूट । यहाँ परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्ययुक्त पद्मकूट देव निवास करता है । गौतम ! इस कारण यह पद्मकूट कहलाता है । भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में कच्छकावती विजय कहाँ है ? गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, द्रहावती महानदी के पश्चिम में, पद्मकूट के पूर्व में है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बा तथा पूर्व-पश्चिम चौड़ा है । यहाँ कच्छकावती नामक देव निवास करता है । महाविदेह क्षेत्र में द्रहावतीकुण्ड कहाँ है ? गौतम ! आवर्त विजय के पश्चिम में, कच्छकावती विजय के पूर्व में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिणी ढलान में है । उस द्रहावतीकुण्ड के दक्षिणी तोरण-द्वार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से द्रहावती महानदी निकलती है । वह कच्छावती तथा आवर्त विजय को दो भागों में बांटती है । दक्षिण में शीतोदा महानदी में मिल जाती है ।

भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में आवर्त्त विजय कहाँ है ? गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, नलिनकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में तथा द्रहावती महानदी के पूर्व में है । महाविदेह क्षेत्र में नलिनकूट वक्षस्कार पर्वत कहाँ है ? गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, मंगलावती विजय के पश्चिम में तथा आवर्त्त विजय के पूर्व में है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बा एवं पूर्व-पश्चिम चौड़ा है । भगवन् ! नलिनकूट के कितने कूट हैं ? गौतम ! चार, –सिद्धायतनकूट, नलिनकूट, आवर्तकूट तथा मंगलावर्तकूट । ये कूट पाँच सौ योजन ऊँचे हैं । राजधानियाँ उत्तर में हैं ।

भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में मंगलावर्त विजय कहाँ है ? गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, नलिनकूट के पूर्व में, पंकावती के पश्चिम में है। वहाँ मंगलावर्त नामक देव निवास करता है । इस कारण यह मंगलावर्त कहा जाता है । महाविदेह क्षेत्र में पंकावतीकुण्ड कुण्ड कहाँ है ? गौतम ! मंगलावर्त विजय के पूर्व में, पुष्कल विजय के पश्चिम में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिणी ढलान में है । उससे पंकावती नदी निकलती है, जो मंगलावर्त विजय तथा पुष्कलावर्त विजय को दो भागों में विभक्त करती है। महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावर्त विजय कहाँ है ? गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में शीता महानदी के उत्तर में, पंकावती के पूर्व में एकशैल वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में है । यहाँ एक पल्योपम आयुष्य युक्त पुष्कल देव निवास करता है ।

भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में एकशैल वक्षस्कार पर्वत कहाँ है ? गौतम ! पुष्कलावर्त-चक्रवर्ति-विजय के पूर्व में, पुष्कलावती-चक्रवर्ति-विजय के पश्चिम में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में है । उसके चार कूट हैं–सिद्धायतनकूट, एकशैलकूट, पुष्कलावर्तकूट तथा पुष्कलावतीकूट । ये पाँच सौ योजन ऊँचे हैं । उस पर एकशैल नामक देव निवास करता है । महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती चक्रवर्ति-विजय कहाँ है ? गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, उत्तरवर्ती शीतामुखवन के पश्चिम में, एकशैल वक्षस्कारपर्वत के पूर्व में है । उसमें पुष्कलावती नामक देव निवास करता है ।

भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में शीता महानदी के उत्तर में शीतामुख वन कहाँ है ? गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, पुष्कलावती चक्रवर्ति-विजय के पूर्व में है । वह १६५९२–२/१९ योजन लम्बा है । शीता महानदी के पास २९२२ योजन चौड़ा है । तत्पश्चात् विस्तार क्रमशः घटता जाता है । नीलवान् वर्षधर पर्वत के पास यह केवल १/१९ योजन चौड़ा रह जाता है । यह वन एक पद्मवरवेदिका तथा एक वन-खण्ड द्वारा संपरिवृत है । विभिन्न विजयों की राजधानियां इस प्रकार हैं–

[१७२] क्षेमा, क्षेमपुरा, अरिष्टा, अरिष्टपुरा, खड्गी, मंजूषा, औषधि तथा पुण्डरीकिणी।

[१७३] कच्छ आदि पूर्वोक्त विजयों में सोलह विद्याधर-श्रेणियां तथा उतनी ही–आभियोग्यश्रेणियां हैं । ये आभियोग्यश्रेणियां ईशानेन्द्र की हैं । सब विजयों की वक्तव्यता–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कच्छविजय समान है । उन विजयों के जो जो नाम हैं, उन्हीं नामों के चक्रवर्ती राजा वहाँ होते हैं । विजयों में जो सोलह वक्षस्कार पर्वत हैं, प्रत्येक वक्षस्कार पर्वत के चार चार कूट-हैं । उनमें बारह नदियां हैं, वे दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो वन-खण्डों द्वारा परिवेष्टित हैं ।

[१७४] भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में शीतामुखवन कहाँ है ? गौतम ! शीता महानदी के उत्तर-दिग्वर्ती शीतामुखवन के समान ही दक्षिण दिग्वर्ती शीतामुखवन समझ लेना । इतना अन्तर है-दक्षिण-दिग्वर्ती शीतामुखवन निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, शीता महानदी के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, वत्स विजय के पूर्व में है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बा है और सब उत्तर-दिग्वर्ती शीतामुख वन की ज्यों है । इतना अन्तर और है-वह घटते-घटते निषध वर्षधर पर्वत के पास १/१९ योजन चौड़ा रह जाता है । वहँ काले, नीले आदि पत्तों से युक्त होने से वैसी आभा लिये है । उससे बड़ी सुगन्ध फूटती है, देव-देवियां उस पर आश्रय लेते हैं, विश्राम करते हैं । वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं तथा वनखण्डों से परिवेष्टित है-

भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में वत्स विजय कहाँ है ? गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, शीता महानदी के दक्षिण में, दक्षिणी शीतामुख वन के पश्चिम में, त्रिकूट वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में उसकी सुसीमा राजधानी है । त्रिकूट वक्षस्कार पर्वत पर सुवत्स विजय है । उसकी कुण्डला राजधानी है । वहाँ तप्तजला नदी है । महावत्स विजय की अपराजिता राजधानी है । वैश्रवणकूट वक्षस्कार पर्वत पर वत्सावती विजय है । उसकी प्रभंकरा राजधानी है । वहाँ मत्तजला नदी है । रम्य विजय की अंकावती राजधानी है । अंजन वक्षस्कार पर्वत पर रम्यक विजय है । उसकी पद्मावती राजधानी है । वहाँ उन्मत्तजला महानदी है । रमणीय विजय की शुभा राजधानी है । मातंजन वक्षस्कार पर्वत पर मंगलावती विजय है । उसकी रत्नसंचया राजधानी है । शीता महानदी का जैसा उत्तरी पार्श्व है, वैसा ही दक्षिणी पार्श्व है । उत्तरी शीतामुख वन की ज्यों दक्षिणी शीतामुख वन है । वक्षस्कारकूट इस प्रकार हैं-त्रिकूट, वैश्रवणकूट, अंजनकूट, मातंजनकूट ।

[१७५] विजय इस प्रकार हैं-वत्स विजय, सुवत्स विजय, महावत्स विजय, वत्सकावती विजय, रम्यविजय, रम्यकविजय, रमणीय विजय तथा मंगलावती विजय ।

[१७६] राजधानियां इस प्रकार हैं-सुसीमा, कुण्डला, अपराजिता, प्रभंकरा, अंकावती, पद्मावती, शुभा तथा रत्नसंचया ।

[१७७] वत्स विजय के दक्षिण में निषध पर्वत है, उत्तर में शीता महानदी है, पूर्व में दक्षिणी शीतामुख वन है तथा पश्चिम में त्रिकूट वक्षस्कार पर्वत है । उसकी सुसीमा राजधानी है, जो विनीता के सदृश है । वत्स विजय के अनन्तर त्रिकूट पर्वत, तदनन्तर सुवत्स विजय, इसी क्रम से तप्तजला नदी, महावत्स विजय, वैश्रवण कूट वक्षस्कार पर्वत, वत्सावती विजय, मत्तजला नदी, रम्यविजय, अंजन वक्षस्कार पर्वत, रम्यक विजय, उन्मत्तजला नदी, रमणीय विजय, मातंजन वक्षस्कार पर्वत तथा मंगलावती विजय हैं ।

[१७८] भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में सौमनस वक्षस्कार पर्वत कहाँ है ? गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, अन्दर पर्वत के-आग्नेय कोण में, मंगलावती विजय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के पश्चिम में, देवकुरु के पूर्व में है । वह सर्वथा रजतमय है, उज्ज्वल है, सुन्दर है । वह निषध वर्षधर पर्वत के पास ४०० योजन ऊँचा है । ४०० कोश जमीन में गहरा है । गौतम ! सौमनस वक्षस्कार पर्वत पर बहुत से सौम्य--स्वभावयुक्त, कायकुचेष्टारहित, सुमनस्क, मनःकालुष्य रहित देव-देवियां आश्रय लेते हैं, विश्राम करते हैं । तदधिष्ठायक परम ऋद्धिशाली सौमनस नामक देव वहाँ निवास करता है । अथवा गौतम ! उसका यह नाम नित्य है । सौमनस वक्षस्कार पर्वत के कितने कूट हैं ? गौतम ! सात हैं–

[१७९] सिद्धायतनकूट, सौमनसकूट, मंगलावतीकूट, देवकुरुकूट, विमलकूट, कंचनकूट तथा वशिष्ठकूट ।

[१८०] ये सब कूट ५०० योजन ऊँचे हैं । इनका वर्णन गन्धमादन के कूटों के सदृश है । इतना अन्तर है–विमलकूट तथा कंचनकूट पर सुवत्सा एवं वत्समित्रा नामक देवियाँ रहती हैं । बाकी के कूटों पर, कूटों के जो-जो नाम हैं, उन-उन नामों के देव निवास करते हैं । मेरु के दक्षिण में उनकी राजधानियां हैं । भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में देवकुर कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत के दक्षिण में, निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में, सौमनस वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में है । वह ११८४२–२/१९ योजन विस्तीर्ण है । शेष वर्णन उत्तरकुरु सदृश है । वहाँ पद्मगन्ध, मृगगन्ध, अमम, सह, तेतली तथा शनैश्चारी, छह प्रकार के मनुष्य होते हैं, जिनकी वंश-परंपरा–उत्तरोत्तर चलती है ।

[१८१] भगवन् ! देवकुरु में चित्र-विचित्र कूट नामक दो पर्वत कहाँ हैं ? गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत के उत्तरी चरमान्त से–८३४–४/७ योजन की दूरी पर शीतोदा महानदी के पूर्व-पश्चिम के अन्तराल में उसके दोनों तटों पर हैं । उनके अधिष्ठातृ-देवों की राजधानियां मेरु के दक्षिण में हैं ।

[१८२] भगवन् ! देवकुरु में निषध द्रह कहाँ है ? गौतम ! चित्र-विचित्र कूट नामक पर्वतों के उत्तरी चरमान्त से ८३४–४/७ योजन की दूरी पर शीतोदा महानदी के ठीक मध्य भाग में है । नीलवान्, उत्तरकुरु, चन्द्र, ऐरावत तथा माल्यवान्–इन द्रहों की जो वक्तव्यता है, वही निषध, देवकुरु, सूर, सुलस तथा विद्युत्प्रभ नामक द्रहों की समझना । उनके अधिष्ठातृ-देवों की राजधानियां मेरु के दक्षिण में हैं ।

[१८३] भगवन् ! देवकुरु में कूटशाल्मलीपीठ–कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत के–नैर्ऋत्य कोण में, निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में, शीतोदा महानदी के पश्चिम में देवकुरु के पश्चिमार्ध के ठीक बीच में है । जम्बू सुदर्शना समान वर्णन इनका समझना । गरुड इसका अधिष्ठातृ-देव है । राजधानी मेरु के दक्षिण में है । यहाँ एक पल्योपमस्थितिक देव निवास करता है । अथवा देवगुरु नाम शाश्वत है ।

[१८४] भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत कहाँ है ? गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, मन्दर पर्वत के दक्षिण-पश्चिम में, देवकुरु के पश्चिम में तथा पद्म विजय के पूर्व में है । शेष वर्णन माल्यवान् पर्वत जैसा है । इतनी विशेषता है–वह सर्वथा तपनीय-स्वर्णमय है । विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत के कितने कूट बतलाये गये हैं ? गौतम ! नौ हैं–

[१८५] सिद्धायतनकूट, विद्युत्प्रभकूट, देवकुरुकूट, पक्ष्मकूट, कनककूट, सौवत्सिककूट,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शीतोदाकूट, शतज्वलकूट, हरिकूट ।

[१८६] हरिकूट के अतिरिक्त सभी कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊँचे हैं । हरिकूट हरिस्सहकूट सदृश है । दक्षिण में इसकी राजधानी है । कनककूट तथा सौवत्तिककूट में वारिषेणा एवं बलाहका नामक दो दिक्कुमारिकाएँ निवास करती हैं । बाकी के कूटों में कूट-सदृश नामयुक्त देव निवास करते हैं । उनकी राजधानियां मेरु के दक्षिण में हैं । वह विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत क्यों कहा जाता है । गौतम ! विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत विद्युत की ज्यों–सब ओर से अवभासित होता है, उद्योतित होता है, प्रभासित होता है–बिजली की ज्यों चमकता है । वहाँ पल्योपमपरिमित आयुष्य-स्थिति युक्त विद्युत्प्रभ देव निवास करता है, अथवा उसका यह नाम नित्य–है ।

[१८७] पक्ष्म विजय है, अश्वपुरी राजधानी है, अंकावती वक्षस्कार पर्वत है । सुपक्ष्म विजय है, सिंहपुरी राजधानी है, क्षीरोदा महानदी है । महापक्ष्म विजय है, महापुरी राजधानी है, पक्ष्मावती वक्षस्कार पर्वत है । पक्ष्मकावती विजय है, विजयपुरी राजधानी है, शीतस्रोता महानदी है । शंख विजय है, अपराजिता राजधानी है, आशीविष वक्षस्कार पर्वत है । कुमुद विजय है, अरजा राजधानी है, अन्तर्वाहिनी महानदी है । नलिन विजय है, अशोका राजधानी है, सुखावह वक्षस्कार पर्वत है । नलिनावती विजय है, वीताशोका राजधानी है । दाक्षिणात्य शीतोदामुख वनखण्ड के समान उत्तरी शीतोदामुख वनखण्ड है । उत्तरी शीतोदामुख वनखण्ड में वप्र विजय है, विजया राजधानी है, चन्द्र वक्षस्कार पर्वत है । सुवप्र विजय है, वैजयन्ती राजधानी है, ऊर्मिमालिनी नदी है । महावप्र विजय है, जयन्ती राजधानी है, सूर वक्षस्कार पर्वत है । वप्रावती विजय है, अपराजिता राजधानी है, फेनमालिनी नदी है । वल्गु विजय है, चक्रपुरी राजधानी है, नाग वक्षस्कार पर्वत है । सुवल्गु विजय है, खड्गपुरी राजधानी है, गम्भीरमालिनी अन्तरनदी है । गन्धिल विजय है, अवध्या राजधानी है, देव वक्षस्कार पर्वत है। गन्धिलावती विजय है, अयोध्या राजधानी है । इसी प्रकार मन्दर पर्वत के दक्षिणी पार्श्व का–कथन कर लेना । वहाँ शीतोदा नदी के दक्षिणी तट पर ये विजय हैं–

[१८८] पक्ष्म, सुपक्ष्म, महापक्ष्म, पक्ष्मकावती, शंख, कुमुद, नलिन तथा नलिनावती।

[१८९] राजधानियां इस प्रकार हैं–अश्वपुरी, सिंहपुरी, महापुरी, विजयपुरी, अपराजिता, अरजा, अशोका तथा वीतशोका ।

[१९०] वक्षस्कार पर्वत इस प्रकार हैं–अंक, पक्ष्म, आशीविष तथा सुखावह । इस क्रमानुरूप कूट सदृश नामयुक्त दो-दो विजय, दिशा-विदिशाएँ, शीतोदा का दक्षिणवर्ती मुखवन तथा उत्तरवर्ती मुखवन–ये सब समझ लेना । शीतोदा के उत्तरी पार्श्व में ये विजय हैं–

[१९१] वप्र, सुवप्र, महावप्र, वप्रावती, वल्गु, सुवल्गु, गन्धिल तथा गन्धिलावती ।

[१९२] राजधानियां इस प्रकार हैं–विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता, चक्रपुरी, खड्गपुरी, अवध्या तथा अयोघ्या ।

[१९३] वक्षस्कार पर्वत इस प्रकार हैं–चन्द्र पर्वत, सूर पर्वत, नाग पर्वत तथा देव पर्वत । क्षीरोदा तथा शीतस्रोता नामक नदियां शीतोदा महानदी के दक्षिणी तट पर अन्तरवाहिनी नदियां हैं । ऊर्मिमालिनी, फेनमालिनी तथा गम्भीरमालिनी शीतोदा महानदी के उत्तर दिग्वर्ती विजयों की अन्तरवाहिनी नदियां हैं । इस क्रम में दो-दो कूट–अपने-अपने विजय के अनुरूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथनीय हैं । वे अवस्थित हैं ।

[१९४] भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में मन्दर पर्वत कहाँ है । गौतम ! उत्तरकुरु के दक्षिण में, देवकुरु के उत्तर में, पूर्व विदेह के पश्चिम में और पश्चिम विदेह के पूर्व में है । वह ९९००० योजन ऊँचा है, १००० जमीन में गहरा है । वह मूल में १००९० –१०/१९ योजन तथा भूमितल पर १०००० योजन चौड़ा है । उसके बाद वह चौड़ाई की मात्रा में क्रमशः घटता-घटता ऊपर के तल पर १००० योजन चौड़ा रह जाता है । उसकी परिधि मूल में ३१९१०–३/१९ योजन, भूमितल पर ३१६२३ योजन तथा ऊपरी तल पर कुछ अधिक ३१६२ योजन है । वह मूल में विस्तीर्ण–मध्य में संक्षिप्त– तथा ऊपर पतला है । उसका आकार गाय की पूँछ के आकार जैसा है । वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है, सुकोमल है । वह एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वनखण्ड द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ है ।

भगवन् ! मन्दर पर्वत पर कितने वन हैं ? गौतम ! चार, –भद्रशालवन, नन्दनवन, सौमनसवन तथा पंडकवन । भद्रशालवन कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत पर उसके भूमिभाग पर है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बा एवं उत्तर-दक्षिण चौड़ा है । वह सौमनस, विद्युत्प्रभ, गन्धमादन तथा माल्यवान् नामक वक्षस्कार पर्वतों द्वारा शीता तथा शीतोदा नामक महानदियों द्वारा आठ भागों में विभक्त है । वह मन्दर पर्वत के पूर्व-पश्चिम बाईस-बाईस हजार योजन लम्बा है, उत्तर-दक्षिण अढ़ाई सौ-अढ़ाई सौ योजन चौड़ा है । वह एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वन–खण्ड द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ है । वह काले, नीले पत्तों से आच्छन्न है, वैसी आभा से युक्त है । देव-देवियां वहाँ आश्रय लेते हैं, विश्राम लेते हैं–मन्दर पर्वत के पूर्व में भद्रशालवन में पचास योजन जाने पर एक विशाल सिद्धायतन आता है । वह पचास योजन लम्बा है, पच्चीस योजन चौड़ा है तथा छत्तीस योजन ऊँचा है । वह सैकड़ों खंभों पर टिका है । उस सिद्धायतन की तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं । वे द्वार आठ योजन ऊँचे तथा चार योजन चौड़े हैं । उनके प्रवेश मार्ग भी उतने ही हैं । उनके शिखर श्वेत हैं, उत्तम स्वर्ण निर्मित हैं । उसके बीचोंबीच एक विशाल मणिपीठिका है । वह आठ योजन लम्बी-चौड़ी हैं, चार योजन मोटी है, सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है, उज्ज्वल है । उस मणिपीठिका के ऊपर देवच्छन्दक–है । वह आठ योजन लम्बा-चौड़ा है । वह कुछ अधिक आठ योजन ऊँचा है । जिनप्रतिमा, देवच्छन्दक, धूपदान आदि का वर्णन पूर्ववत् है । मन्दर पर्वत के दक्षिण में भद्रशाल वन में पचास योजन जाने पर वहाँ उस की चारों दिशाओं में चार सिद्धायतन हैं ।

मन्दर पर्वत के–ईशान कोण में भद्रशाल वन में पचास योजन जाने पर पद्मा, पद्मप्रभा, कुमुदा तथा कुमुदप्रभा नामक चार पुष्करिणियां आती हैं । वे पचास योजन लम्बी, पच्चीस योजन चौड़ी तथा दश योजन जमीन में गहरी हैं । उन पुष्करिणियों के बीच में देवराज ईशानेन्द्र का उत्तम प्रासाद है । वह पाँच सौ योजन ऊँचा और अढ़ाई सौ योजन चौड़ा है। मन्दर पर्वत के–आग्नेय कोण में उत्पलगुल्मा, नलिना, उत्पला तथा उत्पलोज्ज्वला नामक पुष्करिणियां हैं । उनके बीच में उत्तम प्रासाद हैं । देवराज शक्रेन्द्र वहां सपरिवार रहता है । मन्दर पर्वत के–नैर्ऋत्य कोण में भृंगा, भृंगनिभा, अंजना एवं अंजनप्रभा नामक पुष्करिणियां हैं । शक्रेन्द्र वहाँ का अधिष्ठातृ देव है । मन्दर पर्वत के–ईशान कोण में श्रीकान्ता, श्रीचन्द्रा, श्रीमहिता तथा श्रीनिलया नामक पुष्करिणियां हैं । बीच में उत्तम प्रासाद हैं । वहाँ ईशानेन्द्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देव निवास करता है । भगवन् ! मन्दर पर्वत पर भद्रशाल वन में दिशाहस्तिकूट–कितने हैं ? गौतम ! आठ–

[१९५] पद्मोत्तर, नीलवान्, सुहस्ती, अंजनगिरि, कुमुद, पलाश, अवतंस तथा रोचनागिरि।

[१९६] भगवन् ! पद्मोत्तर नामक दिग्हस्तिकूट कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत के–ईशान कोण में तथा पूर्व दिग्गत शीता महानदी के उत्तर में है । वह ५०० योजन ऊँचा तथा ५०० कोश जमीन में गहरा है । उसकी चौड़ाई तथा परिधि चुल्लहिमवान् पर्वत के समान है। वहाँ पद्मोत्तर देव निवास करता है । उसकी राजधानी–ईशान कोण में है । नीलवान् नामक दिग्हस्तिकूट मन्दर पर्वत के–आग्नेय कोण में तथा पूर्व दिशागत शीता महानदी के दक्षिण में है । वहाँ नीलवान् देव निवास करता है । उसकी राजधानी–आग्नेय कोण में है । सुहस्ती नामक दिग्हस्तिकूट मन्दर पर्वत के–आग्नेय कोण में तथा दक्षिण-दिशागत शीतोदा महानदी के पूर्व में है । वहाँ सुहस्ती देव निवास करता है । उसकी राजधानी–आग्नेय कोण में है । अंजनगिरि नामक दिग्हस्तिकूट मन्दर पर्वत के–नैर्ऋत्य कोण में तथा दक्षिण-दिशागत शीतोदा महानदी के पश्चिम में है । अंजनगिरि नामक अधिष्ठायक देव है । राजधानी–नैर्ऋत्य कोण में है । कुमुद नामक विदिशागत हस्तिकूट मन्दर पर्वत के–नैर्ऋत्य कोण में तथा पश्चिम-दिग्वर्ती शीतोदा महानदी के दक्षिण में है । वहाँ कुमुद देव निवास करता है । राजधानी–नैर्ऋत्य कोण में है । पलाश नामक विदिग्हस्तिकूट मन्दर पर्वत के–वायव्य कोण में एवं पश्चिम दिग्वर्ती शीतोदा महानदी के उत्तर में है । पलाश देव निवास करता है । राजधानी–वायव्य कोण में है । अवतंस नामक विदिग्हस्तिकूट मन्दर पर्वत के–वायव्य कोण तथा उत्तर दिग्गत शीता महानदी के पश्चिम में है । अवतंस देव निवास करता है । राजधानी–वायव्य कोण में है । रोचनागिरि नामक दिग्हस्तिकूट मन्दर पर्वत के–ईशान कोण में और उत्तर दिग्गत शीता महानदी के पूर्व में है । रोचनागिरि देव निवास करता है । राजधानी–ईशान कोण में है ।

[१९७] भगवन् ! नन्दनवन कहाँ है ? गौतम ! भद्रशालवन के बहुत समतल एवं रमणीय भूमिभाग से पाँच सौ योजन ऊपर जाने पर है । चक्रवालविष्कम्भ–के सब ओर से समान, विस्तार की अपेक्षा से वह ५०० योजन है, गौल है । उसका आकार वलय–के सदृश है, सघन नहीं है, मध्य में वलय की ज्यों शुषिर है है । वह मन्दर पर्वतों को चारों ओर से परिवेष्टित किये हुए है । नन्दनवन के बाहर मेरु पर्वत का विस्तार ९९५४–६/१९ योजन है। बाहर उसकी परिधि कुछ अधिक ३१४७९ योजन है । भीतर उसका विस्तार ८९४४–६/१९ योजन है । उसकी परिधि २८३१६–८/१९ योजन है । वह एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वनखण्ड द्वारा चारों ओर से परिवेष्टित है । वहाँ देव-देवियां आश्रय लेते हैं–मन्दर पर्वत के रूप में एक विशाल सिद्धायतन है । ऐसे चारों दिशाओं में चार सिद्धायतन हैं । विदिशाओं में–पुष्करिणियां हैं । नन्दनवन में कितने कूट हैं ? गौतम ! नौ, नन्दनवनकूट, मन्दरकूट, निषधकूट, हिमवत्कूट, रजतकूट, रुचककूट, सागरचित्रकूट, वज्रकूट तथा बलकूट।

भगवन् ! नन्दनवनकूट कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत पर पूर्व दिशावर्ती सिद्धायतन के उत्तर में, –ईशान कोणवर्ती उत्तम प्रासाद के दक्षिण में है । सभी कूट ५०० योजन ऊँचे हैं । नन्दनवनकूट पर मेघंकरा देवी निवास करती है । उसकी राजधानी–ईशानकोण में है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन दिशाओं के अन्तर्गत पूर्व दिशावर्ती भवन के दक्षिण में,–आग्नेय कोणवर्ती उत्तम प्रासाद के उत्तर में मन्दरकूट पर पूर्व में मेघवती राजधानी है । दक्षिण दिशावर्ती भवन के पूर्व में, –आग्नेयकोणवर्ती उत्तम प्रासाद के पश्चिम में निषधकूट पर सुमेघा देवी है । दक्षिण में उसकी राजधानी है । दक्षिण दिशावर्ती भवन के पश्चिम में, –नैर्ऋत्यकोणवर्ती उत्तम प्रासाद के पूर्व में हैमवतकूट पर हेममालिनी देवी है । उसकी राजधानी दक्षिण में है । पश्चिम दिशावर्ती भवन के दक्षिण में, –नैर्ऋत्यकोणवर्ती उत्तम प्रासाद के उत्तर में रजतकूट पर सुवत्सा देवी है । पश्चिम में उसकी राजधानी है । पश्चिमदिग्वर्ती भवन के उत्तर में, वायव्यकोणवर्ती उत्तम प्रासाद के दक्षिण में रुचक कूट पर वत्समित्रा देवी निवास करती है । पश्चिम में उसकी राजधानी है । उत्तरदिग्वर्ती भवन के पश्चिम में, वायव्यकोणवर्ती उत्तम प्रासाद के पूर्व में सागरचित्र कूट पर वज्रसेना देवी निवास करती है । उत्तर में उसकी राजधानी है । उत्तरदिग्वर्ती भवन के पूर्व में, –ईशानकोणवर्ती उत्तम प्रासाद के पश्चिम में वज्रकूट पर बलाहका देवी निवास करती है । उसकी राजधानी उत्तर में है । बलकूट कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत के ईशानकोण में नन्दनवन के अन्तर्गत है । उसका प्रमाण, विस्तार हरिस्सहकूट सदृश है । इतना अन्तर है–उसका अधिष्ठायक बल देव है । उसकी राजधानी–ईशान कोण में है ।

[१९८] भगवन् ! सौमनसवन कहाँ है ? गौतम ! नन्दनवन के बहुत समतल एवं रमणीय भूमिभाग से ६२५०० योजन ऊपर जाने पर है । वह चक्रवाल-विष्कम्भ से पाँच सौ योजन विस्तीर्ण है, गोल है, वलय के आकार का है । वह मंन्दर पर्वत को चारों ओर से परिवेष्टित किए हुए है । वह पर्वत से बाहर ४२७२–८/१९ योजन विस्तीर्ण है । बाहर उसकी परिधि १३५११–६/१९ योजन है । भीतरी भाग में ३२७२–८/१९ योजन विस्तीर्ण है । पर्वत के भीतरी भाग से संलग्न उसकी परिधि १०३४९–३/१९ योजन है । वह एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ है । वह वन काले, नीले आदि पत्तों से, लताओं से आपूर्ण है । उनकी कृष्ण, नील आभा द्योतित है । वहाँ देव-देवियां आश्रय लेते हैं । उसमें आगे शक्रेन्द्र तथा ईशानेन्द्र के उत्तम प्रासाद हैं ।

[१९९] भगवन् ! पण्डकवन कहाँ है ? गौतम ! सोमनसवन के बहुत समतल तथा रमणीय भूमिभाग से ३६००० योजन ऊपर जाने पर मन्दर पर्वत के शिखर पर है । चक्रवाल विष्कम्भ से वह ४९४ योजन विस्तीर्ण है, गोल है, वलय के आकार जैसा उसका आकार है । वह मन्दर पर्वत की चूलिका को चारों ओर से परिवेष्टित कर स्थित है । उसकी परिधि कुछ अधिक ३१६२ योजन है । वह एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वनखण्ड द्वारा घिरा है । वह काले, नीले आदि पत्तों से युक्त है । देव-देवियां वहाँ आश्रय लेते हैं । पण्डकवन के बीचों-बीच मन्दर चूलिका है । वह चालीस योजन ऊँची है । मूल में बारह योजन, मध्य में आठ योजन तथा ऊपर चार योजन चौड़ी है । मूल में उसकी परिधि कुछ अधिक ३७ योजन, बीच में कुछ अधिक २५ योजन तथा ऊपर कुछ अधिक १२ योजन है । वह मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त तथा ऊपर पतली है । उसका आकार गाय के पूंछ के सदृश है । वह सर्वथा वैडूर्य रतनमय है–वह एक पद्मवरवेदिका द्वारा चारों ओर से संपरिवृत है ।

ऊपर बहुत समतल एवं सुन्दर भूमिभाग है । उसके बीच में सिद्धायतन है । वह एक कोश लम्बा, आधा कोश चौड़ा, कुछ कम एक कोश ऊँचा है, सैकड़ों खम्भों पर टिका है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस सिद्धायतन की तीन दिशाओं में तीन दरवाजे हैं । वे दरवाजे आठ योजन ऊँचे हैं । वे चार योजन चौड़े हैं । उनके प्रवेश-मार्ग भी उतने ही हैं । उस (सिद्धायतन) के सफेद, उत्तम स्वर्णमय शिखर हैं । उसके बीचों बीच एक विशाल मणिपीठिका है । वह आठ योजन लम्बी-चौड़ी है, चार योजन मोटी है, सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है । उस मणिपीठिका के ऊपर देवासन है । वह आठ योजन लम्बा-चौड़ी है, कुछ अधिक आठ योजन ऊँचा है । जिन प्रतिमा, देवच्छन्दक, धूपदान आदि का वर्णन पूर्वानुरूप है । मन्दर पर्वत की चूलिका के पूर्व में पण्डकवन में पचास योजन जाने पर एक विशाल भवन आता है । शक्रेन्द्र एवं ईशानेन्द्र वहाँ के अधिष्ठायक देव हैं ।

[२००] भगवन् ! पण्डकवन में कितनी अभिषेक शिलाएँ हैं ? गौतम ! चार, -- पाण्डुशिला, पाण्डुकम्बलशिला, रक्तशिला तथा रक्तकम्बलशिला । पण्डकवन में पाण्डुशिला कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत की चूलिका के पूर्व में पण्डकवन के पूर्वी छोर पर है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बी तथा पूर्व-पश्चिम चौड़ी है । उसका आकार अर्ध चन्द्र के आकार-जैसा है। वह ५०० योजन लम्बी, २५० योजन चौड़ी तथा ४ योजन मोटी है । वह सर्वथा स्वर्णमय है, स्वच्छ है, पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड द्वारा चारों ओर से संपरिवृत है । उस पाण्डुशिला के चारों ओर चारों दिशाओं में तीन-तीन सीढ़ियाँ हैं । उस पाण्डुशिला पर बहुत समतल एवं सुन्दर भूमिभाग है । उस पर देव आश्रय लेते हैं । उस भूमिभाग के बीच में उत्तर तथा दक्षिण में दो सिंहासन हैं । वे ५०० धनुष लम्बे-चौड़े और २५० धनुष ऊँचे हैं । वहाँ जो उत्तर दिग्वर्ती सिंहासन है, वहाँ बहुत से भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देव-देवियां कच्छ आदि विजयों में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं । वहाँ जो दक्षिण दिग्वर्ती सिंहासन है, वहाँ बहुत से भवनपति, यावत् वैमानिक देव-देवियां वत्स आदि विजयों में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं ।

भगवन् ! पण्डकवन में पाडुकम्बलशिला कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत की चूलिका के दक्षिण में, पण्डकवन के दक्षिणी छोर पर है । उसका प्रमाण, विस्तार पूर्ववत् है । उसके भूमिभाग के बीचोंबीच एक विशाल सिंहासन है । उसका वर्णन पूर्ववत् है । वहां भवनपति आदि देव-देवियों द्वारा भरतक्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों का अभिषेक किया जाता है । पण्डकवन में रक्तशिला कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत की चूलिका के पश्चिम में, पण्डकवन के पश्चिमी छोर पर है । उसका प्रमाण, विस्तार पूर्ववत् है । वह सर्वथा तपनीय स्वर्णमय है, स्वच्छ है। उसके उत्तर-दक्षिण दो सिंहासन हैं । उनमें जो दक्षिणी सिंहासन है, वहाँ बहुत से भवनपति आदि देव-देवियों द्वारा पक्ष्मादिक विजयों में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभिषेक किया जाता है । जो उत्तरी सिंहासन है, वहाँ बहुत से वप्र आदि विजयों में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभिषेक किया जाता है । भगवन् ! पण्डकवन में रक्तकम्बलशिला कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत की चूलिका के उत्तर में, पण्डकवन के उत्तरी छोर पर है । सम्पूर्णतः तपनीय स्वर्णमय तथा उज्ज्वल है। उसके बीचों-बीच एक सिंहासन है । वहाँ ऐरावतक्षेत्र में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभिषेक किया जाता है ।

[२०१] भगवन् ! मन्दर पर्वत के कितने काण्ड–हैं ? गौतम ! तीन, --अधस्तन, मध्यम तथा उपरितनकाण्ड । मन्दर पर्वत का अधस्तनविभाग कितने प्रकार का है ? गौतम !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चार प्रकार का, –पृथ्वी, उपल, वज्र तथा शर्करमय । उसका मध्यमविभाग चार प्रकार का है–अंकरत्नमय, स्फटिकमय, स्वर्णमय तथा रजतमय । उसका उपरितनविभाग एकाकार–है । वह सर्वथा जम्बूनद-स्वर्णमय है । मन्दर पर्वत का अधस्तन १००० योजन ऊँचा है । मध्यम विभाग ६३००० योजन ऊँचा है । उपरितन विभाग ३६००० योजन ऊँचा है । यों उसकी ऊँचाई का कुल परिमाण १००००० योजन है ।

[२०२] भगवन् ! मन्दरपर्वत के कितने नाम बतलाये हैं ? गौतम ! सोलह–

[२०३] मन्दर, मेरु, मनोरम, सुदर्शन, स्वयंप्रभ, गिरिराज, रत्नोच्चय, शिलोच्चय, लोकमध्य, लोकनाभि ।

[२०४] अच्छ, सूर्यावर्त, सूर्यावरण, उत्तम, दिगादि तथा अवतंस ।

[२०५] भगवन् ! वह मन्दर पर्वत क्यों कहलाता है ? गौतम ! मन्दर पर्वत पर मन्दर नामक परम ऋद्धिशाली, पल्योपम के आयुष्यवाला देव निवास करता है, अथवा यह नाम शाश्वत है ।

[२०६] भगवन् ! जम्बूद्वीप का नीलवान् वर्षधर पर्वत कहाँ है ? गौतम ! महाविदेह क्षेत्र के उत्तर में, रम्यक क्षेत्र के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में; पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में है । निषध पर्वत के समान है । इतना अन्तर है–दक्षिण में इसकी जीवा है, उत्तर में धनुपृष्ठभाग है । उसमें केसरी द्रह है । दक्षिण में उससे शीता महानदी निकलती है । वह उत्तरकुरु में बहती है । आगे यमक पर्वत तथा नीलवान्, उत्तरकुरु, चन्द्र, ऐरावत एवं माल्यवान् द्रह को दो भागों में बाँटती है । उसमें ८४०० नदियाँ मिलती हैं । उनसे आपूर्ण होकर वह भद्रशाल वन में बहती है । जब मन्दर पर्वत दो योजन दूर रहता है, तब वह पूर्व की ओर झुड़ती है, नीचे माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत को विदीर्ण–कर मन्दर पर्वत के पूर्व में पूर्व विदेह क्षेत्र को दो भागों में बाँटती है । एक-एक चक्रवर्तिविजय में उसमें अट्ठाईस-अट्ठाईस हजार नदियां मिलती हैं । यों कुल ५३२००० नदियों से आपूर्ण वह नीचे विजयद्वार की जगती को विदीर्ण कर पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है । नारीकान्ता नदी उत्तराभिमुख होती हुई बहती है । जब गन्धापाति वृत्तवैताढ्य पर्वत एक योजन दूर रह जाता है, तब वह वहाँ से पश्चिम की ओर मुड़ जाती है । नीलवान् वर्षधर पर्वत के नौ कूट हैं– यथा–

[२०७] सिद्धायतनकूट, नीलवत्कूट, पूर्वविदेहकूट, शीताकूट, कीर्तिकूट, नारीकान्ताकूट, अपरविदेहकूट, रम्यककूट तथा उपदर्शनकूट ।

[२०८] ये सब कूट पांच सौ योजन ऊँचे हैं । इनके अधिष्ठातृ देवों की राजधानियां मेरु के उत्तर में है । भगवन् ! नीलवान् वर्षधर पर्वत इस नाम से क्यों पुकारा जाता है ? गौतम ! वहाँ नीलवर्णयुक्त, नील आभावाला परम ऋद्धिशाली नीलवान् देव निवास करता है, नीलवान् वर्षधर पर्वत सर्वथा वैडूर्यरत्नमय–है । अथवा उसका यह नाम नित्य है– ।

[२०९] भगवन् ! जम्बूद्वीप का रम्यक क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के उत्तर में, रुक्मी पर्वत के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में है । उसकी जीवा दक्षिण में है, धनुपृष्ठभाग उत्तर में है । बाकी वर्णन हरिवर्ष सदृश है । रम्यक क्षेत्र में गन्धापाती वृत्तवैताढ्य पर्वत कहाँ है ? गौतम ! नरकान्ता नदी के पश्चिम में, नारीकान्ता नदी के पूर्व में रम्यक क्षेत्र के बीचों बीच है । वह विकटापाती वृत्तवैताढ्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समान है । वहाँ परम ऋद्धिशाली पल्योपम आयुष्य युक्त पद्म देव निवास करता है । उसकी राजधानी उत्तर में है । वह क्षेत्र रम्यकवर्ष क्यों कहलाता है ? गौतम ! रम्यकवर्ष सुन्दर, रमणीय है एवं उसमें रम्यक नामक देव निवास करता है, अतः वह रम्यकवर्ष कहा जाता है।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में रुक्मी वर्षधर पर्वत कहाँ है ? गौतम ! रम्यक वर्ष के उत्तर में, हैरण्यवत वर्ष के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिम लवणसमुद्र के पूर्व में है। वह पूर्व-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है । वह महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के सदृश है । इतना अन्तर है—उसकी जीवा दक्षिण में है । उसका धनुपृष्ठभाग उत्तर में है । वहाँ महापुण्डरीक द्रह है । उसके दक्षिण तोरण से नरकान्ता नदी निकलती है । पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है । रूप्यकूला नामक नदी महापुण्डरीक द्रह के उत्तरी तोरण से निकलती है। वह पश्चिमी लवणसमुद्र में मिल जाती है । रुक्मी वर्षधर पर्वत के कितने कूट हैं ? गौतम ! आठ, कूट है । यथा—

[२१०] सिद्धायतनकूट, रुक्मीकूट, रम्यककूट, नरकान्ताकूट, बुद्धिकूट, रूप्यकूलाकूट, हैरण्यवतकूट तथा मणिकांचनकूट ।

[२११] ये सभी कूट पांच-पांच सौ योजन ऊँचे हैं । उत्तर में इनकी राजधानियां है। भगवन् ! वह रुक्मी वर्षधर पर्वत क्यों कहा जाता है ? गौतम ! रुक्मी वर्षधर पर्वत रजत-निष्पन्न रजत की ज्यों आभामय एवं सर्वथा रजतमय है । वहाँ पल्योपमस्थितिक रुक्मी नामक देव निवास करता है, इसलिए वह रुक्मी वर्षधर पर्वत कहा जाता है । भगवन् ! जम्बूद्वीप का हैरण्यवत क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! रुक्मी वर्षधर पर्वत के उत्तर में, शिखरी वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में है । उसकी जीवा दक्षिण में है, धनुपृष्ठभाग उत्तर में है । बाकी वर्णन हैमवत-सदृश है । हैरण्यवत क्षेत्र में माल्यवत्पर्याय वृत्तवैताढ्य पर्वत कहाँ है ? गौतम ! सुवर्णकूला महानदी के पश्चिम में, रूप्यकूला महानदी के पूर्व में हैरण्यवत क्षेत्र के बीचोंबीच है । शब्दापाती वृत्त वैताढ्य के समान माल्यवत्पर्याय है । वहां परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्ययुक्त प्रभास देव निवास करता है । इन कारणों से वह माल्यवत्पर्याय वृत्त वैताढ्य कहा जाता है । राजधानी उत्तर में है । हैरण्यवत क्षेत्र नाम किस कारण कहा जाता है ? गौतम ! हैरण्यवत क्षेत्र रुक्मी तथा शिखरी वर्षधर पर्वतों से दो ओर से घिरा हुआ है । वह नित्य हिरण्य—देता है, नित्य स्वर्ण प्रकाशित करता है, जो स्वर्णमय शिलापट्टक आदि के रूप में वहाँ यौगलिक मनुष्यों के शय्या, आसन आदि उपकरणों के रूप में उपयोग में आता है, वहाँ हैरण्यवत देव निवास करता है, इसलिए वह हैरण्यवत क्षेत्र कहा जाता है ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् शिखरी वर्षधर कहाँ है ? गौतम ! हैरण्यवत के उत्तर में, ऐरावत के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में शिखरी वर्षधर पर्वत है । उसकी जीवा दक्षिण में है । उसका धनुपृष्ठभाग उत्तर में है बाकी वर्णन चुल्ल हिमवान् के अनुरूप है । उस पर पुण्डरीकद्रह है । उसके दक्षिण तोरण से सुवर्णकूला महानदी निकलती है । वह रोहितांशा की ज्यों पूर्वी लवणसमुद्र में मिलती है । रक्ता महानदी पूर्व में तथा रक्तवती पश्चिम में बहती है । शिखरी वर्षधर पर्वत के कितने कूट हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौतम ! ग्यारह, सिद्धायतनकूट, शिखरीकूट, हैरण्यवतकूट, सुवर्णकूलाकूट, सुरादेवीकूट, रक्ताकूट, लक्ष्मीकूट, रक्तावतीकूट, इलादेवीकूट, ऐरावतकूट, तिगिंच्छकूट । ये सभी कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊँचे हैं । इनके अधिष्ठातृ देवों की राजधानियां उत्तर में हैं । यह पर्वत शिखरी वर्षधर पर्वत क्यों कहा जाता है ? गौतम ! शिखरी वर्षधर पर्वत पर बहुत से कूट उसी के-से आकार में अवस्थित हैं, वहाँ शिखरी देव निवास करता है, इस कारण शिखरी वर्षधर पर्वत कहा जाता है ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् ऐरावत क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! शिखरी वर्षधर पर्वत के उत्तर में, उत्तरी लवणसमुद्र के दक्षिण में, पूर्वी लवण समुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में है । वह स्थाणु-बहुल है, कंटकबहुल है, इत्यादि वर्णन भरतक्षेत्र की ज्यों है । वहाँ ऐरावत नामक चक्रवर्ती होता है, ऐरावत नामक अधिष्ठातृ-देव है, इस कारण वह ऐरावत क्षेत्र कहा जाता है ।

वक्षस्कार-४-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

वक्षस्कार-५

[२१२] जब एक एक-किसी भी चक्रवर्ति-विजय में तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं, उस काल–उस समय–अधोलोकवास्तव्या, महत्तरिका–आठ दिक्कुमारिकाएँ, जो अपने कूटों, भवनों और प्रासादों में अपने ४००० सामानिक देवों, सपरिवार चार महत्तरिकाओं, सात सेनाओं, सात सेनापति देवों, १६००० आत्मरक्षक देवों तथा अन्य अनेक भवनपति एवं वानव्यन्तर देवदेवियों से संपरिवृत, नृत्य, गीत, पटुता पूर्वक बजाये जाते वीणा, झींझ, ढोल एवं मृदंग की बादल जैसी गंभीर तथा मधुर ध्वनि के बीच विपुल सुखोपभोग में अभिरत होती हैं ।

[२१३] वह आठ दिक्कुमारिका है–भोगंकरा, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी, तोयधारा, विचित्रा, पुष्पमाला और अनिन्दिता ।

[२१४] जब वे अधोलोकवासिनी आठ दिक्कुमारिकाएँ अपने आसनों को चलित होते देखती हैं, वे अपने अवधिज्ञान का प्रयोग करती हैं । तीर्थंकर को देखती हैं । कहती हूं–जम्बूद्वीप में तीर्थंकर उत्पन्न हुए हैं । अतीत, प्रत्युत्पन्न तथा अनागत–अधोलोकवास्तव्या हम आठ महत्तरिका दिशाकुमारियों का यह परंपरागत आचार है कि हम भगवान् तीर्थंकर का जन्म-महोत्सव मनाएं, अतः हम चलें, भगवान् का जन्मोत्सव आयोजित करें । यों कहकर आभियोगिक देवों को कहती हैं–देवानुप्रियों ! सैकड़ों खंभों पर अवस्थित सुन्दर यान-विमान की विकुर्वणा करो–वे आभियोगिक देव सैकड़ों खंभों पर अवस्थित यान-विमानों की रचना करते हैं, यह जानकर वे अधोलोकवास्तव्या गौरवशीला दिक्कुमारियाँ हर्षित एवं परितुष्ट होती हैं । उनमें से प्रत्येक अपने-अपने ४००० सामानिक देवों यावत् तथा अन्य अनेक देव-देवियों के साथ दिव्य यान-विमानों पर आरूढ होती हैं । सब प्रकार की ऋद्धि एवं द्युति से समायुक्त, बादल की ज्यों घहराते-गूंजते मृदंग, ढोल आदि वाद्यों की ध्वनि के साथ उत्कृष्ट दिव्य गति द्वारा जहाँ तीर्थंकर का जन्मभवन होता है, वहाँ आती हैं । दिव्य विमानों में अवस्थित वे भगवान् तीर्थंकर के जन्मभवन की तीन बार प्रदक्षिणा करती हैं । ईशान कोण में अपने विमानों को, जब वे भूतल से चार अंगुल ऊँचे रह जाते हैं, ठहराती हैं । ४००० सामानिक देवों यावत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देव-देवियों से संपरिवृत वे दिव्य विमानों से नीचे उतरती हैं ।

सब प्रकार की समृद्धि लिए, जहाँ तीर्थंकर तथा उनकी माता होती हैं, वहाँ आती हैं। तीन प्रदक्षिणाएँ करती हैं, हाथ जोड़े, अंजलि बाँधे, तीर्थंकर की माता से कहती हैं– 'रत्नकुक्षिधारिके, जगत्प्रदीपदायिके, हम आपको नमस्कार करती है । समस्त जगत् के लिए मंगलमय, नेत्रस्वरूप, मूर्त्त, समस्त जगत् के प्राणियों के लिए वात्सल्यमय, हितप्रद मार्ग उपदिष्ट करने वाली, विभु, जिन, ज्ञानी, नायक, बुद्ध, बोधक, योग-क्षेमकारी, निर्मम, उत्तम कुल, क्षत्रिय-जाति में उद्भूत, लोकोत्तम, की आप जननी हैं । आप धन्य, पुण्य एवं कृतार्थ–हैं । अधोलोकनिवासिनी हम आठ प्रमुख दिशाकुमारिकाएँ भगवान् तीर्थंकर का जन्महोत्सव मनायेंगी अतः आप भयभीत मत होना ।

यों कहकर वे ईशान-कोण में जाती हैं । वैक्रिय समुद्घात द्वारा अपने आत्म-प्रदेशों को शरीर से बाहर निकालती हैं । उन्हें संख्यात योजन तक दण्डाकार परिणत करती हैं । फिर दूसरी बार वैक्रिय समुद्घात करती हैं, संवर्तक वायु की विकुर्वणा करती हैं । उस शिव, मृदुल, अनुद्धत, भूमितल को निर्मल, स्वच्छ करनेवाले, मनोहर, पुष्पों की सुगन्ध से सुवासित, तिर्यक्, वायु द्वारा भगवान् तीर्थंकर के योजन परिमित परिमण्डल को–चारों ओर से सम्मार्जित करती हैं । जैसे एक तरुण, बलिष्ठ, युगवान्, युवा, अल्पातंक, नीरोग, स्थिराग्रहस्त, दृढपाणिपाद, पृष्ठान्तोरुपरिणत, अहीनांग, जिसके कंधे गठीले, वृत्त–एवं वलित–हुए, हृदय की ओर झुके हुए मांसल एवं सुपुष्ट हो, चमड़े के बन्धनों के युक्त मुद्गर आदि उपकरण ज्यों जिनके अंग मजबूत हों, दोनों भुजाएँ दो एक-जैसे ताड़ वृक्षों की ज्यों हों, जो गर्त आदि लांघने में, कूदने में, तेज चलने में, प्रमर्दन से–कड़ी वस्तु को चूर-चूर कर डालने में सक्षम हो, जो छेक, दक्ष, प्रष्ठ, कुशल, मेघावी, निपुण, ऐसा कर्मकर लड़का खजूर के पत्तों से बनी बड़ी झाड़ू को, दण्डयुक्त लेकर राजमहल के आंग, राजान्तःपुर, देव-मन्दिर, सभा, प्रपा, जलस्थान, आराम, उद्यान, बाग को सब ओर से झाड़ कर साफ कर देता है, उसी प्रकार वे दिक्कुमारियाँ संवर्तक वायु द्वारा तिनके, पत्ते, लकड़ियाँ, कचरा, अशुचि, अचोक्ष, पूतिक, दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को उठाकर, परिमण्डल से बाहर एकान्त में डाल देती हैं– । फिर वे दिक्कुमारिकाएँ भगवान् तीर्थंकर तथा उनकी माता के पास आती हैं । उनसे न अधिक समीप तथा न अधिक दूर अवस्थित हो आगान और परिगान–करती हैं ।

[२१५] उस काल, उस समय, ऊर्ध्वलोकवास्तव्या–आठ दिक्कुमारिकाओं के, जो अपने कूटों पर, अपने भवनों में, अपने उत्तम प्रासादों में अपने चार हजार सामानिक देवों, यावत् अनेक भवनपति एवं वानव्यन्तर देव-देवियों से संपरिवृत, नृत्य, गीत एवं तुमुल वाद्य-ध्वनि के बीच विपुल सुखोपभोग में अभिरत होती हैं ।

[२१६] यह दिक्कुमारियां है–मेघंकरा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, सुवत्सा, वत्समित्रा, वारिषेणा तथा बलाहका ।

[२१७] तब उन देवी के आसन चलित होते है, शेष पूर्ववत् । वे दिक्कुमारिकाए भगवान् तीर्थंकर की माता से कहती है–देवानुप्रिये ! हम उर्ध्वलोकवासिनी दिक्कुमारिकाएं भगवान् का जन्म-महोत्सव मनायेंगी । अतः आप भयभीत मत होना । यों कहकर वे–ईशान कोण में चली जाती हैं । यावत् वे आकाश में बादलों की विकुर्वणा करती हैं, वे (बादल)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शीघ्र ही गरजते हैं, उनमें बिजलियाँ चमकती हैं तथा वे तीर्थंकर जन्म-भवन के चारों ओर योजन-परिमित परिमंडल मिट्टी को आसिक्त, शुष्क रखते हुए मन्द गति से, धूल, मिट्टी जम जाए, इतने से धीमे वेग से उत्तम स्पर्शयुक्त दिव्यसुगन्धयुक्त झिरमिर-झिरमिर जल बरसाते हैं। उसमें धूलनिहत, नष्ट, भ्रष्ट, प्रशान्त तथा उपशान्त हो जाती है । ऐसा कर वे बादल शीघ्र ही उपरत हो जाते हैं ।

फिर वे ऊर्ध्वलोकवास्तव्या आठ दिक्कुमारिकाएँ पुष्पों के बादलों की विकुर्वणा करती हैं । उन विकुर्वित फूलों के बादल जोर-जोर से गरजते हैं, उसी प्रकार, कमल, वेला, गुलाब आदि देदीप्यमान, पंचरंगे, वृत्तसहित फूलों की इतनी विपुल वृष्टि करते हैं कि उनका घुटने-घुटने तक ऊँचा ढेर हो जाता है । फिर वे काले अगर, उत्तम कुन्दरुक, लोबान तथा धूप की गमगमाती महक से वहाँ के वातावरण को बड़ा मनोज्ञ, उत्कृष्ट-सुरभिमय बना देती हैं । सुगंधित धुएँ की प्रचुरता से वहाँ गोल-गोल धूममय छल्ले से बनने लगते हैं । यों वे दिक्कुमारिकाएँ उस भूभाग को सुरवर–के अभिगमन योग्य बना देती हैं । ऐसा कर वे भगवान् तीर्थंकर एवं उनकी माँ के पास आती हैं । वहाँ आकर आगान, परिगान करती हैं ।

[२१८] उस काल, उस समय पूर्वदिग्वर्ती रुचककूट-निवासिनी आठ दिक्कुमारिकाएँ अपने-अपने कूटों पर सुखोपभोग करती हुई विहार करती हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं–

[२१९] नन्दोत्तरा, नन्दा, आनन्दा, नन्दिवर्धना, विजया, वैजयन्ती, जयन्ती तथा अपराजिता ।

[२२०] अवशिष्ट वर्णन पूर्ववत् है । देवानुप्रिये ! पूर्वदिशावर्ती रुचककूट निवासिनी हम आठ दिशाकुमारिकाएँ भगवान् तीर्थंकर का जन्म-महोत्सव मनायेंगी । अतः आप भयभीत मत होना ।' यों कहकर तीर्थंकर तथा उनकी माता के श्रृंगार, शोभा, सज्जा आदि विलोकन में उपयोगी, प्रयोजनीय दर्पण हाथ में लिये वे भगवान् तीर्थंकर एवं उनकी माता के पूर्व में आगान, परिगान करने लगती हैं । उस काल, उस समय दक्षिण रुचककूट-निवासिनी आठ दिक्कुमारिकाएँ यावत् विहारती हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं–

[२२१] समाहारा, सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती, शेषवती, चित्रगुप्ता तथा वसुन्धरा ।

[२२२] वे भगवान् तीर्थंकर की माता से कहती हैं–'आप भयभीत न हों ।' यों कहकर वे भगवान् तीर्थंकर एवं उनकी माता के स्नपन में प्रयोजनीय सजल कलश हाथ में लिए दक्षिण में आगान, पारिगान करने लगती है । उस काल, उस समय पश्चिम रूचक कूट-निवासिनी आठ दिक्कुमारिकाएँ हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं–

[२२३] इलादेवी, सुरादेवी, पृथिवी, पद्मावती, एकनासा, नवमिका, भद्रा तथा सीता।

[२२४] वे भगवान् तीर्थंकर की माता को सम्बोधित कर कहती हैं–'आप भयभीत न हो ।' यों कह कर वे हाथों में तालवृन्त–लिये हुए आगान, परिगान करती हैं । उस काल, उस समय उत्तर रुचककूट-निवासिनी आठ दिक्कुमारिकाएँ हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं–

[२२५] अलंबुसा, मिश्रकेशी, पुण्डरीका, वारुणी, हासा, सर्वप्रभा, श्री तथा ह्री ।

[२२६] वे भगवान् तीर्थंकर तथा उनकी माता को प्रणाम कर उनके उत्तर में चँवर हाथ के लिये आगान-परिगान करती हैं । उस काल, उस समय रुचककूट के मस्तक पर–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चारों विदिशाओं में निवास करने वाली चार दिक्कुमारिकाएँ हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं–चित्रा, चित्रकनका, श्वेता तथा सौदामिनी । वे आकर तीर्थंकर तथा उनकी माता के चारों विदिशाओं में अपने हाथों में दीपक लिये आगान-परिगान करती हैं । उस काल, उस समय मध्य रुचककूट पर निवास करनेवाली चार दिक्कुमारिकाएँ हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं–रूपा, रूपासिका, सुरूपा तथा रूपकावती । वे उपस्थित होकर तीर्थंकर के नाभि-नाल को चार अंगुल छोड़कर काटती हैं । जमीन में गड्ढा खोदती हैं । नाभि-नाल को उनमें गाड़ देती हैं और उस गड्ढे को रत्नों से, हीरों से भर देती हैं । गड्ढा भरकर मिट्टी जमा देती हैं, उस पर हरी-हरी दूब उगा देती हैं । उसकी तीन दिशाओं में तीन कदलीगृह–की, उन कदली-गृहों के बीच में तीन चतुः शालाओं–की तथा उन भवनों के बीचों बीच तीन सिंहासनों की विकुर्वणा करती हैं ।

फिर वे मध्यरुचकवासिनी महत्तरा दिक्कुमारिकाएँ भगवान् तीर्थंकर तथा उसकी माता के पास आती हैं । तीर्थंकर को अपनी हथेलियों के संपुट द्वारा उठाती हैं और तीर्थंकर की माता को भुजाओं द्वारा उठाती हैं । दक्षिणदिग्वर्ती कदलीगृह में तीर्थंकर एवं उनकी माता को सिंहासन पर बिठाती हैं । उनके शरीर पर शतपाक एवं सहस्रपाक तैल द्वारा अभ्यंगन करती हैं । फिर सुगन्धित गन्धाटक से–तैयार किये गये उबटन से–तैल की चिकनाई दूर करती हैं। वे भगवान् तीर्थंकर को पूर्वदिशावर्ती कदलीगृह में लाकर तीर्थंकर एवं उनकी माता को सिंहासन पर बिठाती हैं । गन्धोदक, पुष्पोदक तथा शुद्ध जल के द्वारा स्नान कराती हैं । सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित करती हैं । तत्पश्चात् भगवान् तीर्थंकर और उनकी माता को उत्तरदिशावर्ती कदलीगृह में लाती हैं । उन्हें सिंहासन पर बिठाकर अपने आभियोगिक देवों को बुलाकर कहती हैं–देवानुप्रियो ! चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत से गोशीर्ष-चन्दन-काष्ठ लाओ ।'

वे आभियोगिक देव हर्षित एवं परितुष्ट होते हैं, शीघ्र ही चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत से ताजा गोशीर्ष चन्दन ले आते हैं । तब वे मध्य रुचकनिवासिनी दिक्कुमारिकाएं शरक, अग्नि-उत्पादक काष्ठ-विशेष तैयार करती हैं । उसके साथ अरणि काष्ठ को संयोजित करती हैं । अग्नि उत्पन्न करती हैं । उद्दीप्त करती हैं । उसमें गोशीर्ष चन्दन के टुकड़े डालती हैं । अग्नि को प्रज्वलित कर उसमें समिधा डालती हैं, हवन करती हैं, भूतिकर्म करती हैं–वे डाकिनी, शाकिनी आदि से, दृष्टिदोष रक्षा हेतु भगवन् तीर्थंकर तथा उनकी माता के भस्म की पोटलियां बाँधती हैं । फिर नानाविध मणि-रत्नांकित दो पाषाण-गोलक लेकर वे भगवान् तीर्थंकर के कर्णमूल में उन्हें परस्पर ताडित कर बजाती हैं, जिससे बाललीलावश अन्यत्र आसक्त भगवान् तीर्थंकर उन द्वारा वक्ष्यमाण आशीर्वचन सुनने में दत्तावधान हो सकें । वे आशीर्वाद देती हैं–भगवन् ! आप पर्वत के सदृश दीर्घायु हों ।' फिर मध्य रुचकनिवासिनी वे चार महत्तरा दिक्कुमारिकाएँ भगवान् को तथा भगवान् की माता को तीर्थंकर के जन्म-भवन में ले आती हैं। भगवन् की माता को वे शय्या पर सुला देती हैं । शय्या पर सुलाकर भगवान् को माता की बगल में रख देती हैं– । फिर वे मंगल-गीतों का आगान, परिगान करती है ।

[२२७] उस काल, उस समय शक्र नामक देवेन्द्र, देवराज, वज्रपाणि, पुरन्दर, शतक्रतु, सहस्राक्ष, मघवा, पाकशासन, दक्षिणार्धलोकाधिपति, बत्तीस लाख विमानों के स्वामी, ऐरावत हाथी पर सवारी करनेवाले, सुरेन्द्र, निर्मल वस्त्रधारी, मालायुक्त मुकुट धारण किये हुए, उज्ज्वल स्वर्ण के सुन्दर, चित्रित चंचल–कुण्डलों से जिसके कपोल सुशोभित थे, देदीप्यमान शरीरधारी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम ऋद्धिशाली, परम, द्युतिशाली, महान् बली, महान् यशस्वी, परम प्रभावक, अत्यन्त सुखी, सुधर्मा सभा में इन्द्रासन पर स्थित होते हुए बतीस लाख विमानों, ८४००० सामानिक देवों, तेतीस गुरुस्थानीय त्रायस्त्रिंश देवों, चार लोकपालों परिवारसहित आठ अग्रमहिषियों, तीन परिषदों, सात अनीकों, सात अनीकाधिपतियों, ३३६००० अंगरक्षक देवों तथा सौधर्मकल्पवासी अन्य बहुत से देवों तथा देवियों का आधिपत्य, यावत् सैनापत्य करते हुए, इन सबका पालन करते हुए, नृत्य, गीत, कलाकौशल के साथ बजाये जाते वीणा, झांझ, ढोल एवं मृदंग की बादल जैसी गंभीर तथा मधुर ध्वनि के बीच दिव्य भोगों का आनन्द ले रहा था ।

सहसा देवेन्द्र, देवराज शक्र का आसन चलित होता है, शक्र अवधिज्ञान द्वारा भगवान् को देखता है । वह हृष्ट तथा परितुष्ट होता है । उसका हृदय खिल उठता है । उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं–मुख तथा नेत्र विकसित हो उठते हैं । हर्षातिरेकजनित स्फूर्तावेगवश उसके हाथों के उत्तम कटक, त्रुटित, पट्टिका, केयूर, एवं मुकुट सहसा कम्पित हो उठते हैं । उसका वक्षःस्थल हारों से सुशोभित होता है । गले में लम्बी माला लटकती है, आभूषण झूलते हैं। (इस प्रकार सुसज्जित) देवराज शक्र आदरपूर्वक शीघ्र सिंहासन से उठता है । पादपीठ से नीचे उतरकर वैडूर्य, रिष्ठ तथा अंजन रत्नों से निपुणतापूर्वक कलात्मक रूप में निर्मित, देदीप्यमान, मणि-मण्डित पादुकाएँ उतारता है । अखण्ड वस्त्र का उत्तरासंग करता है । हाथ जोड़ता है, जिस ओर तीर्थंकर थे उस दिशा की ओर सात, आठ कदम आगे जाता है । बायें घुटने को सिकोड़ता है, दाहिने घुटने को भूमि पर टिकाता है, तीन बार अपना मस्तक भूमि से लगाता है । फिर हाथ जोड़ता है, और कहता है–

अर्हत्, भगवान्, आदिकर, तीर्थंकर, स्वयंसंबुद्ध, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषवरपुण्डरीक, पुरुषवरगन्धहस्ती, लोकोत्तम, लोकनाथ, लोकहितकर, लोकप्रदीप, लोकप्रद्योतकर, अभयदायक, चक्षुदायक, मार्गदायक, शरणदायक, जीवनदायक, बोधिदायक, धर्मदायक, धर्मदेशक, धर्मनायक, धर्मसारथि, दीप, त्राण, शरण, गति, एवं प्रतिष्ठास्वरूप, प्रतिघात, बाधा या आवरण रहित उत्तम ज्ञान, दर्शन के धारक, व्यावृत्तछद्मा–जिन, ज्ञायक, तीर्ण, तारक, बुद्ध, बोधक, मुक्त, मोचक, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव, अचल, निरुद्रव, अनन्त, अक्षय, अबाध, अपुनरावृत्ति, सिद्धावस्था को प्राप्त, भयातीत जिनेश्वरों को नमस्कार हो । आदिकर, सिद्धावस्था पाने के इच्छुक भगवान् तीर्थंकर को नमस्कार हो ।

यहाँ स्थित मैं वहाँ–में स्थित भगवान् तीर्थंकर को वन्दन करता हूँ । वहाँ स्थित भगवान् यहाँ स्थित मुझको देखें । ऐसा कहकर वह भगवान् को वन्दन करता है, नमन करता है । पूर्व की ओर मुँह करके सिंहासन पर बैठ जाता है । तब देवेन्द्र, देवराज शक्र के मन में ऐसा संकल्प, भाव उत्पन्न होता है–जम्बूद्वीप में भगवान् उत्पन्न हुए हैं । देवेन्द्रों, देवराजों शक्रों का यह परंपरागत आचार है कि वे तीर्थंकरों का जन्म-महोत्सव मनाएं । इसलिए मैं भी जाऊँ, भगवान् तीर्थंकर का जन्मोत्सव समायोजित करूं । देवराज शक्र ऐसा विचार करता है, निश्चय करता है । अपनी पदातिसेना के अधिपति हरिनिगमेषी देव को बुलाकर कहता है– 'देवानुप्रिय ! शीघ्र ही सुधर्मा सभा में मेघसमूह के गर्जन के सदृश गंभीर तथा अति मधुर शब्दयुक्त, एक योजन वर्तुलाकार, सुन्दर स्वर युक्त सुघोषा नामक घण्टा को तीन बार बजाते हुए, जोर जोर से उद्घोषणा करते हुए कहो–वे जम्बूद्वीप में भगवान् की जन्म-महोत्सव मनाने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जा रहे हैं । आप सभी अपनी सर्वविध ऋद्धि, द्युति, बल, समुदय, आदर विभूति, विभूषा, नाटक-नृत्य-गीतादि के साथ, किसी भी बाधा की पर्वाह न करते हुए सब प्रकार के पुष्पों, सुरभित पदार्थों, मालाओं तथा आभूषणों से विभूषित होकर दिव्य, तुमुल ध्वनि के साथ महती ऋद्धि यावत् उच्च, दिव्य वाद्यध्वनिपूर्वक अपने-अपने परिवार सहित अपने-अपने विमानों पर सवार होकर शक्र के समक्ष उपस्थित हों ।'

देवेन्द्र, देवराज शक्र द्वारा इस प्रकार आदेश दिये जाने पर हरिणेगमेषी देव हर्षित होता है, परितुष्ट होता है, आदेश स्वीकार कर शक्र के पास से निकलता है । सुघोषा घण्टा को तीन बार बजाता है । मेघसमूह के गर्जन की तरह गंभीर तथा अत्यन्त मधुर ध्वनि से युक्त, एक योजन वर्तुलाकार सुघोषा घण्टा के तीन बार बजाये जाने पर सौधर्म कल्प में एक कम बत्तीस विमानों में एक कम बत्तीस लाख घण्टाएँ एक साथ तुमुल शब्द करने लगती हैं । सौधर्मकल्प के प्रासादों एवं विमानों के निष्कुट, कोनों में आपतित शब्द-वर्गणा के पुद्गल लाखों घण्टा-प्रतिध्वनियों के रूप में प्रकट होने लगते हैं । सौधर्मकल्प सुन्दर स्वरयुक्त घण्टाओं की विपुल ध्वनि से आपूर्ण हो जाता है । वहाँ निवास करने वाले बहुत से वैमानिक देव, देवियाँ जो रतिसुख में प्रसक्त तथा प्रमत्त रहते हैं, मूर्च्छित रहते हैं, शीघ्र जागरित होते हैं--घोषणा सुनने हेतु उनमें कुतूहल उत्पन्न होता है, उसे सुनने में वे दत्तचित्त हो जाते हैं । जब घण्टा ध्वनि निःशान्त, प्रशान्त होता है, तब हरिणेगमेषी देव स्थान-स्थान पर जोर-जोर से उद्घोषणा करता हुआ कहता है--

सौधर्मकल्पवासी बहुत से देवो ! देवियो ! आप सौधर्मकल्पपति का यह हितकर एवं सुखप्रद वचन सुनें, आप उन के समक्ष उपस्थित हों । यह सुनकर उन देवों, देवियों के हृदय हर्षित एवं परितुष्ट होते हैं । उनमें से कतिपय भगवान् तीर्थंकर के वन्दन--हेतु, कतिपय पूजन हेतु, कतिपय सत्कार, सम्मान, दर्शन की उत्सुकता, भक्ति-अनुरागवश तथा कतिपय परंपरानुगत आचार मानकर वहाँ उपस्थित हो जाते हैं । देवेन्द्र, देवराज शक्र उन वैमानिक देव-देवियों को अविलम्ब अपने समक्ष उपस्थित देखता है । अपने पालक नामक आभियोगिक देवों को बुलाकर कहता है--देवानुप्रिय ! सैकड़ों खंभों पर अवस्थित, क्रीडोद्यत पुत्तलियों से कलित, ईहामृग--वृक, वृषभ, अश्व आदि के चित्रांकन से युक्त, खंभों पर उत्कीर्ण वज्ररत्नमयी वेदिका द्वारा सुन्दर प्रतीयमान, संचरणशील सहजात पुरुष-युगल की ज्यों प्रतीत होते चित्रांकित विद्याधरों से समायुक्त, अपने पर जड़ी सहस्रों मणियों तथा रत्नों की प्रभा से सुशोभित, हजारों रूपकों--अतीव देदीप्यमान, नेत्रों में समा जानेवाले, सुखमय स्पर्शयुक्त, सश्रीक, घण्टियों की मधुर, मनोहर ध्वनि से युक्त, सुखमय, कमनीय, दर्शनीय, देदीप्यमान मणिरत्नमय घण्टिकाओं के समूह से परिव्याप्त, १००० योजन विस्तीर्ण, ५०० योजन ऊँचे, शीघ्रगामी, त्वरितगामी, अतिशय वेगयुक्त एवं प्रस्तुत कार्य-निर्वहण में सक्षम दिव्य विमान की विकुर्वणा करो ।

[२२८] देवेन्द्र, देवराज शक्र द्वारा यों कहे जाने पर--पालक नामक देव हर्षित एवं परितुष्ट होता है । वह वैक्रिय समुद्घात द्वारा यान-विमान की विकुर्वणा करता है । उस यान-विमान के भीतर बहुत समतल एवं रमणीय भूमि-भाग है । वह आलिंग-पुष्कर तथा शंकुसदृश बड़े-बड़े कीले ठोक कर, खींचकर समान किये गये चीते आदि के चर्म जैसा समतल और सुन्दर है । वह भूमिभाग आवर्त, प्रत्यावर्त, श्रेणि, प्रश्रेणि, स्वस्तिक, वर्द्धमान, पुष्यमाणव,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत्स्य के अंडे, मगर के अंडे, जार, मार, पुष्पावलि, कमलपत्र, सागर-तरंग वासन्तीलता एवं पद्मलता के चित्रांकन से युक्त, आभायुक्त, प्रभायुक्त, रश्मियुक्त, उद्योतयुक्त नानाविध पंचरंगी मणियों से सुशोभित है । उस भूमिभाग के ठीक बीच में एक प्रेक्षागृह-मण्डप है । वह सैकड़ों खंभों पर टिका है, उस प्रेक्षामण्डप के ऊपर का भाग पद्मलता आदि के चित्रण से युक्त है, सर्वथा तपनीय-स्वर्णमय है, यावत् प्रतिरूप है ।

उस मण्डप के भूमिभाग के बीचोंबीच एक मणिपीठिका है । वह आठ योजन लम्बी-चौड़ी तथा चार योजन मोटी है, सर्वथा मणिमय है । उसके ऊपर एक विशाल सिंहासन है। उसके ऊपर एक सर्वरत्नमय, बृहत् विजयदूष्य है । उसके बीच में एक वज्ररत्नमय अंकुश है। वहाँ एक कुम्भिका-प्रमाण मोतियों की बृहत् माला है । वह मुक्तामाला अपने से आधी ऊँची, अर्ध कुम्भिकापरिमित चार मुक्तामालाओं द्वारा चारों ओर से परिवेष्टित है । उन मालाओं में तपनीय-स्वर्णनिर्मित लंबूसक लटकते हैं । वे सोने के पातों से मण्डित हैं । वे नानाविध मणियों एवं रत्नों से निर्मित हारों, अर्धहारों–से उपशोभित हैं, विभूषित हैं । पूर्वीय–आदि वायु के झोंकों से धीरे-धीरे हिलती हुई, परस्पर टकराने से उत्पन्न कानों के लिए तथा मन के लिए शान्तिप्रद शब्द से आस-पास के प्रदेशों-को आपूर्ण करती हुई–भरती हुई वे अत्यन्त सुशोभित होती हैं । उस सिंहासन के वायव्यकोण में, उत्तर में एवं ईशान में शक्र के ८४००० सामानिक देवों के ८४००० उतम आसन हैं, पूर्व में आठ प्रधान देवियों के आठ उत्तम आसन हैं, आग्नेयकोण में आभ्यन्तर परिषद् के १२००० देवों के १२०००, दक्षिण में मध्यम परिषद् के १४००० देवों के १४००० तथा नैर्ऋत्यकोण में बाह्य परिषद् के १६००० देवों के १६००० उत्तम आसन हैं । पश्चिम में सात अनीकाधिपतियों–के सात उत्तम आसन हैं। उस सिंहासन की चारों दिशाओं में चौरासी चौरासी हजार आत्मरक्षक कुल ३३६००० उत्तम आसन हैं । इनस सबकी विकुर्वणा कर पालक देव शक्रेन्द्र को निवेदित करता है ।

[२२९] पालक देव द्वारा दिव्य यान की रचना को सुनकर शक्र मन में हर्षित होता है । जिनेन्द्र भगवान् के सम्मुख जाने योग्य, दिव्य, सर्वालंकारविभूषित, उत्तरवैक्रिय रूप की विकुर्वणा करता है । सपरिवार आठ अग्रमहिषियों, नाट्यानीक, गन्धर्वानीक के साथ उस यान-विमान की अनुप्रदक्षिणा करता हुआ पूर्वदिशावर्ती त्रिसोपनक से–विमान पर आरूढ होता है। पूर्वाभिमुख हो सिंहासन पर आसीन होता है । उसी प्रकार सामानिक देव, बाकी के देव-देवियाँ दक्षिणदिग्वर्ती त्रिसोपानक से विमान पर आरूढ होकर उसी तरह बैठ जाते हैं । शक्र के यों विमानारूढ होने पर आगे आठ मंगलिक–द्रव्य प्रस्थित होते हैं । तत्पश्चात् शुभ शकुन के रूप में समायोजित, प्रयाण-प्रसंग में दर्शनीय जलपूर्ण कलश, जलपूर्ण झारी, चँवर सहित दिव्य छत्र, दिव्य पताका, वायु द्वारा उड़ाई जाती, अत्यन्त ऊँची, मानो आकाश को छूती हुई-सी विजय-वैजयन्ती से क्रमशः आगे प्रस्थान करते हैं ।

तदनन्तर छत्र, विशिष्ट वर्णकों एवं चित्रों द्वारा शोभित निर्जल झारी, फिर वज्ररत्नमय, वर्तुलाकार, लष्ट, सुश्लिष्ट, परिघृष्ट, स्निग्ध, मृष्ट, मृदुल, सुप्रतिष्ठित, विशिष्ट, अनेक उत्तम, पंचरंगी हजारों कुडभियों–से अलंकृत, सुन्दर, वायु द्वारा हिलती विजय-वैजयन्ती, ध्वजा, छत्र एवं अतिछत्र से सुशोभित, तुंग आकाश को छूते हुए से शिखर युक्त १००० योजन ऊँचा, अतिमहत् महेन्द्रध्वज यथाक्रम आगे प्रस्थान करता है । उसके बाद अपने कार्यानुरूप वेष से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युक्त, सुसज्जित, सर्वविध अलंकारों से विभूषित पाँच सेनाएँ, पाँच सेनापति-देव प्रस्थान करते हैं । फिर बहुत से अभियोगिक देव-देवियाँ अपने-अपने रूप, नियोग–सहित देवेन्द्र, देवराज शक्र के आगे, पीछे यथाक्रम प्रस्थान करते हैं । तत्पश्चात् सौधर्मकल्पवासी अनेक देव-देवियाँ विमानारूढ होते हैं, देवेन्द्र, देवराज शक्र के आगे पीछे तथा दोनों ओर प्रस्थान करते हैं । इस प्रकार विमानस्थ देवराज शक्र पाँच सेनाओं से परिवृत ८४००० सामानिक देवों आदि से संपरिवृत, सब प्रकार की ऋद्धि–के साथ, वाद्य-निनाद के साथ सौधर्मकल्प के बीचोंबीच होता हुआ, दिव्य देव-ऋद्धि उपदर्शित करता हुआ, जहाँ सौधर्मकल्प का उत्तरी निर्याण-मार्ग आता है । वहाँ आकर एक-एक लाख योजन-प्रमाण विग्रहों द्वारा आगे बढ़ता तिर्यक्–असंख्य द्वीपों एवं समुद्रों के बीच से होता हुआ, जहाँ नन्दीश्वर द्वीप है, आग्नेय कोणवर्ती रतिकर पर्वत है, वहाँ आता है ।

फिर शक्रेन्द्र दिव्य देव-ऋद्धि का दिव्य यान-विमान का प्रतिसंहरण करता है–जहाँ भगवान् तीर्थंकर का जन्म-भवन होता है, वहाँ आता है । तीन बार प्रदक्षिणा करता है । तीर्थंकर के जन्म-भवन के–ईशान कोण में अपने दिव्य विमान को भूमितल से चार अंगुल ऊँचा ठहराता है । उस दिव्य-यान से नीचे उतरता है यावत् सब नीचे उतरते है । तत्पश्चात् देवेन्द्र, देवराज शक्र अपने सहवर्ती देव-समुदाय से संपरिवृत, सर्व ऋद्धि-वैभव-समायुक्त, नगाड़ों के गूंजते हुए निर्घोष के साथ, तीर्थंकर थे और उनकी माता थी, वहाँ आता है । देखते ही प्रणाम करता है । प्रदक्षिणा करता है । वैसा कर, हाथ जोड़, अंजलि बाँधे तीर्थंकर की माता को कहता है–रत्नकुक्षिधारिके, जगत्प्रदीपदायिके–आपको नमस्कार हो । आप धन्य, पुण्य एवं कृतार्थ–हैं । मैं देवेन्द्र, देवराज शक्र भगवान् तीर्थंकर का जन्म महोत्सव मनाऊँगा, अतः आप भयभीत मत होना ।' यों कहकर वह तीर्थंकर की माता को अवस्वापिनी निद्रा में सुला देता है । तीर्थंकर-सदृश प्रतिरूपक विकुर्वणा करता है । शक्र फिर पाँच शक्रों की विकुर्वणा करता है–एक शक्र भगवान् तीर्थंकर को हथेलियों के संपुट द्वारा उठाता है, एक छत्र धारण करता है, दो चँवर डुलाते हैं, एक हाथ में वज्र लिये आगे चलता है । तत्पश्चात् देवेन्द्र, देवराज शक्र अन्य अनेक भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिक देवदेवियों से घिरा हुआ, सब प्रकार ऋद्धि से शोभित, उत्कृष्ट, त्वरित देव-गति से चलता हुआ, जहाँ मन्दरपर्वत, पण्डकवन, अभिषेक-शिला एवं अभिषेक-सिंहासन है, वहाँ आता है, पूर्वाभिमुख हो सिंहासन पर बैठता है ।

[२३०] उस काल, उस समय हाथ में त्रिशूल लिये, वृषभ पर सवार, सुरेन्द्र, उत्तरार्धलोकाधिपति, अट्ठाईस लाख विमानों का स्वामी, निर्मल वस्त्र धारण किये देवेन्द्र, देवराज ईशान मन्दर पर्वत पर आता है । शेष वर्णन सौधर्मेन्द्र शक्र के सदृश है । अन्तर इतना है– घण्टा का नाम महाघोषा है । पदातिसेनाधिपति का नाम लघुपराक्रम है, विमानकारी देव का नाम पुष्पक है । उसका निर्याण मार्ग दक्षिणवर्ती है, उत्तरपूर्ववर्ती रतिकर पर्वत है । वह भगवान् तीर्थंकर को वन्दन करता है, नमस्कार करता है, उनकी पर्युपासना करता है । अच्युतेन्द्र पर्यंत बाकी के इन्द्र भी इसी प्रकार आते हैं, उन सबका वर्णन पूर्वानुरूप है । इतना अन्तर है– यथा–

[२३१] सौधर्मेन्द्र शक्र के ८४०००, ईशानेन्द्र के ८०००० सनत्कुमारेन्द्र के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७२०००, माहेन्द्र के ७००००, ब्रह्मेन्द्र के ६००००, लान्तकेन्द्र के ५००००, शुक्रेन्द्र के ४००००, सहस्त्रारेन्द्र के ३००००, आनत-प्राणत-कल्प-द्विकेन्द्र के २०००० तथा आरण-अच्युत-कल्प-द्विकेन्द्र के १०००० सामानिक देव हैं ।

[२३२-२३३] सौधर्मेन्द्र के ३२ लाख, ईशानेन्द्र के २८ लाख, सनत्कुमारेन्द्र के १२ लाख, ब्रह्मलोकेन्द्र के ४ लाख, लान्तकेन्द्र के ५००००, शुक्रेन्द्र के ४००००, सहस्त्रारेन्द्र के ६००००, आनत-प्राणत–के ४०० तथा आरण-अच्युत–के ३०० विमान होते हैं ।

[२३४] पालक, पुष्पक, सौमनस, श्रीवत्स, नन्दावर्त, कामगम, प्रीतिगम, मनोरम, विमल तथा सर्वतोभद्र ये यान-विमानों की विकुर्वणा करनेवाले देवों के अनुक्रम से नाम हैं ।

[२३५] सौधर्मेन्द्र, सनत्कुमारेन्द्र, ब्रह्मलोकेन्द्र, महाशुक्रेन्द्र तथा प्राणतेन्द्र की सुघोषा घण्टा, हरिनिगमेषी पदाति-सेनाधिपति, उत्तरवर्ती निर्याण-मार्ग, दक्षिण-पूर्ववर्ती रतिकर पर्वत है। ईशानेन्द्र, माहेन्द्र, लान्तकेन्द्र, सहस्त्रारेन्द्र तथा अच्युतेन्द्र की महाघोषा घण्टा, लघुपराक्रम पदातिसेनाधिपति, दक्षिणवर्ती निर्याण-मार्ग तथा उत्तर-पूर्ववर्ती रतिकर पर्वत है । इन्द्रों के जितने-जितने सामानिक देव होते हैं, अंगरक्षक देव उनसे चार गुने होते हैं । सबके यान-विमान एक-एक लाख योजन विस्तीर्ण होते हैं तथा उनकी ऊँचाई स्व-स्व-विमान-प्रमाण होती है । सबके महेन्द्रध्वज एक-एक हजार योजन विस्तीर्ण होते हैं । शक्र के अतिरिक्त सब मन्दर पर्वत पर समवसृत होते हैं, भगवान् को वन्दन-नमन करते हैं, पर्युपासना करते हैं ।

[२३६] उस काल, उस समय चमरचंचा राजधानी में, सुधर्मासभा में, चमर नामक सिंहासन पर स्थित असुरेन्द्र, असुरराज चमर अपने ६४००० सामानिक देवों, ३३ त्रायस्त्रिंश देवों, चार लोकपालों, सपरिवार पाँच अग्रमहिषियों, तीन परिषदों, सात सेनाओं, सात सेनापति देवों, ६४००० अंगरक्षक देवों तथा अन्य देवों से संपरिवृत होता हुआ आता है । उसके पदातिसेनाधिपति का नाम द्रुम है, घण्टा ओधस्वरा है, विमान ५०००० योजन विस्तीर्ण है, महेन्द्रध्वज ५०० योजन विस्तीर्ण है, विमानकारी आभियोगिक देव है । बाकी वर्णन पूर्वानुरूप है । उस काल, उस समय असुरेन्द्र, असुरराज बलि उसी तरह मन्दर पर्वत पर समवसृत होता है । उसके सामानिक देव ६०००० हैं, २४०००० आत्मरक्षक देव हैं, महाद्रुम पदाति-सेनाधिपति है, महौघस्वरा घण्टा है । शेष वर्णन जीवाभिगम अनुसार समझना ।

इसी प्रकार धरणेन्द्र आता है । उसके सामानिक देव ६००० हैं, अग्रमहिषियाँ छह हैं, २४००० अंगरक्षक देव हैं, मेघस्वरा घण्टा है, भद्रसेन पदाति-सेनाधिपति है । विमान २५००० योजन विस्तीर्ण है । महेन्द्रध्वज का विस्तार २५० योजन है । असुरेन्द्र वर्जित सभी भवनवासी इन्द्रों का ऐसा ही वर्णन है । असुरकुमारों के ओघस्वरा, नागकुमारों के मेघस्वरा, सुपर्णकुमारों के हंसस्वरा, विद्युत्कुमारों के तौश्चस्वरा, अग्निकुमारों के मंजुस्वरा, दिक्कुमारों के मंजुघोषा, उदधिकुमारों के सुस्वरा, द्वीपकुमारों के मधुरस्वरा, वायुकुमारों के नन्दिस्वरा तथा स्तनितकुमारों के नन्दिघोषा नामक घण्टाएँ हैं ।

[२३७] चमरेन्द्र के चौसठ एवं बलीन्द्र के साठ हजार सामानिक देव हैं । असुरेन्द्रों को छोड़कर धरणेन्द्र आदि इन्द्रों के छह-छह हजार सामानिक देव हैं । सामानिक देवों से चार चार गुने अंगरक्षक देव हैं ।

[२३८] चमरेन्द्र को छोड़कर दाक्षिणात्य भवनपति इन्द्रों के भद्रसेन और बलीन्द्र को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छोड़कर उत्तरीय भवनपति इन्द्रों के दक्ष नामक पदाति-सेनाधिपति है । इसी प्रकार व्यन्तरेन्द्रों तथा ज्योतिष्केन्द्रों का वर्णन है । उनके ४००० सामानिक देव, चार अग्रमहिषियाँ तथा १६००० अंगरक्षक देव हैं, विमान १००० योजन विस्तीर्ण तथा महेन्द्रध्वज १२५ योजन विस्तीर्ण है । दाक्षिणात्यों की मंजुस्वरा तथा उत्तरीयों की मंजुघोषा घण्टा है । उनके पदाति-सेनाधिपति तथा विमानकारी–आभियोगिक देव हैं । ज्योतिष्केन्द्रों–चन्द्रों की सुस्वरा एवं सूर्यों की सुस्वरनिर्घोषा नामक घण्टाएं हैं ।

[२३९] देवेन्द्र, देवराज, महान् देवाधिप अच्युत अपने आभियोगिक देवों को बुलाता है, उनसे कहता है–देवानुप्रियो ! शीघ्र ही महार्थ, महार्घ, महार्ह, विपुल–तीर्थंकराभिषेक उपस्थापित करो– । यह सुनकर वे आभियोगिक देव हर्षित एवं परिपुष्ट होते हैं । वे ईशानकोण में जाते हैं । वैक्रियसमुद्घात से १००८ स्वर्णकलश, १००८ रजतकलश–इसी प्रकार मणिमय, स्वर्ण-रजतमय, स्वर्णमणिमय, रजत-मणिमय, स्वर्ण-रजतमणिमय, भौमेय, चन्दन ये सब कलश तथा १००८-१००८ झारियाँ, दर्पण, थाल, पात्रियाँ, सुप्रतिष्ठक, रत्नकरंडक, वातकरंडक, पुष्पचंगेरी, पुष्प-पटलों, १००८-१००८ सिंहासन, तैल-समुद्गक, यावत् सरसों के समुद्गक, १००८ तालवृन्त तथा १००८ धूपदान–की विकुर्वणा करते हैं । स्वाभाविक एवं विकुर्वित कलशों से धूपदान पर्यन्त सब वस्तुएँ लेकर, क्षीरोद समुद्र, आकर क्षीररूप उदक ग्रहण करते हैं । उत्पल, पद्म, आदि लेते हैं । पुष्करोद समुद्र से जल आदि लेते हैं । समयक्षेत्र–पुष्करवरद्वीपार्ध के भरत, ऐरवत के मागध आदि तीर्थों का जल तथा मृत्तिका लेते हैं । गंगा आदि महानदियों का जल एवं मृतिका ग्रहण करते हैं । फिर क्षुद्र हिमवान् पर्वत से तुवर आदि सब कषायद्रव्य, पुष्प, सुगन्धित पदार्थ, मालाएँ, औषधियाँ तथा सफेद सरसों लेते हैं । उन्हें लेकर पद्मद्रह से उसका जल एवं कमल आदि ग्रहण करते हैं ।

इसी प्रकार समस्त कुलपर्वतों, वृत्तवैताढ्य पर्वतों, सब महाद्रहों, समस्त क्षेत्रों, सर्व चक्रवर्ति विजयों, वक्षस्कार पर्वतों, अन्तर-नदियों से जल एवं मृत्तिका लेते हैं । कुरु से पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्व भरतार्ध, पश्चिम भरतार्ध आदि स्थानों से सुदर्शन–के भद्रशाल वन पर्यन्त सभी स्थानों से समस्त कषायद्रव्य एवं सफेद सरसों लेते हैं । इसी प्रकार नन्दनवन से सर्वविध कषायद्रव्य, सफेद सरसों, सरस–चन्दन तथा दिव्य पुष्पमाला लेते हैं । इसी भाँति सौमनस एवं पण्डक वन से सर्व-कषाय-द्रव्य पुष्पमाला एवं दर्दर और मलय पर्वत पर उद्भूत सुरभिमय पदार्थ लेते हैं । ये सब वस्तुएँ लेकर एक स्थान पर मिलते हैं । तीर्थंकर के पास आकर महार्थ तीर्थंकराभिषेकोपयोगी क्षीरोदक आदि वस्तुएँ अच्युतेन्द्र के संमुख रखते हैं।

[२४०] देवेन्द्र अच्युत अपने १०००० सामानिक देवों, ३३ त्रायस्त्रिंश देवों, चार लोकपालों, तीन परिषदों, सात सेनाओं, सात सेनापति-देवों तथा ४०००० अंगरक्षक देवों से परिवृत होता हुआ स्वाभाविक एवं विकुर्वित उत्तम कमलों पर रखे हुए, सुगन्धित, उत्तम जल से परिपूर्ण, चन्दन से चर्चित गलवे में मोली बाँधे हुए, कमलों एवं उत्पलों से ढँके हुए, सुकोमल हथेलियों पर उठाये हुए १००८ सोने के कलशों यावत् १००८ मिट्टी के कलशों, के सब प्रकार के जलों, मृत्तिकाओं, कसैले पदार्थों, औषधियों एवं सफेद सरसों द्वारा सब प्रकार की ऋद्धि-वैभव के साथ तुमुल वाद्यध्वनिपूर्वक भगवान् तीर्थंकर का अभिषेक करता है। अच्युतेन्द्र द्वारा अभिषेक किये जाते समय अत्यन्त हर्षित एवं परितुष्ट अन्य इन्द्र आदि देव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छात्र, चँवर धूपपान, पुष्प, सुगन्धित पदार्थ, वज्र, त्रिशूल हाथ में लिये, अंजलि बाँधे खड़े रहते हैं । कतिपय देव पण्डकवन के मार्गों में, जल का छिड़काव करते हैं, सम्मार्जन करते हैं—उपलिप्त करते हैं । यों उसे शुचि एवं स्वच्छ बनाते हैं, सुगन्धित धूममय बनाते हैं ।

कई एक वहाँ चाँदी बरसाते हैं । कई स्वर्ण, रत्न, हीरे, गहने, पत्ते, फूल, फल, बीज, मालाएँ, गन्ध, वर्ण तथा चूर्ण—बरसाते हैं । कई एक मांगलिक प्रतीक के रूप में अन्य देवों को रजत भेंट करते हैं, यावत् चूर्ण भेंट करते हैं । कई एक तत्, वितत, घन तथा कई एक शुषिर—आदि चार प्रकार के वाद्य बजाते हैं । कई एक उत्क्षिप्त, पादात्त, मंदाय, आदि के प्रयोग द्वारा धीरे-धीरे गाये जाते तथा रोचितावसान—पर्यन्त समुचितनिर्वाह्युक्त गेय—गाते हैं । कई एक अञ्चित, द्रुत, आरभट तथा भसोल नामक चार प्रकार का नृत्य करते हैं । कई दार्ष्टान्तिक, प्रातिश्रुतिक, सामान्यतोविनिपातिक एवं लोकमध्यावसानिक—चार प्रकार का अभिनय करते हैं । कई बत्तीस प्रकार की नाट्य-विधि उपदर्शित करते हैं । कई उत्पात-निपात, निपातोत्पात, संकुचित-प्रसारित तथा भ्रान्त-संभ्रान्त, वैसी अभिनयशून्य गात्रविक्षेपमात्र—नाट्यविधि उपदर्शित करते हैं । कई ताण्डव, कई लास्य नृत्य करते हैं ।

कई एक अपने को पीन बनाते हैं, प्रदर्शित करते हैं, कई एक बूत्कार करते हैं—आहनन करते हैं, कई एक वल्गन करते हैं, कई सिंहनाद करते हैं, कई घोड़ों की ज्यों हिनहिनाते हैं, कई हाथियों की ज्यों गुलगुलाते हैं, कई रथों की ज्यों घनघनाते हैं, कई एक आगे से मुख पर चपत लगाते हैं, कई एक पीछे से मुख पर चपत लगाते हैं, कई एक अखाड़े में पहलवान की ज्यों पैंतरे बदलते हैं, कई एक पैर से भूमि का आस्फोटन करते हैं, कई हाथ से भूमि का आहनन करते हैं, कई जोर-जोर से आवाज लगाते हैं । कई हुंकार करते हैं । कई पूत्कार करते हैं । कई थक्कार करते हैं, कई अवपतित होते हैं, कई उत्पतित होते हैं, कई परिपतित होते हैं, कई ज्वलित होते हैं, कई तप्त होते हैं, कई प्रतप्त होते हैं, कई गर्जन करते हैं । कई बिजली की ज्यों चमकते हैं । कई वर्षा के रूप में परिणत होते हैं । कई वातूल की ज्यों चक्कर लगाते हैं । कई अत्यन्त प्रमोदपूर्वक कहकहाहट करते हैं । कई लटकते होठ, मुँह बाये, आँखें फाड़े—बेतहाशा नाचते हैं । कई चारों ओर दौड़ लगाते हैं ।

[२४१] सपरिवार अच्युतेन्द्र विपुल, बृहत् अभिषेक-सामग्री द्वारा तीर्थंकर का अभिषेक करता है । अभिषेक कर वह हाथ जोड़ता है, 'जय-विजय' शब्दों द्वारा भगवान् की वर्धापना करता है, 'जय-जय' शब्द उच्चारित करता है । वैसा कर वह रोएँदार, सुकोमल, सुरभित, काषायित, बिभीतक, आमलक आदि कसैली वनौषधियों से रंगे हुए वस्त्र—द्वारा भगवान् का शरीर पोंछता है । उनके अंगों पर ताजे गोशीर्ष चन्दन का लेप करता है । बारीक और हलके, नेत्रों को आकृष्ट करनेवाले, उत्तम वर्ण एवं स्पर्शयुक्त, घोड़े के मुख की लार के समान कोमल, अत्यन्त स्वच्छ, श्वेत, स्वर्णमय तारों से अन्तःखचित दो दिव्य वस्त्र—एवं उत्तरीय उन्हें धारण कराता है । कल्पवृक्ष की ज्यों अलंकृत करता है । नाट्य-विधि प्रदर्शित करता है, उजले, चिकने, रजतमय, उत्तम रसपूर्ण चावलों से भगवान् के आगे आठ-आठ मंगल-प्रतीक आलिखित करता है, जैस—

[२४२] १. दर्पण, २. भद्रासन, ३. वर्धमान, ४. वर कलश, ५. मत्स्य, ६. श्रीवत्स, ७. स्वस्तिक तथा ८. नन्द्यावर्त ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२४३] पूजोपचार करता है । गुलाब, मल्लिका, आदि सुगन्धयुक्त फूलों को कोमलता से हाथ में लेता है । वे सहज रूप में उसकी हथेलियों से गिरते हैं, उन पँचरंगे पुष्पों का घुटने-घुटने जितना ऊँचा एक विचित्र ढेर लग जाता है । चन्द्रकान्त आदि रत्न, हीरे तथा नीलम से बने उज्ज्वल दंडयुक्त, स्वर्ण मणि एवं रत्नों से चित्रांकित, काले अगर, उत्तम कुन्दरुक्क, लोबान एवं धूप से निकलती श्रेष्ठ सुगन्ध से परिव्याप्त, धूम-श्रेणी छोड़ते हुए नीलम-निर्मित धूपदान को पकड़ कर सावधानी से, धूप देता है । जिनवरेन्द्र के सम्मुख सात-आठ कदम चलकर, हाथ जोड़कर जागरूक शुद्ध पाठयुक्त, एक सौ आठ स्तुति करता है । वैसा कर वह अपना बायां घुटना ऊँचा उठाता है, दाहिना घुटना भूमितल पर रखता है, हाथ जोड़ता है, कहता है—हे सिद्ध, बुद्ध, नीरज, श्रमण, समाहित, कृत-कृत्य ! समयोगिन् ! शल्य-कर्तन, निर्भय, नीरागदोष, निर्मम, निःशल्य, मान-मूरण, गुण-रत्न-शील-सागर, अनन्त, अप्रमेय, धर्म-साम्राज्य के भावी उत्तम चातुरन्त-चक्रवर्ती धर्मचक्र के प्रवर्तक ! अर्हत्, आपको नमस्कार हो। इन शब्दों में वह भगवान् को वन्दन करता है, नमन करता है । पर्युपासना करता है ।

अच्युतेन्द्र की ज्यों प्राणतेन्द्र यावत् ईशानेन्द्र, भवनपति, वानव्यन्तर एवं ज्योतिष्केन्द्र सभी इसी प्रकार अपने-अपने देव-परिवार सहित अभिषेक-कृत्य करते हैं । देवेन्द्र, देवराज ईशान पांच ईशानेन्द्रों की विकुर्वणा करता है—एक ईशानेन्द्र तीर्थंकर को उठाकर पूर्वाभिमुख होकर सिंहासन पर बैठता है । एक छत्र धारण करता है । दो ईशानेन्द्र चँवर डुलाते हैं । एक ईशानेन्द्र हाथ में त्रिशूल लिये आगे खड़ा रहता है । तब देवेन्द्र देवराज शक्र अपने आभियोगिक देवों को बुलाता है । अच्युतेन्द्र की ज्यों अभिषेक-सामग्री लाने की आज्ञा देता है । फिर देवेन्द्र, देवराज शक्र भगवान् तीर्थंकर की चारों दिशाओं में शंख के चूर्ण की ज्यों विमल, गहरे जमे हुए, दधि-पिण्ड, गो-दुग्ध के झाग एवं चन्द्र-ज्योत्स्ना की ज्यों सफेद, चित्त को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप, प्रतिरूप, वृषभों—की विकुर्वणा करता है । उन चारों बैलों के आठ सींगों में से आठ जलधाराएँ निकलती हैं, तीर्थंकर के मस्तक पर निपतित होती हैं । अपने ८४००० सामानिक आदि देव-परिवार से परिवृत देवेन्द्र, देवराज शक्र तीर्थंकर का अभिषेक करता है ! वन्दन नमन करता है, पर्युपासना करता है ।

[२४४] तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्र पाँच शक्रों की विकुर्वणा करता है । यावत् एक शक्र वज्र हाथ में लिये आगे खड़ा होता है । फिर शक्र अपने ८४००० सामानिक देवों, भवनपति यावत् वैमानिक देवों, देवियों से परिवृत, सब प्रकार की ऋद्धि से युक्त, वाद्य-ध्वनि के बीच उत्कृष्ट त्वरित दिव्य गति द्वारा, जहाँ भगवान् तीर्थंकर का जन्म-भवन था वहाँ आता है । तीर्थंकर को उनकी माता की बगल में स्थापित करता है । तीर्थंकर के प्रतिरूपक को, प्रतिसंहृत करता है । भगवान् तीर्थंकर की माता की अवस्वापिनी निद्रा को, जिसमें वह सोई होती है, प्रतिसंहृत कर लेता है । भगवान् तीर्थंकर के उच्छीर्षक मूल में—दो बड़े वस्त्र तथा दो कुण्डल रखता है । तपनीय-स्वर्ण-निर्मित झुम्बनक, सोने के पातों से परिमण्डित, नाना प्रकार की मणियों तथा रत्नों से बने तरह-तरह के हारों, अर्धहारों, से उपशोभित श्रीदामगण्ड भगवान् के ऊपर तनी चाँदनी में लटकाता है, जिसे भगवान् तीर्थंकर निर्निमेष दृष्टि से—उसे देखते हुए सुखपूर्वक अभिरमण करते हैं ।

तदनन्तर देवेन्द्र देवराज शक्र वैश्रमण देव को बुलाकर कहता है—शीघ्र ही ३२-३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करोड़ रौप्य-मुद्राएँ, स्वर्ण-मुद्राएं, वर्तुलाकार लोहासन, भद्रासन भगवान् तीर्थंकर के जन्म-भवन में लाओ । वैश्रमण देव शक्र के आदेश को विनयपूर्वक स्वीकार करता है । जृम्भक देवों को बुलाता है । बुलाकर शक्र की आज्ञा से सूचित करता है । वे शीघ्र ही बत्तीस करोड़ रौप्य-मुद्राएँ आदि तीर्थंकर के जन्म-भवन में ले आते हैं । वैश्रमण देव को सूचित करते हैं । तब वैश्रमण देव देवेन्द्र देवराज शक्र को अवगत कराता है । तत्पश्चात् देवेन्द्र, देवराज शक्र अपने आभियोगिक देवों को बुलाकर कहता है—देवानुप्रियो ! शीघ्र ही तीर्थंकर के जन्म-नगर के तिकोने स्थानों, तिराहों, चौराहों एवं विशाल मार्गों में जोर-जोर से उद्घोषित करते हुए कहो—'बहुत से भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा वैमानिक देव-देवियों ! आप सुनें—आप में से जो कोई तीर्थंकर या उनकी माता के प्रति अपने मन में अशुभ भाव लायेगा—आर्यक मंजरी की ज्यों उसके मस्तक के सौ टुकड़े हो जायेंगे ।'

वे आभियोगिक देव देवेन्द्र देवराज शक्र का आदेश स्वीकार करते हैं । वहाँ से प्रतिनिष्क्रान्त होते हैं—वे शीघ्र ही तीर्थंकर के जन्म-नगर में आते हैं । वहाँ पूर्वोक्त घोषण करते है । ऐसी घोषणा कर वे आभियोगिक देव देवराज शक्र को, उनके आदेश का पालन किया जा चुका है, ऐसा अवगत कराते हैं । तदनन्तर बहुत से भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा वैमानिक देव भगवान् तीर्थंकर का जन्मोत्सव मनाते हैं । तत्पश्चात् नन्दीश्वर द्वीप आकर अष्टदिवसीय विराट् जन्म-महोत्सव आयोजित करते हैं । वैसा करके जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में चले जाते हैं ।

वक्षस्कार-५-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

वक्षस्कार-६

[२४५] भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप के चरम प्रदेश लवणसमुद्र का स्पर्श करते हैं ? हाँ, गौतम ! करते हैं । जम्बूद्वीप के जो प्रदेश लवणसमुद्र का स्पर्श करते हैं, क्या वे जम्बूद्वीप के ही प्रदेश कहलाते हैं या लवणसमुद्र के ? गौतम ! वे जम्बूद्वीप के ही प्रदेश कहलाते हैं। इसी प्रकार लवणसमुद्र के प्रदेशों की बात है । भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप के जीव मरकर लवणसमुद्र में उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! कतिपय उत्पन्न होते हैं, कतिपय उत्पन्न नहीं होते । इसी प्रकार लवणसमुद्र के जीवों के विषय में जानना ।

[२४६] खण्ड, योजन, वर्ष, पर्वत, कूट, तीर्थ, श्रेणियां, विजय, द्रह तथा नदियां—इनका प्रस्तुत सूत्र में वर्णन है ।

[२४७] भगवन् ! जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के प्रमाण जितने—भरतक्षेत्र के बराबर खण्ड किये जाएं तो वे कितने होते हैं ? गौतम ! खण्डगणित के अनुसार वे १९० होते है । भगवन् ! योजनगणित के अनुसार जम्बूद्वीप का कितना प्रमाण है ?

[२४८] गौतम ! जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल-प्रमाण ७,९०,५६,९४,१५० योजन है ।

[२४९] भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने वर्ष—क्षेत्र हैं ? गौतम ! सात, —भरत, ऐरावत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष तथा महाविदेह । जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् छह वर्षधर पर्वत, एक मन्दर पर्वत, एक चित्रकूट पर्वत, एक विचित्रकूट पर्वत, दो यमक पर्वत, दो सौ काञ्चन पर्वत, बीस वक्षस्कार पर्वत, चौतीस दीर्घ वैताढ्य पर्वत तथा चार वृत्त वैताढ्य पर्वत हैं । यों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूद्वीप में पर्वतों की कुल संख्या २६९ है । जम्बूद्वीप में ५६ वर्षधरकूट, ९६ वक्षस्कारकूट, ३०६ वैताढ्यकूट तथा नौ मन्दरकूट हैं । इस प्रकार कुल ४६७ कूट होते हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् भरतक्षेत्र में कितने तीर्थ बतलाये गये हैं ? गौतम ! तीन, –मागधतीर्थ, वरदामतीर्थ तथा प्रभासतीर्थ । इसी तरह ऐरवतक्षेत्र और महाविदेहक्षेत्र में भी जानना । यों जम्बूद्वीप के चौतीस विजयों में कुल १०२ तीर्थ हैं । जम्बूद्वीप में अड़सठ विद्याधर-श्रेणियाँ तथा अड़सठ आभियोगिक-श्रेणियाँ हैं । इस प्रकार कुल १३६ श्रेणियाँ हैं। जम्बूद्वीप के अन्तर्गत ३४-३४ चक्रवर्तिविजय, राजधानियाँ, तिमिस्र गुफाएँ, खण्डप्रपात गुफाएँ, कृत्तमालक देव, नृत्तमालक देव तथा ऋषभकूट बतलाये गये हैं ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् महाद्रह कितने बतलाये गये हैं ? गौतम ! सोलह । जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् १४ महानदियाँ वर्षधर पर्वतों से निकलती हैं तथा ७६ महानदियाँ कुण्डों से निकलती हैं । कुल मिलाकर ९० महानदियाँ हैं । भरत तथा ऐरवत में चार महानदियाँ हैं– गंगा, सिन्धु, रक्ता तथा रक्तवती । एक एक महानदी में चौदह-चौदह हजार नदियां मिलती हैं। वे पूर्वी एवं पश्चिमी लवण समुद्र में मिलती हैं । भरतक्षेत्र में गंगा महानदी पूर्वी लवणसमुद्र में तथा सिन्धु महानदी पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती है । ऐरावत क्षेत्र में रक्ता महानदी पूर्वी लवण समुद्र में तथा रक्तवती महानदी पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती है । यों जम्बूद्वीप के भरत तथा ऐरावत क्षेत्र में कुल ५६००० नदियाँ हैं ।

जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् हैमवत एवं हैरण्यवत क्षेत्र में चार महानदियाँ हैं–रोहिता, रोहितांशा, सुवर्णकूला तथा रूप्यकूला । प्रत्येक महानदी में अट्ठाईस-अट्ठाईस हजार नदियाँ मिलती हैं । वे पूर्वी एवं पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती हैं । हैमवत में रोहिता पूर्वी लवणसमुद्र में तथा रोहितांशा पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती है । हैरण्यवत में सुवर्णकूला पूर्वी लवणसमुद्र में तथा रूप्यकूला पश्चिमी लवण समुद्र में मिलती है । इस प्रकार जम्बूद्वीप के हैमवत तथा हैरण्यवत क्षेत्र में कुल ११२००० नदियाँ है ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् हरिवर्ष तथा रम्यकवर्ष में कितनी महानदियाँ बतलाई गई हैं ? गौतम ! चार, –हरिसलिला, हरिकान्ता, नरकान्ता तथा नारीकान्ता । प्रत्येक महानदी में छप्पन-छप्पन हजार नदियाँ मिलती हैं । हरिवर्ष में हरिसलिला पूर्वी लवणसमुद्र में तथा हरिकान्ता पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती है । रम्यकवर्ष में नरकान्ता पूर्वी लवणसमुद्र में तथा नारीकान्ता पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती है । यों जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् हरिवर्ष तथा रम्यकवर्ष में कुल २२४००० नदियाँ है । भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् महाविदेह क्षेत्र में दो महानदियाँ हैं–शीता एवं शीतोदा । प्रत्येक महानदी में ५३२००० नदियाँ मिलती हैं । शीता पूर्वी लवणसमुद्र में तथा शीतोदा पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती है ।

वक्षस्कार-६-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

वक्षस्कार-७

[२५०] भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने चन्द्रमा उद्योत करते थे ? उद्योत करते हैं एवं करते रहेंगे ? कितने सूर्य तपते थे ? तपते हैं और तपते रहेंगे ? इत्यादि प्रश्न । गौतम ! जम्बूद्वीप में दो चन्द्र उद्योत करते थे । करते हैं तथा करेंगे । दो सूर्य तपते थे, तपते हैं और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तपते रहेंगे । ५६ नक्षत्र योग करते थे, करते हैं एवं करते रहेंगे । १७६ महाग्रह परिभ्रमण करते थे, करते हैं तथा करते रहेंगे ।

[२५१] १३३९५० कोडाकोडी तारे शोभित थे शोभित हैं और शोभित होंगे ।

[२५२] भगवन् ! सूर्य-मण्डल कितने हैं ? गौतम ! १८४, जम्बूद्वीप में १८० योजन क्षेत्र का अवगाहन कर आगत क्षेत्र में ६५ सूर्य-मण्डल हैं । लवण समुद्र में ३३० योजन क्षेत्र का अवगाहन कर आगत क्षेत्र में ११९ सूर्यमण्डल हैं । इस प्रकार जम्बूद्वीप तथा लवणसमुद्र में कुल १८४ सूर्य-मण्डल होते हैं ।

[२५३] भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल से सर्वबाह्य सूर्य-मण्डल कितने अन्तर पर है ? गौतम ! ५१० योजन के अन्तर पर है ।

[२५४] भगवन् ! एक सूर्य-मण्डल से दूसरे सूर्य-मण्डल का अबाधित–कितना अन्तर है ? गौतम ! दो योजन का है ।

[२५५] भगवन् ! सूर्य-मण्डल का आयाम, विस्तार, परिक्षेप तथा बाहल्य–कितना है ? गौतम ! लम्बाई-चौड़ाई ४८/६१ योजन, परिधि उससे कुछ अधिक तीन गुणी तथा मोटाई २४/६१ योजन है ।

[२५६] भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल जम्बूद्वीप स्थित मन्दर पर्वत से कितनी दूरी पर है ? गौतम ! ४४८२० योजन की दूरी पर है । सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल से दूसरा सूर्य-मण्डल ४४८२२–४८/६१ योजन की दूरी पर है । सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल से तीसरा सूर्य-मण्डल ४४८२५–३५/६१ योजन की दूरी पर है । यों प्रति दिन रात एक-एक मण्डल के परित्यागरूप क्रम से निष्क्रमण करता हुआ–सूर्य तदनन्तर मण्डल से तदनन्तर मण्डल–संक्रमण करता हुआ एक-एक मण्डल पर २–४८/६१ योजन दूरी की अभिवृद्धि करता हुआ सर्वबाह्य मण्डल पर पहुँच कर गति करता है । सर्वबाह्य सूर्य-मण्डल जम्बूद्वीप-स्थित मन्दर पर्वत से ४५३३० योजन की दूरी पर है । सर्वबाह्य सूर्य-मण्डल से दूसरा बाह्य सूर्य-मण्डल ४५३२७ –१३/६१ योजन की दूरी पर है । सर्वबाह्य सूर्य-मण्डल से तीसरा बाह्य सूर्य-मण्डल ४५३२४ –२६/६१ योजन की दूरी पर है । इस प्रकार अहोरात्र-मण्डल में परित्यागरूप क्रम से जम्बूद्वीप में प्रविष्ट होता हुआ सूर्य तदनन्तर मण्डल में तदनन्तर मण्डल पर संक्रमण करता हुआ–एक-एक मण्डल पर २–४८/६१ योजन की अन्तर-वृद्धि कम करता हुआ सर्वाभ्यन्तर-मण्डल पर पहुँच कर गति करता है ।

[२५७] भगवन् ! जम्बूद्वीप में सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल का लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी है ? गौतम ! लम्बाई-चौड़ाई ९९६४० योजन तथा परिधि कुछ अधिक ३१५०८९ योजन है । द्वितीय आभ्यन्तर सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई ९९६४५–३५/६१ योजन तथा परिधि ३१५१०७ योजन है । तृतीय आभ्यन्तर सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई ९९६५१–६/६१ योजन तथा परिधि ३१५१२५ योजन है । उक्त क्रम से निष्क्रमण करता हुआ सूर्य पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल पर उपसंक्रान्त होता हुआ–एक-एक मण्डल पर ५–३५/६१ योजन की विस्तार-वृद्धि करता हुआ तथा अठारह योजन की परिक्षेप-वृद्धि करता हुआ सर्वबाह्य मण्डल पर पहुँचता है । सर्वबाह्य सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई १००६६० योजन तथा परिधि ३१८३१५ योजन है । द्वितीय बाह्य सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई १००६५४–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६/६१ योजन एवं परिधि ३१८२९७ योजन है । तृतीय बाह्य सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई १००६४८–५२/६१ योजन तथा परिधि ३१८२७९ योजन है । यों पूर्वोक्त क्रम के अनुसार प्रवेश करता हुआ सूर्य पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल पर जाता हुआ एक-एक मण्डल पर ५–३५/६१ योजन की विस्तार-वृद्धि कम करता हुआ, अठारह-अठारह योजन की परिधि-वृद्धि कम करता हुआ सर्वाभ्यन्तर-मण्डल पर पहुँचता है ।

[२५८] भगवन् ! जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर–मण्डल का उपसंक्रमण कर गति कता है, तो वह एक-एक मुहूर्त्त में कितने क्षेत्र को गमन करता है ? गौतम ! वह एक-एक मुहूर्त्त में ५२५१–२९/६० योजन पार करता है । उस समय सूर्य यहाँ भरतक्षेत्र-स्थित मनुष्यों को ४७२६३–२१/६० योजन की दूरी से दृष्टिगोचर होता है । वहाँ से निकलता हुआ सूर्य नव संवत्सर का प्रथम अयन बनाता हुआ प्रथम अहोरात्र में सर्वाभ्यन्तर मण्डल से दूसरे मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है । दूसरे मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है, तब वह एक-एक मुहूर्त्त में ५२५१–४७/६० योजन क्षेत्र पार करता है । तब यहाँ स्थित मनुष्यों को ४७१७९–५७/६० योजन तथा ६० भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ६१ भागों में से १९ भाग योजनांश की दूरी से सूर्य दृष्टिगोचर होता है । इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ सूर्य पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल को संक्रान्त करता हुआ १८/६० योजन मुहूर्त्त-गति बढ़ाता हुआ, ८४ योजन न्यून पुरुषछायापरिमित कम करता हुआ सर्वबाह्य मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है ।

भगवन् ! जब सूर्य सर्वबाह्य मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है, तब वह प्रति मुहूर्त्त कितना क्षेत्र गमन करता है ? गौतम ! वह प्रति मुहूर्त्त ५३०५–१५/६० योजन गमन करता है– । तब यहाँ स्थित मनुष्यों को वह ३१८३१–३०/६० योजन की दूरी से दृष्टिगोचर होता है । ये प्रथम छह मास हैं । सूर्य दूसरे छह मास के प्रथम अहोरात्र में सर्वबाह्य मण्डल से दूसरे बाह्य मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है । जब सूर्य दूसरे बाह्य मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तो वह ५३०४–३९/६० योजन प्रति मुहूर्त्त गमन करता है। तब यहाँ स्थित मनुष्यों को वह ३१९१६–३९/६० योजन तथा ६० भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ६१ भागों में से ६० भाग योजनांश की दूरी से दृष्टिगोचर होता है। यों पूर्वोक्त क्रम से प्रवेश करता हुआ सूर्य पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल पर संक्रमण करता हुआ, प्रतिमण्डल पर निष्क्रमण क्रम से गति करता है । ये दूसरा छह मास है । यह आदित्य-संवत्सर है ।

[२५९] भगवन् ! जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है, तब–उस समय दिन कितना बड़ा होता है, रात कितनी बड़ी होती है ? गौतम ! उत्तमावस्थाप्राप्त, उत्कृष्ट–१८ मुहूर्त्त का दिन होता है, जघन्य १२ मुहूर्त्त की रात होती है । वहाँ से निष्क्रमण करता हुआ सूर्य नये संवत्सर में प्रथम अहोरात्र में दूसरे आभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है । जब सूर्य दूसरे आभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब २/६१ मुहूर्तांश कम १८ मुहूर्त्त का दिन होता है, २/६१ मुहूर्तांश अधिक १२ मुहूर्त्त की रात होती है । इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ, पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल का संक्रमण करता हुआ सूर्य प्रत्येक मण्डल में दिवस-क्षेत्र–दिवस-परिमाण को २/६१ मुहूर्तांश कम करता हुआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा रात्रि-परिमाण को २/६१ मुहूर्ताश बढ़ाता हुआ सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है । जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल से सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब सर्वाभ्यन्तर मण्डल का परित्याग कर १८३ अहोरात्र में दिवस-क्षेत्र में ३६६ संख्या-परिमित १/६१ मुहूर्ताश कम कर तथा रात्रि-क्षेत्र में इतने ही मुहूर्ताश बढ़ाकर गति करता है।

भगवन् ! जब सूर्य सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब दिन कितना बड़ा होता है, रात कितनी बड़ी होती है ? गौतम ! तब रात उत्तमावस्थाप्राप्त, उत्कृष्ट—१८ मुहूर्त्त की होती है, दिन जघन्य—१२ मुहूर्त्त का होता है । ये प्रथम छः मास हैं । वहाँ से प्रवेश करता हुआ सूर्य दूसरे छः मास के प्रथम अहोरात्र में दूसरे बाह्य मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है । जब सूर्य दूसरे बाह्य मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है, तब २/६१ मुहूर्ताश कम १८ मुहूर्त्त की रात होती है २/६१ मुहूर्ताश अधिक १२ मुहूर्त्त का दिन होता है । इस प्रकार पूर्वोक्त क्रम से प्रवेश करता हुआ सूर्य पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल का संक्रमण करता हुआ रात्रि-क्षेत्र में एक-एक मण्डल में २/६१ मुहूर्ताश कम करता हुआ तथा दिवस-क्षेत्र में २/६१ मुहूर्ताश बढ़ाता हुआ सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है । जब सूर्य सर्वबाह्य मण्डल से सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब वह सर्वबाह्य मण्डल का परित्याग कर १८३ अहोरात्र में रात्रि-क्षेत्र में ३६६ संख्या-परिमित १/६१ मुहूर्ताश कम कर तथा दिवस-क्षेत्र में उतने ही मुहूर्ताश अधिक कर गति करता है । ये द्वितीय छह मास हैं । यह आदित्य-संवत्सर है ।

[२६०] भगवन् ! जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तो उसके ताप-क्षेत्र की स्थिति किस प्रकार है ? गौतम ! तब ताप-क्षेत्र की स्थिति ऊर्ध्वमुखी कदम्ब-पुष्प के संस्थान जैसी होती है—वह भीतर में संकीर्ण तथा बाहर विस्तीर्ण, भीतर से वृत्त तथा बाहर से पृथुल, भीतर अंकमुख तथा बाहर गाड़ी की धुरी के अग्रभाग जैसी होती है । मेरु के दोनों ओर उसकी दो बाहाएँ हैं—उनमें वृद्धि-हानि नहीं होती । उनकी लम्बाई ४५००० योजन है । उसकी दो बाहाएँ अनवस्थित हैं । वे सर्वाभ्यन्तर तथा सर्वबाह्य के रूप में अभिहित हैं । उनमें सर्वाभ्यन्तर बाहा की परिधि मेरु पर्वत के अन्त में ९४८६—९/१० योजन है । जो मेरु पर्वत की परिधि है, उसे ३ से गुणित किया जाए । गुणनफल को दस का भाग दिया जाए । उसका भागफल इस परिधि का परिमाण है । उसकी सर्वबाह्य बाहा की परिधि लवणसमुद्र के अन्त में ९४८६८—४/१० योजन-परिमित है । जो जम्बूद्वीप की परिधि है, उसे ३ से गुणित किया जाए, गुणनफल को १० से विभक्त किया जाए । वह भागफल इस परिधि का परिमाण है । उस समय ताप-क्षेत्र की लम्बाई ७८३३३—१/३ योजन होती है ।

[२६१] मेरु से लेकर जम्बूद्वीप पर्यन्त ४५००० योजन तथा लवणसमुद्र के विस्तार २००००० योजन के १/६ भाग ३३३३३—१/३ योजन का जोड़ ताप-क्षेत्र की लम्बाई है। उसका संस्थान गाड़ी की धुरी के अग्रभाग जैसा होता है ।

[२६२] भगवन् ! तब अन्धकार-स्थिति कैसी होती है ? गौतम ! अन्धकार-स्थिति तब ऊर्ध्वमुखी कदम्ब पुष्प का संस्थान लिये होती है । वह भीतर संकीर्ण, बाहर विस्तीर्ण इत्यादि होती है । उसकी सर्वाभ्यन्तर बाहा की परिधि मेरु पर्वत के अन्त में ६३२४—६/१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योजन-प्रमाण है । जो पर्वत की परिधि है, उसे दो से गुणित किया जाए, गुणनफल को दस से विभक्त किया जाए, उसका भागफल इस परिधि का परिमाण है । उसकी सर्वबाह्य बाहा की परिधि लवणसमुद्र के अन्त में ६३२४५-६/१० योजन-परिमित है । गौतम ! जो जम्बूद्वीप की परिधि है, उसे दो से गुणित किया जाए, गुणनफल को दस से विभक्त किया जाए, उसका भागफल इस परिधि का परिमाण है । तब अन्धकार क्षेत्र का आयाम, ७८३३३-१/३ योजन है । जब सूर्य सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है तो ताप-क्षेत्र का संस्थान ऊर्ध्वमुखी कदम्ब-पुष्प संस्थान जैसा है । अन्य वर्णन पूर्वानुरूप है । इतना अन्तर है-पूर्वानुपूर्वी के अनुसार जो अन्धकार-संस्थिति का प्रमाण है, वह इस पश्चानुपूर्वी के अनुसार ताप-संस्थिति का जानना । सर्वाभ्यन्तर मण्डल के सन्दर्भ में जो ताप-क्षेत्र-संस्थिति का प्रमाण है, वह अन्धकार-संस्थिति में समझ लेना ।

[२६३] भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप में सूर्य (दो) उद्गमन-मुहूर्त्त में-स्थानापेक्षया दूर होते हुए भी द्रष्टा की प्रतीति की अपेक्षा से समीप दिखाई देते हैं ? मध्याह्न-काल में समीप होते हुए भी क्या वे दूर दिखाई देते हैं ? अस्तमन-वेला में दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं ? हाँ गौतम ! ऐसा ही है । भगवन् ! जम्बूद्वीप में सूर्य उदयकाल, मध्याह्नकाल तथा अस्तमनकाल में क्या सर्वत्र एक सरीखी ऊँचाई लिये होते हैं ? हाँ, गौतम ! ऐसा ही है । भगवन् ! यदि जम्बूद्वीप में सूर्य उदयकाल, मध्याह्नकाल तथा अस्तमनकाल में सर्वत्र एक-सरीखी ऊँचाई लिये होते हैं तो उदयकाल में वे दूर होते हुए भी निकट क्यों दिखाई देते हैं, इत्यादि प्रश्न । गौतम ! लेश्या के प्रतिघात से-अत्यधिक दूर होने के कारण उदयस्थान से आगे प्रसृत न हो पाने से, यों तेज या ताप के प्रतिहत होने के कारण सुखदृश्य-होने के कारण दूर होते हुए भी सूर्य उदयकाल में निकट दिखाई देते हैं । मध्याह्नकाल में लेश्या के अभिताप से-कष्टपूर्वक देखे जा सकने योग्य होने के कारण दूर दिखाई देते हैं । अस्तमनकाल में लेश्या के उदयकाल की ज्यों दूर होते हुए भी सूर्य निकट दिखाई पड़ते हैं ।

[२६४] भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप में सूर्य अतीत-क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं अथवा प्रत्युत्पन्न या अनागत क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं ? गौतम ! वे केवल वर्तमान क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं । भगवन् ! क्या वे गम्यमान क्षेत्र का स्पर्श करते हुए अतिक्रमण करते हैं या अस्पर्शपूर्वक ? गौतम ! वे गम्यमान क्षेत्र का स्पर्श करते हुए अतिक्रमण करते हैं । वे गम्यमान क्षेत्र को अवगाढ कर अतिक्रमण करते हैं । वे उस क्षेत्र का अव्यवहित रूप में अवगाहन करते अतिक्रमण करते हैं ।

वे अणुरूप-अनन्तरावगाढ क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं, अणुबादररूप ऊर्ध्व क्षेत्र का, अधःक्षेत्र का और तिर्यक् क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं-वे साठ मुहूर्त्तप्रमाण मण्डलसंक्रमणकाल के आदि में मध्य में तथा अन्त में भी गमन करते हैं । वे स्पृष्ट-अवगाढ-अनन्तरावगाढ रूप उचित क्षेत्र में गमन करते हैं । वे आनुपूर्वीपूर्वक-आसन्न क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं । वे नियमतः छह दिशाविषयक क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं । इस प्रकार वे अवभासित होते हैं-जिसमें स्थूलतर वस्तुएँ दीख पाती हैं । इस प्रकार दोनों सूर्य छहों दिशाओं में उद्योत करते हैं, तपते हैं, प्रभासित होते हैं-

[२६५] भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो सूर्यों द्वारा अवभासन आदि क्रिया क्या अतीत क्षेत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में, या प्रत्युत्पन्न–क्षेत्र में अथवा अनागत क्षेत्र में की जाती है ? गौतम ! अवभासन आदि क्रिया प्रत्युत्पन्न क्षेत्र में ही की जाती है । सूर्य अपने तेज द्वारा क्षेत्र-स्पर्शन पूर्वक अवभासन आदि क्रिया करते हैं । वह अवभासन आदि क्रिया साठ मुहूर्त्तप्रमाण मण्डलसंक्रमणकाल के आदि में, मध्य में और अन्त में की जाती है ।

[२६६] भगवन् ! जम्बूद्वीप में सूर्य कितने क्षेत्र को ऊर्ध्वभाग में, अधोभाग में तथा तिर्यक् भाग में तपाते हैं ? गौतम ! ऊर्ध्वभाग में १०० योजन क्षेत्र को, अधोभाग में १८०० योजन क्षेत्र को तथा तिर्यक् भाग में ४७२६३–२१/६० योजन क्षेत्र को अपने तेज से तपाते हैं– ।

[२६७] भगवन् ! मानुषोत्तर पर्वतवर्ती चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र एवं तारे–ऊर्ध्वोपपन्न हैं ? कल्पातीत हैं ? कल्पोपपन्न हैं, चारोपपन्न हैं, चारस्थितिक हैं, गतिरतिक हैं–या गति समापन्न हैं ? गौतम ! मानुषोत्तर ज्योतिष्क देव विमानोत्पन्न हैं, चारोपपन्न हैं, गतिरतिक हैं, गतिसमापन्न हैं । ऊर्ध्वमुखी कदम्ब पुष्प के आकार में संस्थित सहस्त्रों योजनपर्यन्त, चन्द्रसूर्यापेक्षया तापक्षेत्र युक्त, वैक्रियलब्धियुक्त, आभियोगिक कर्म करने में तत्पर, सहस्त्रों बाह्य परिषदों से संपरिवृत वे ज्योतिष्क देव नाट्य-गीत-वादन रूप त्रिविध संगीतोपक्रम में जोर-जोर से बजाये जाते वाद्यों से उत्पन्न मधुर ध्वनि के साथ दिव्य भोग भोगते हुए, उच्च स्वर से सिंहनाद करते हुए, मुँह पर हाथ लगाकर जोर से पूत्कार करते हुए–कलकल शब्द करते हुए अच्छ–निर्मल, उज्ज्वल मेरु पर्वत की प्रदक्षिणावर्त मण्डल गति द्वारा प्रदक्षिणा करते रहते हैं ।

[२६८] भगवन् ! उन ज्योतिष्क देवों का इन्द्र जब च्युत हो जाता है, तब इन्द्रविरहकाल में देव किस प्रकार काम चलाते हैं ? गौतम ! चार या पांच सामानिक देव मिल कर इन्द्र-स्थान का संचालन करते हैं । इन्द्र का स्थान कम से कम एक समय तथा अधिक से अधिक छह मास तक इन्द्रोत्पत्ति से विरहित रहता है । मानुषोत्तर पर्वत के बहिर्वर्ती ज्योतिष्क देवों का वर्णन पूर्वानुरूप जानना । इतना अन्तर है–वे विमानोत्पन्न हैं । पकी ईंट के आकार में संस्थित, चन्द्रसूर्यापेक्षया लाखों योजन विस्तीर्ण तापक्षेत्रयुक्त, नानाविध विकुर्वित रूप धराण करने में सक्षम, लाखों बाह्य परिषदों से संपरिवृत ज्योतिष्क देव वाद्यों से उत्पन्न मधुर ध्वनि के आनन्द के साथ दिव्य भोग भोगने में अनुरत, सुखलेश्यायुक्त, मन्दलेश्यायुक्त, विविधलेश्यायुक्त, परस्पर अपनी-अपनी लेश्याओं द्वारा अवगाढ–अपने स्थान में स्थित, सब ओर के अपने प्रत्यासन्न, उद्योतित करते हैं, प्रभासित करते हैं । शेष कथन पूर्ववत् है ।

[२६९] भगवन् ! चन्द्र-मण्डल कितने हैं ? गौतम ! १५ हैं । जम्बूद्वीप में १८० योजन क्षेत्र का अवगाहन कर पांच चन्द्र-मण्डल है । लवणसमुद्र में ३३० योजन क्षेत्र का अवगाहन कर दस चन्द्र-मण्डल हैं । यों कुल १५ चन्द्र-मण्डल होते हैं ।

[२७०] भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल से सर्वबाह्य चन्द्र-मण्डल अबाधित रूप में कितनी दूरी पर है । गौतम ! ५१० योजन की दूरी पर है ।

[२७१] भगवन् ! एक चन्द्र-मण्डल का दूसरे चन्द्र-मण्डल से कितना अन्तर है ? गौतम ! ३५–३०/६१ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के सात भागों में चार भाग योजनांश परिमित अन्तर है ।

[२७२] भगवन् ! चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई, परिधि तथा ऊँचाई कितनी है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौतम ! लम्बाई-चौराई ५६/६१ योजन, परिधि उससे कुछ अधिक तीन गुनी तथा ऊँचाई २८/६१ योजन है ।

[२७३] भगवन् ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से सर्वाभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल कितनी दूरी पर है ? गौतम ! ४४८२० योजन की दूरी पर है । जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से दूसरा आभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल ४४८५६-२५/६१ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से ४ भाग योजनांश की दूरी पर है । इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ चन्द्र पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल का संक्रमण करता हुआ एक-एक मण्डल पर ३६-२५/६१ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के ७ भागों में से ४ भाग योजनांश की अभिवृद्धि करता हुआ सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है । भगवन् ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से सर्वबाह्य चन्द्र-मण्डल कितनी दूरी पर है ? गौतम ! ४५३३० योजन की दूरी पर है। जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से दूसरा बाह्य चन्द्र-मण्डल ४५२९३-३५/६१ योजन तथा ६१ भागों के विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से ३ भाग योजनांश की दूरी पर है । इस क्रम से प्रवेश करता हुआ चन्द्र पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल का संक्रमण करता हुआ एक-एक मण्डल पर ३६-२५/६१ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से ४ भाग योजनांश की वृद्धि में कमी करता हुआ सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है ।

[२७४] भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी है ? गौतम ! सर्वाभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई ९९६४० योजन तथा उसकी परिधि कुछ अधिक ३१५०८९ योजन है । द्वितीय आभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई ९९७१२-५१/६१ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से १ भाग योजनांश तथा उसकी परिधि कुछ अधिक ३१५३१९ योजन है । इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ चन्द्र प्रत्येक मण्डल पर ७२-५६/६१ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से १ भाग योजनांश विस्तारवृद्धि करता हुआ तथा २३० योजन परिधिवृद्धि करता हुआ सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है।

भगवन् ! सर्वबाह्य चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी बतलाई गई है ? गौतम ! १००६६० योजन तथा उसकी परिधि ३१८३१५ योजन है । द्वितीय बाह्य चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई १००५८७-९/६१ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से ६ भाग योजनांश तथा उसकी परिधि ३१८०८५ योजन है । इस क्रम से प्रवेश करता हुआ चन्द्र पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल का संक्रमण करता हुआ प्रत्येक मण्डल पर ७२-५१/६१ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से १ भाग योजनांश विस्तारवृद्धि कम करता हुआ तथा २३० योजन परिधिवृद्धि कम करता हुआ सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है ।

[२७५] भगवन् ! जब चन्द्र सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब वह प्रतिमुहूर्त कितना क्षेत्र पार करता है ? गौतम ! ५०७३-७७४४/१३७२५ योजन। तब वह यहाँ स्थित मनुष्यों को ४७२६३-२१/६१ योजन की दूरी से दृष्टिगोचर होता है । जब चन्द्र दूसरे आभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब प्रतिमुहूर्त ५०७७-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६७४/१३७२५ योजन क्षेत्र पार करता है । इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ चन्द्र प्रत्येक मण्डल पर ३-९६५५/१३७२५ मुहूर्त-गति बढ़ाता हुआ सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है । भगवन् ! जब चन्द्र सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब वह प्रतिमुहूर्त कितना क्षेत्र पार करता है ? गौतम ! ५१२५–६६६०/१३७२५ योजन । तब यहाँ स्थित मनुष्यों को वह ३१८३१ योजन की दूरी से दृष्टिगोचर होता है । जब चन्द्र दूसरे बाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब वह प्रतिमुहूर्त ५१२१–११६०/१३७२५ योजन क्षेत्र पार करता है । इस क्रम से निष्क्रमण करता हुए सूर्य का गणित पूर्ववत् जानना।

[२७६] भगवन् ! नक्षत्रमण्डल कितने बतलाये गये हैं ? गौतम ! नक्षत्रमण्डल आठ। जम्बूद्वीप में १८० योजन क्षेत्र का अवगाहन कर दो नक्षत्रमण्डल हैं । लवणसमुद्र में ३३० योजन क्षेत्र का अवगाहन कर छह नक्षत्रमण्डल हैं । सर्वाभ्यन्तर नक्षत्रमण्डल से सर्वबाह्य नक्षत्रमण्डल ५१० योजन की अव्यवहित दूरी पर है । एक नक्षत्रमण्डल से दूसरे नक्षत्रमण्डल की दूरी अव्यवहित रूप में दो योजन है । नक्षत्रमण्डल की लम्बाई-चौड़ाई दो कोस, उसकी परिधि लम्बाई-चौड़ाई से कुछ अधिक तीन गुनी तथा ऊँचाई एक कोस है । जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से सर्वाभ्यन्तर नक्षत्रमण्डल अव्यवहित रूप में ४४८२० योजन की दूरी पर है । और सर्वबाह्य नक्षत्रमण्डल अव्यवहित रूप में ४५३३० योजन की दूरी पर है ।

भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर नक्षत्रमण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी है ? गौतम ! सर्वाभ्यन्तर नक्षत्रमण्डल की लम्बाई-चौड़ाई ९९६४० योजन तथा परिधि कुछ अधिक ३१५०८९ योजन है । सर्वबाह्य नक्षत्रमण्डल की लम्बाई-चौड़ाई १००६६० योजन तथा ३१८३१५ योजन है । जब नक्षत्र सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करते हैं तो एक मुहूर्त्त में ५२६५–१८२६३/२१९६० योजन क्षेत्र पार करते हैं । जब नक्षत्र सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करते हैं तो वे प्रतिमुहूर्त ५३१९–१६३६५/२१९६० योजन क्षेत्र पार करते हैं । आठ नक्षत्रमण्डल पहले, तीसरे, छठे, सातवें, आठवें, दसवें, ग्यारहवें तथा पन्द्रहवें चन्द्र-मण्डल में समवसृत होते हैं । चन्द्रमा एक मुहूर्त में मण्डल-परिधि का १७६८/१०९८०० भाग अतिक्रान्त करता है । सूर्य उस मण्डल की परिधि १८३०/१०९८०० भाग अतिक्रान्त करता है । नक्षत्र प्रतिमुहूर्त मण्डल-परिधि का १८३५/१०९८०० भाग अतिक्रान्त करते हैं ।

[२७७] भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो सूर्य–ईशान कोण में उदित होकर क्या आग्नेय कोण में अस्त होते हैं, आग्नेय कोण में उदित होकर नैर्ऋत्य कोण में अस्त होते हैं, नैर्ऋत्य कोण में उदित होकर वायव्य कोण में, अस्त होते हैं, वायव्य कोण में उदित होकर ईशान कोण में अस्त होते हैं ? हाँ, गौतम ! ऐसा ही है । भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो चन्द्रमा ईशान कोण में उदित होकर दक्षिण–आग्नेय कोण में अस्त होते हैं–इत्यादि वर्णन पूर्ववत् जान लेना ।

[२७८] भगवन् ! संवत्सर कितने हैं ? गौतम ! संवत्सर पाँच है– नक्षत्र-संवत्सर, युग-संवत्सर, प्रमाण-संवत्सर, लक्षण-संवत्सर तथा शनैश्चर-संवत्सर । नक्षत्र-संवत्सर कितने प्रकार का है ? बारह प्रकार का, श्रावण, भाद्रपद, आसोज यावत् आषाढ । अथवा बृहस्पति महाग्रह बारह वर्षों की अवधि में जो सर्व नक्षत्रमण्डल का परिसमापन करता हैं–वह भी नक्षत्र-संवत्सर है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवन् ! युग-संवत्सर कितने प्रकार का है ? गौतम ! पांच प्रकार का, चन्द्र-संवत्सर, चन्द्र-संवत्सर, अभिवर्द्धित-संवत्सर, चन्द्र-संवत्सर तथा अभिवर्द्धित-संवत्सर । प्रथम चन्द्र-संवत्सर के चौबीस पर्व, द्वितीय चन्द्र-संवत्सर के चौबीस पर्व, तृतीय अभिवृद्धित-संवत्सर के छब्बीस पर्व, चौथी चन्द्र-संवत्सर के चौबीस तथा पांचवें अभिवर्द्धित-संवत्सर के छब्बीस पर्व हैं । पांच भेदों में विभक्त युग-संवत्सर के, पर्व १२४ होते हैं ।

भगवन् ! प्रमाण-संवत्सर कितने प्रकार का है ? गौतम ! पांच प्रकार का, नक्षत्र-संवत्सर, चन्द्र-संवत्सर, ऋतु-संवत्सर, आदित्य-संवत्सर तथा अभिवर्द्धित-संवत्सर । लक्षण-संवत्सर कितने प्रकार का है ? पांच प्रकार का–

[२७९] जिसमें कृत्तिका आदि नक्षत्र समरूप में–मासान्तिक तिथियों से योग–करते हैं, जिसमें ऋतुएँ समरूप में परिणत होती हैं, जो प्रचुर जलयुक्त है, वह समक-संवत्सर है ।

[२८०] जब चन्द्र के साथ पूर्णमासी में विषम–नक्षत्र का योग होता है, जो कटुक, कष्टकर, विपुल वर्षायुक्त होता है, वह चन्द्र-संवत्सर है ।

[२८१] जिसमें विषम काल में–वनस्पति अंकुरित होती है, अन्-ऋतु में–पुष्प एवं फल आते हैं, जिसमें सम्यक्–वर्षा नहीं होती, वह कर्म-संवत्सर है ।

[२८२] जिसमें सूर्य पृथ्वी, चल, पुष्प एवं फल–रस प्रदान करता है, जिसमें थोड़ी वर्षा से ही धान्य सम्यक् रूप में निष्पन्न होता है–अच्छी फसल होती है, वह आदित्य-संवत्सर है ।

[२८३] जिसमें क्षण, लव, दिन, ऋतु, सूर्य के तेज से तप्त रहते हैं, जिसमें निम्न स्थल जल-पूरित रहते हैं, वह अभिवर्द्धित संवत्सर है ।

[२८४] भगवन् ! शनैश्चर संवत्सर कितने प्रकार का है ? अट्ठाईस प्रकार का है–

[२८५] १. अभिजित्, २. श्रवण, ३. धनिष्ठा, ४. शतभिषक्, ५. पूर्वा भाद्रपद, ६. उत्तरा भाद्रपद, ७. रेवती, ८. अश्विनी, ९. भरिणी, १०. कृत्तिका, ११. रोहिणी यावत् तथा २८. उत्तराषाढा । अथवा शनैश्चर महाग्रह तीस संवत्सरों में समस्त नक्षत्र-मण्डल का समापन करता है–वह काल शनैश्चर-संवत्सर है ।

[२८६] भगवन् ! प्रत्येक संवत्सर के कितने महीने हैं ? गौतम ! बारह महीने, उनके लौकिक एवं लोकोत्तर दो प्रकार के नाम हैं । लौकिक नाम–श्रावण, भाद्रपद यावत् आषाढ। लोकोत्तर नाम इस प्रकार हैं–

[२८७-२८८] अभिनन्दित, २. प्रतिष्ठित, ३. विजय, ४. प्रीतिवर्द्धन, ५. श्रेयान्, ६. शिव, ७. शिशिर, ८. हिमवान्, ९. वसन्तमास, १०. कुसुमसम्भव, ११. निदाघ तथा १२. वनविरोह ।

[२८९] भगवन् ! प्रत्येक महीने के कितने पक्ष हैं ? गौतम ! दो, कृष्ण तथा शुक्ल। प्रत्येक पक्ष के पन्द्रह दिन हैं, –१. प्रतिपदा-दिवस, २. द्वितीया-दिवस, ३. तृतीया-दिवस यावत् १५. पंचदशी-दिवस–अमावस्या या पूर्णमासी का दिन । इन पन्द्रह दिनों के पन्द्रह नाम हैं, जैसे–

[२९०] १. पूर्वाङ्ग, २. सिद्धमनोरम, ३. मनोहर, ४. यशोभद्र, ५. यशोधर, ६. सर्वकाम-समृद्ध । तथा–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२९१] ७. इन्द्रमूर्द्धाभिषिक्त, ८. सौमनस, ९. धनञ्जय, १०. अर्थसिद्ध, ११. अभिजात, १२. अत्यशन, १३. शतञ्जय । तथा–

[२९२] १४. अग्निवेश्म तथा १५. उपशम ।

भगवन् ! इन पन्द्रह दिनों की कितनी तिथियाँ हैं ? गौतम ! पन्द्रह–१. नन्दा, २. भद्रा, ३. जया, ४. तुच्छारिक्ता, ५. पूर्णा-पञ्चमी । फिर ६. नन्दा, ७. भद्रा, ८. जया, ९. तुच्छा, १०. पूर्णा–दशमी । फिर ११. नन्दा, १२. भद्रा, १३. जया, १४. तुच्छा, १५. पूर्णा–पञ्चदशी । प्रत्येक पक्ष में पन्द्रह रातें हैं, जैसे–प्रतिपदारात्रि–एकम की रात, द्वितीयारात्रि, तृतीयारात्रि यावत् पञ्चदशी–अमावस या पूनम की रात । इन पन्द्रह रातों के पन्द्रह नाम हैं,

[२९३] उत्तमा, सुनक्षत्रा, एलापत्या, यशोधरा, सौमनसा, श्रीसम्भूता । तथा–

[२९४] विजया, वैजयन्तो, जयन्ती, अपराजिता, इच्छा, समाहारा, तेजा, अतितेजा तथा–

[२९५] देवानन्दा या निरति ।

भगवन् ! इन पन्द्रह रातों की कितनी तिथियाँ हैं ? गौतम ! पन्द्रह जैसे–१. उग्रवती, २. भोगवती, ३. यशोमती, ४. सर्वसिद्धा, ५. शुभनामा, फिर ६. उग्रवती, ७. भोगवती, ८. यशोमती, ९. सर्वसिद्धा, १०. शुभनामा, फिर ११. उग्रवती, १२. भोगवती, १३. यशोमती, १४. सर्वसिद्धा, १५. शुभनामा । प्रत्येक अहोरात्र के तीस मुहूर्त बतलाये गये हैं–

[२९६] रुद्र, श्रेयान, मित्र, वायु, सुपीत, अभिचन्द्र, माहेन्द्र, बलवान्, ब्रह्म, बहुसत्य, ऐशान । तथा–

[२९७] त्वष्टा, भावितात्मा, वैश्रमण, वारुण, आनन्द, विजय, विश्वसेन, प्राजापत्य, उपशम । तथा–

[२९८] गन्धर्व, अग्निवेश्म, शतवृषभ, आतपवान्, अमम, ऋणवान्, भौम, वृषभ, सर्वार्थ तथा राक्षस ।

[२९९] भगवन् ! करण कितने हैं ? गौतम ! ग्यारह, –१. बव, २. बालव, ३. कौलव, ४. स्त्रीविलोचन–तैतिल, ५. गर, ६. वणिज, ७. विष्टि, ८. शकुनि, ९. चतुष्पद, १०. नाग तथा ११. किंस्तुघ्न । इन ग्यारह करणों में सात करण चर तथा चार करण स्थिर हैं । बव, बालव, कौलव, स्त्रीविलोचन, गरादि, वणिज तथा विष्टि–ये सात करण चर हैं एवं शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न–ये चार करण स्थिर हैं ।

भगवन् ! ये चर तथा स्थिर करण कब होते हैं ? गौतम ! शुक्ल पक्ष की एकम की रात में, एकम के दिन में बवकरण होता है । दूज को दिन में बालवकरण होता है, रात में कौलवकरण होता है । तीज को दिन में स्त्री विलोचनकरण होता है, रात में गरकरण होता है। चौथ को दिन में वणिजकरण होता है, रात में विष्टिकरण होता है । पाँचम को दिन में बवकरण होता है, रात में बालवकरण होता है । छठ को दिन में कौलवकरण होता है, रात में स्त्रीविलोचनकरण होता है । सातम को दिन में गरादिकरण होता है, रात में वणिजकरण होता है । आठम को दिन में विष्टिकरण होता है, रात में बवकरण होता है । नवम को दिन में बालवकरण होता है, रात में कौलवकरण होता है । दसम को दिन में स्त्रीविलोचन करण होता है, रात में गरादिकरण होता है । ग्यारस को दिन में वणिजकरण होता है, रात में विष्टिकरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है । बारस को दिन में बवकरण होता है, रात में बालवकरण होता है । तेरस को दिन में कौलवकरण होता है, रात में स्त्रीविलोचन करण होता है । चौदस को दिन में गरादिकरण होता है, रात में वणिजकरण होता है । पूनम को दिन में विष्टिकरण होता है, रात में बवकरण होता है ।

कृष्ण पक्ष की एकम को दिन में बालवकरण होता है, रात में कौलवकरण होता है। दूज को दिन में स्त्रीविलोचनकरण होता है, रात में गरादिकरण होता है । तीज को दिन में वाणिजयकरण होता है । रात में विष्टिकरण होता है । चौथ को दिन में बवकरण होता है, रात में बालवकरण होता है । पाँचम को दिन में कौलवकरण होता है, रात में स्त्रीविलोचनकरण होता है । छठ को दिन में गरादिकरण होता है, रात में वणिजकरण होता है । सातम को दिन में विष्टिकरण होता है । रात को बवकरण होता है । आठम को दिन में बालवकरण होता है, रात में कौलवकरण होता है । नवम को दिन में स्त्रीविलोचनकरण होता है, रात में गरादिकरण होता है । दसम को दिन में वणिजकरण होता है, रात में विष्टिकरण होता है । ग्यारस को दिन में बवकरण होता है, रात में बालवकरण होता है । बारस को दिन में कौलवकरण होता है, रात में स्त्रीविलोचनकरण होता है, तेरस को दिन में गरादिकरण होता है, रात में वणिजकरण होता है । चौदस को दिन में विष्टिकरण होता है, रात में शकुनिकरण होता है । अमावस को दिन में चतुष्पदकरण होता है, रात में नागकरण होता है । शुक्ल पक्ष की एकम को दिन में किंस्तुघ्नकरण होता है ।

[३००] भगवन् ! संवत्सरों में आदि–संवत्सर कौनसा है ? अयनों में प्रथम अयन कौनसा है ? यावत् नक्षत्रों में प्रथम नक्षत्र कौनसा है ? गौतम ! संवत्सरों में आदि–चन्द्र-संवत्सर है । अयनों में प्रथम दक्षिणायन है । ऋतुओं में प्रथम प्रावृट्–ऋतु है । महीनों में प्रथम श्रावण है । पक्षों में प्रथम कृष्ण पक्ष है । अहोरात्र में प्रथम दिवस है । मुहूर्तों में प्रथम रुद्र है । करणों में प्रथम बालव है । नक्षत्रों में प्रथम अभिजित् है । भगवन् ! पञ्च संवत्सरिक युग में अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र तथा मुहूर्त कितने कितने हैं ? गौतम ! अयन १०, ऋतुएँ ३०, मास ६०, पक्ष १२०, अहोरात्र १८३० तथा मुहूर्त ५४९०० हैं ।

[३०१] योग, देवता, ताराग्र, गोत्र, संस्थान, चन्द्र-रवि-योग, कुल, पूर्णिमा-अमावस्या, सन्निपात तथा नेता–यहाँ विवक्षित हैं ।

[३०२] भगवन् ! नक्षत्र कितने हैं ? गौतम ! अट्ठाईस, –अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढा ।

[३०३] भगवन् ! इन अट्ठाईस नक्षत्रों में कितने नक्षत्र ऐसे हैं, जो सदा चन्द्र के दक्षिण में–योग करते हैं–कितने नक्षत्र चन्द्रमा के उत्तर में, कितने दक्षिण में भी, उत्तर में भी, कितने चन्द्रमा के दक्षिण में भी नक्षत्र-विमानों को चीरकर भी और कितने नक्षत्र सदा नक्षत्र-विमानों को चीरकर चन्द्रमा से योग करते हैं ? गौतम ! जो नक्षत्र सदा चन्द्र के दक्षिण में अवस्थित होते हुए योग करते हैं, वे छह हैं–

[३०४] मृगशिर, आर्द्रा, पुष्य, अश्लेषा, हस्त तथा मूल । ये छहों नक्षत्र चन्द्रसम्बन्धी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पन्द्रह मण्डलों के बाहर से ही योग करते हैं ।

[३०५] जो नक्षत्र सदा चन्द्रमा के उत्तर में अवस्थित होते हुए योग करते हैं, वे बारह हैं—अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, भरणी, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी तथा स्वाति । जो नक्षत्र सदा चन्द्रमा के दक्षिण में भी, उत्तर में भी, नक्षत्र-विमानों को चीरकर भी योग करते हैं, वे सात हैं—कृत्तिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा तथा अनुराधा । जो नक्षत्र सदा चन्द्रमा के दक्षिण में भी, नक्षत्र-विमानों को चीरकर भी योग करते हैं, वे दो हैं—पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढा । ये दोनों नक्षत्र सदा सर्वबाह्य मण्डल में अवस्थित होते हुए चन्द्रमा के साथ योग करते हैं । जो सदा नक्षत्र-विमानों को चीरकर चन्द्रमा के साथ योग करता है, ऐसा एक ज्येष्ठा नक्षत्र है ।

[३०६] भगवन् ! अभिजित् आदि नक्षत्रों के कौन-कौन देवता हैं ? पहले नक्षत्र से अट्ठावीसवें नक्षत्र तक के देवता यथाक्रम इस प्रकार हैं—ब्रह्मा, विष्णु, वसु, वरुण, अज, अभिवृद्धि, पूषा, अश्व, यम, अग्नि, प्रजापति, सोम, रुद्र, अदिति, बृहस्पति, सर्प्प, पितृ, भंग, अर्यमा, सविता, त्वष्टा, वायु, इन्द्राग्नी, मित्र, इन्द्र, नैर्ऋत, आप तथा विश्वेदेव ।

[३०७] भगवन् ! इन अट्ठाईस नक्षत्रों में अभिजित् नक्षत्र के कितने तारे हैं ? गौतम ! तीन तारे हैं । जिन नक्षत्रों के जितने जितने तारे हैं, वे प्रथम से अन्तिम तक इस प्रकार हैं—

[३०८] अभिजित् नक्षत्र के तीन तारे, श्रवण के तीन, धनिष्ठा के पांच, शतभिषक् के सौ, पूर्वभाद्रपदा के दो, उत्तरभाद्रपदा के दो, रेवती के बत्तीस, अश्विनी के तीन, भरणी के तीन, कृत्तिका के छः, रोहिणी के पांच, मृगशिर के तीन, आर्द्रा का एक, पुनर्वसु के पांच, पुष्य के तीन और अश्लेषा नक्षत्र के छः तारे होते है ।

[३०९] मघा नक्षत्र के सात तारे, पूर्वफाल्गुनी के दो, उत्तरफाल्गुनी के दो, हस्त के पांच, चित्रा का एक, स्वाति का एक, विशाखा के पांच, अनुराधा के पांच, ज्येष्ठा के तीन, मूल के ग्यारह, पूर्वाषाढा के चार तथा उत्तराषाढा नक्षत्र के चार तारे हैं ।

[३१०] भगवन् ! इन अट्ठाईस नक्षत्रों में अभिजित् नक्षत्र का क्या गोत्र है ? गौतम ! मौद्गलायन गोत्र है ।

[३११] प्रथम से अन्तिम नक्षत्र तक सब नक्षत्रों के गोत्र इस प्रकार हैं—अभिजित् नक्षत्र का मौद्गलायन, श्रवण का सांख्यायन, धनिष्ठा का अग्रभाग, शतभिषक् का कण्णिलायन, पूर्वभाद्रपदा का जातुकर्ण्ण, उत्तरभाद्रपदा का धनञ्जय । तथा—

[३१२] रेवती का पुष्यायन, अश्विनी का अश्वायन, भरणी का भार्गवेश, कृत्तिका का अग्निवेश्य, रोहिणी का गौतम, मृगशिर का भारद्वाज, आर्द्रा का लोहित्यायन, पुनर्वसु का वासिष्ठ । तथा—

[३१३] पुष्य का अवमज्जायन, अश्लेषा का माण्डव्यायन, मघा का पिङ्गायन, पूर्वफाल्गुनी का गोवल्लायन, उत्तरफाल्गुनी का काश्यप, हस्त का कौशिक चित्रा का दार्भायन, स्वाति का चामरच्छायन, विशाखा का शुङ्गायन । तथा—

[३१४] अनुराधा का गोलव्यायन, ज्येष्ठा का चिकित्सायन, मूल का कात्यायन, पूर्वाषाढा का बाभ्रव्यायन तथा उत्तराषाढा नक्षत्र का व्याघ्रपत्य गोत्र है ।

[३१५] भगवन् ! इन अट्ठाईस नक्षत्रों में अभिजित् नक्षत्र का कैसा संस्थान है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौतम ! गोशीर्षावलि–प्रथम से अन्तिम तक सब नक्षत्रों के संस्थान इस प्रकार हैं–

[३१६] अभिजित् का गोशीर्षावलि, श्रवण का कासार, धनिष्ठा का पक्षी के कलेवर सदृश, शतभिषक् का पुष्प-राशि, पूर्वभाद्रपदा का अर्धवापी, उत्तरभाद्रपदा का भी अर्धवापी, रेवती का नौका, अश्विनी का अश्व, भरणी का भग, कृत्तिका का क्षुरगृह, रोहिणी का गाड़ी की धुरी के समान । तथा–

[३१७] मृगशिर का मृग, आर्द्रा का रुधिर की बूँद, पुनर्वसु का तराजू, पुष्य का सुप्रतिष्ठित वर्द्धमानक, अश्लेषा का ध्वजा, मघा का प्राकार, पूर्वफाल्गुनी का आधे पलंग, उत्तरफाल्गुनी का भी आधे पलंग, हस्त का हाथ, चित्रा का मुख पर सुशोभित पीली जूही के पुष्प के सदृश । तथा–

[३१८] स्वाति का कीलक, विशाखा का दामनि, अनुराधा का एकावली, ज्येष्ठा का हाथी-दाँत, मूल का बिच्छू की पूँछ, पूर्वाषाढा का हाथी के पैर तथा उत्तराषाढा नक्षत्र का बैठे हुए सिंह के सदृश संस्थान है ।

[३१९] भगवन् ! अट्ठाईस नक्षत्रों में अभिजित् नक्षत्र कितने मुहूर्त पर्यन्त चन्द्रमा के साथ योगयुक्त रहता है ? गौतम ! ९–२७/६७ मुहूर्त रहता है । इन नक्षत्रों का चन्द्र के साथ योग इस प्रकार है ।

[३२०] अभिजित् नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ एक अहोरात्र में उनके २६/६७ भाग परिमित योग होता है । इससे अभिजित् चन्द्रयोग काल ९-२७/६७ मुहूर्त तय होता है ।

[३२१] शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति एवं ज्येष्ठा–इन छह नक्षत्रों का चन्द्रमा के साथ ४५ मुहूर्त योग रहता है ।

[३२२] तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, रोहिणी तथा विशाखा–इन छह नक्षत्रों का चन्द्रमा के साथ ४५ मुहूर्त योग रहता है ।

[३२३] बाकी पन्द्रह नक्षत्रों का चन्द्रमा के साथ ३० मुहूर्त पर्यन्त योग रहता है ।

[३२४] भगवन् ! इन अट्ठाईस नक्षत्रों में अभिजित् नक्षत्र सूर्य के साथ कितने अहोरात्र पर्यन्त योगयुक्त रहता है ? गौतम ! ४ अहोरात्र एवं ६ मुहूर्त पर्यन्त । इन गाथाओं द्वारा नक्षत्र-सूर्ययोग जानना ।

[३२५] अभिजित् नक्षत्र का सूर्य के साथ ४ अहोरात्र तथा ६ मुहूर्त पर्यन्त योग रहता है ।

[३२६] शतभिषक् भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति तथा ज्येष्ठा–इन नक्षत्रों का सूर्य के साथ ६ अहोरात्र तथा २१ मुहूर्त पर्यन्त योग रहता है ।

[३२७] तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, रोहिणी एवं विशाखा–इन नक्षत्रों का सूर्य के साथ २० अहोरात्र और ३ मुहूर्त पर्यन्त योग रहता है ।

[३२८] बाकी के पन्द्रह नक्षत्रों का सूर्य के साथ १३ अहोरात्र तथा १२ मुहूर्त पर्यन्त योग रहता है ।

[३२९] भगवन् ! कुल, उपकुल तथा कुलोपकुल कितने हैं ? गौतम ! कुल बारह, उपकुल बारह तथा कुलोपकुल चार हैं । बारह कुल–धनिष्ठा, उत्तरभाद्रपदा, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिर, पुष्य, मघा, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, मूल तथा उत्तराषाढाकुल ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३३०] जिन नक्षत्रों द्वारा महीनों की परिसमाप्ति होती है, वे माससदृश नामवाले नक्षत्र कुल हैं । जो कुलों के अधस्तन होते हैं, कुलों के समीप होते हैं, वे उपकुल कहे जाते हैं । वे भी मास-समापक होत हैं । जो कुलों तथा उपकुलों के अधस्तन होते हैं, वे कुलोपकुल कहे जाते हैं ।

[३३१] बारह उपकुल—श्रवण, पूर्वभाद्रपदा, रेवती, भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, अश्लेषा, पूर्वफाल्गुनी, हस्त, स्वाति, ज्येष्ठा तथा पूर्वाषाढा उपकुल ।

चार कुलोपकुल—अभिजित्, शतभिषक्, आर्द्रा तथा अनुराधाकुलोपकुल ।

भगवन् ! पूर्णिमाएँ तथा अमावस्याएँ कितनी हैं ? गौतम ! बारह पूर्णिमाएँ तथा बारह अमावस्याएँ हैं, जैसे—श्राविष्ठी, प्रौष्ठपदी, आश्वयुजी, कार्तिकी, मार्गशीर्षी, पौषी, माघी, फाल्गुनी, चैत्री, वैशाखी, ज्येष्ठामूली तथा आषाढी ।

भगवन् ! श्रावणी पूर्णमाणी के साथ कितने नक्षत्रों का योग होता है ? गौतम ! अभिजित्, श्रवण तथा धनिष्ठा का । भाद्रपदी पूर्णिमा के साथ शतभिषक्, पूर्वभाद्रपदा तथा उत्तरभाद्रपदा—नक्षत्रों का योग होता है । आसौजी पूर्णिमा के साथ रेवती तथा अश्विनी—नक्षत्रों का, कार्तिक पूर्णिमा के साथ भरणी तथा कृत्तिका का, मार्गशीर्षी पूर्णिमा के साथ रोहिणी तथा मृगशिर का, पौषी पूर्णिमा के साथ आर्द्रा, पुनर्वसु तथा पुष्य का, माघी पूर्णिमा के साथ अश्लेषा और मगा का, फाल्गुनी पूर्णिमा के साथ पूर्वाफाल्गुनी तथा उत्तराफाल्गुनी का, चैत्री पूर्णिमा के साथ हस्त एवं चित्रा का, वैशाखी पूर्णिमा के साथ स्वाति ओर विशाखा का, ज्येष्ठामूली पूर्णिमा के साथ अनुराधा, ज्येष्ठा एवं मूल का तथा आषाढी पूर्णिमा के साथ पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा—नक्षत्रों का योग होता है ।

भगवन् ! श्रावणी पूर्णिमा के साथ क्या कुल का, उपकुल का या क्या कुलोपकुल नक्षत्रों का योग होता है ? गौतम ! तीनों का योग होता है । कुलयोग में धनिष्ठा, उपकुलयोग में श्रवण तथा कुलोपकुलयोग में अभिजित् नक्षत्र का योग होता है । भाद्रपदी पूर्णिमा के साथ कुल, उपकुल तथा कुलोपकुल का योग होता है । कुलयोग में उत्तरभाद्रपदा, उपकुलयोग में पूर्व-भाद्रपदा तथा कुलोपकुलयोग में शतभिषक् नक्षत्र का योग होता है । आसौजी पूर्णिमा के साथ कुल का और उपकुल का योग होता है । कुलयोग में अश्विनी और उपकुलयोग में रेवती नक्षत्र का योग होता है । कार्तिकी पूर्णिमा के साथ कुल और उपकुल का योग होता है, कुलयोग में कृत्तिका और उपकुलयोग में भरणी नक्षत्र का योग होता है । मार्गशीर्षी पूर्णिमा के साथ कुलयोग में मृगशिर और उपकुलयोग में रोहिणी नक्षत्र का योग होता है । आषाढी पूर्णिमा तक का वर्णन वैसा ही है । इतना अन्तर है—पौषी तथा ज्येष्ठामूली पूर्णिमा के साथ कुल, उपकुल तथा कुलोपकुल का योग होता है । बाकी की पूर्णिमाओं के साथ कुल एवं उपकुल का योग होता है ।

श्रावणी अमावस्या के साथ कितने नक्षत्रों का योग होता है ? गौतम ! अश्लेषा तथा मघा—का योग होता है । भाद्रपदी अमावस्या के साथ पूर्वाफाल्गुनी तथा उत्तराफाल्गुनी—का, आसौजी अमावस्या के साथ हस्त एवं चित्रा—का, कार्तिकी अमावस्या के साथ स्वाति और विशाखा का, मार्गशीर्षी अमावस्था के साथ अनुराधा ज्येष्ठा तथा मूल का पौषी अमावस्या के साथ पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढा—का, माघी अमावस्या के साथ अभिजित्, श्रवण और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनिष्ठा–का, फाल्गुनी अमावस्या के साथ शतभिषक् पूर्वभाद्रपदा एवं उत्तरभाद्रपदा–का, चैत्री अमावस्या के साथ रेवती और अश्विनी–का, वैशाखी अमावस्या के साथ भरणी तथा कृत्तिका–का, ज्येष्ठामूली अमावस्या के साथ रोहिणी एवं मृगशिर का और आषाढी अमावस्या के साथ आर्द्रा, पुनर्वसु तथा पुष्य–नक्षत्रों का योग होता है ।

भगवन् ! श्रावणी अमावस्या के साथ क्या कुल का, उपकुल का या कुलोपकुल का योग होता है ? गौतम ! कुल और उपकुल का योग होता है, कुलयोग में मघा और उपकुलयोग में अश्लेषा नक्षत्र का योग होता है । भाद्रपदी अमावस्या के साथ कुलयोग में उत्तराफाल्गुनी और उपकुलयोग में पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र का योग होता है । मार्गशीर्षी अमावस्या के साथ कुलयोग में मूल, उपकुलयोग में ज्येष्ठा तता कुलोपकुलयोग में अनुराधा नक्षत्र का योग होता है । माघी, फाल्गुनी तथा आषाढी अमावस्या के साथ कुल, उपकुल एवं कुलोपकुल का योग होता है, बाकी की अमावस्याओं के साथ कुल एवं उपकुल का योग होता है ।

भगवन् ! क्या जब श्रवण नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा होती है, तब क्या तत्पूर्ववर्तिनी अमावस्या मघा नक्षत्रयुक्त होती है ? और जब पूर्णिमा मघा नक्षत्रयुक्त होती है तब क्या तत्पश्चाद् भाविनी अमावस्या श्रवण नक्षत्र युक्त होती है ? गौतम ! ऐसा ही होता है । जब पूर्णिमा उत्तरभाद्रपदा नक्षत्रयुक्त होती है, तब तत्पश्चात्भाविनी अमावस्या उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र युक्त होती है और जब पूर्णिमा उत्तरफाल्गुनी नक्षत्रयुक्त होती है, तब अमावस्या उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र युक्त होती है । जब पूर्णिमा अश्विनी नक्षत्रयुक्त होती है, तब पश्चाद्वर्तिनी अमावस्या चित्रा नक्षत्रयुक्त होती है । जब पूर्णिमा चित्रा नक्षत्रयुक्त होती है, तो अमावस्या अश्विनी नक्षत्रयुक्त होती है । जब पूर्णिमा कृत्तिका नक्षत्रयुक्त होती है, तब अमावस्या विशाखा नक्षत्रयुक्त होती है । जब पूर्णिमा विशाखा नक्षत्रयुक्त होती है, तब अमावस्या कृत्तिका नक्षत्रयुक्त होती है । जब पूर्णिमा मृगशिर नक्षत्रयुक्त होती है, तब अमावस्या ज्येष्ठामूल नक्षत्रयुक्त होती है । जब पूर्णिमा ज्येष्ठामूल नक्षत्रयुक्त होती है, तो अमावस्या मृगशिर नक्षत्रयुक्त होती है । जब पूर्णिमा पुष्प नक्षत्रयुक्त होती है, तब अमावस्या पूर्वाषाढा नक्षत्रयुक्त होती है। जब पूर्णिमा पूर्वाषाढा नक्षत्रयुक्त होती है, तो अमावस्य पुष्य नक्षत्रयुक्त होती है ।

[३३२] भगवन् ! चातुर्मासिक वर्षाकाल के श्रावण मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ? गौतम ! चार, –उत्तराषाढा, अभिजित्, श्रवण तथा घनिष्ठा । उत्तराषाढा नक्षत्र श्रावण मास के १४ अहोरात्र, अभिजित् नक्षत्र ७ अहोरात्र, श्रवण नक्षत्र ८ अहोरात्र तथा धनिष्ठा नक्षत्र १ अहोरात्र परिसमाप्त करता है । उस मास में सूर्य चार अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण परिभ्रमण करता है । उस मास के अन्तिम दिन चार अंगुल अधिक दो पद पुरुषछायाप्रमाण पौरुषी होती है ।

भगवन् ! वर्षाकाल के भाद्रपद मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ? गौतम ! चार, धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वभाद्रपदा तथा उत्तरभाद्रपदा । धनिष्ठा नक्षत्र १४ अहोरात्र, शतभिषक् नक्षत्र ७ अहोरात्र, पूर्वभाद्रपदा नक्षत्र ८ अहोरात्र तथा उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र १ अहोरात्र परिसमाप्त करता है । उस महीने में सूर्य आठ अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । वर्षाकाल के आश्विन मास को तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं– उत्तराभाद्रपदा, रेवती तथा अश्विनी । उत्तराभाद्रपदा १४ रातदिन, रेवती नक्षत्र १५ रातदिन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा अश्विनी नक्षत्र एक रातदिन परिसमाप्त करता है । उस मास में सूर्य १२ अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । उस समय के अन्तिम दिन परिपूर्ण तीन पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है । वर्षाकाल के कार्तिक मास को तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—अश्विनी, भरणी तथा कृत्तिका । अश्विनी नक्षत्र १४ रातदिन, भरणी नक्षत्र १५ रातदिन, तथा कृत्तिका नक्षत्र १ रातदिन में परिसमाप्त करता है । उस महीने में सूर्य १६ अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । उस महीने के अंतिम दिन ४ अंगुल अधिक तीन पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होत है ।

चातुर्मास हेमन्तकाल के मार्गशीर्ष मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ? गौतम ! तीन, —कृतिका, रोहिणी तथा मृगशिर । कृत्तिका १४ अहोरात्र, रोहिणी १५ अहोरात्र तथा मृगशिर नक्षत्र १ अहोरात्र में परिसमाप्त करता है । उस महीने में सूर्य २० अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । उस महीने के अन्तिम दिन ८ अंगुल अधिक तीन पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है । हेमन्तकाल के पौष मास को चार नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु तथा पुष्य । मृगशिर १४ रातदिन, आर्द्रा ८ रातदिन, पुनर्वसु ७ रातदिन तथा पुष्य १ रातदिन परिसमाप्त करता है । तब सूर्य २४ अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । उस महीने के अन्तिम दिन परिपूर्ण चार पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है । हेमन्तकाल के माघ मास को तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—पुष्य, अश्लेषा तथा मघा । पुष्य १४ रातदिन, अश्लेषा १५ रातदिन तथा मघा १ रातदिन में परिसमाप्त करता है । तब सूर्य २० अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । उस महीने के अंतिम दिन आठ अंगुल अधिक तीन पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है । हेमन्तकाल के—फाल्गुन मास को तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—मघा, पूर्वाफाल्गुनी तथा उत्तराफाल्गुनी । मघा १४ रातदिन, पूर्वाफाल्गुनी १५ रातदिन तथा उत्तराफाल्गुनी १ रातदिन में परिसमाप्त करता है। तब सूर्य सोलह अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । उस महीने के अन्तिम दिन चार अंगुल अधिक तीन पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है ।

भगवन् ! चातुर्मासिक ग्रीष्मकाल के—चैत्र मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ? तीन, उत्तराफाल्गुनी, हस्त तथा चित्रा । उत्तराफाल्गुनी १४ रातदिन, हस्त १५ रातदिन तथा चित्रा १ रातदिन में परिसमाप्त करता है । तब सूर्य १२ अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । उस महीने के अन्तिम दिन परिपूर्ण तीन पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है । ग्रीष्मकाल के वैशाख मास को तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—चित्रा, स्वाति तथा विशाखा । चित्रा १४ रातदिन, स्वाति १५ रातदिन तथा विशाखा १ रातदिन में परिसमाप्त करता है । तब सूर्य आठ अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । उस महीने के अन्तिम दिन आठ अंगुल अधिक दो पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है । ग्रीष्मकाल के ज्येष्ठ मास को चार नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा तथा मूल । विशाखा १४ रातदिन, अनुराधा ८ रातदिन, ज्येष्ठा ७ रातदिन तथा मूल १ रातदिन में परिसमाप्त करता है । तब सूर्य चार अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । उस महीने के अन्तिम दिन चार अंगुल अधिक दो पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है । ग्रीष्मकाल के आषाढ मास को तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—मूल, पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढा । मूल १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रातदिन, पूर्वाषाढा १५ रातदिन तथा उत्तराषाढा १ रातदिन में परिसमाप्त करता है । सूर्य तब वृत्त, समचौरस, संस्थानयुक्त, न्यग्रोधपरिमण्डल–नीचे से संकीर्ण, प्रकाश्य वस्तु के कलेवर के सदृश आकृतिमय छाया से युक्त अनुपर्यटन करता है । उस महीने के अन्तिम दिन परिपूर्ण दो पद पुरुषछायायुक्त पोरिसी होती है ।

[३३३] योग, देवता, तारे, गोत्र, संस्थान, चन्द्र-सूर्य-योग, कुल, पूर्णिमा, अमावस्या, छाया–इनका वर्णन, उपर्युक्त है ।

[३३४] सोलह द्वार क्रमशः इसी प्रकार है–चन्द्र तथा सूर्य के तारा विमानों के अधिष्ठातृ-देवों, चन्द्र-परिवार, मेरु से ज्योतिश्चक्र के अन्तर, लोकान्त से ज्योतिश्चक्र के अन्तर, भूतल से ज्योतिश्चक्र के अन्तर तथा छठा द्वार–नक्षत्र अपने चार क्षेत्र के भीतर, बाहर या ऊपर चलते हैं ? इस सम्बन्ध में वर्णन है ।

[३३५] ज्योतिष्क विमानों के संस्थान, ज्योतिष्क देवों की संख्या, चन्द्र आदि देवों के विमानों को करनेवाले देव, देवगति, देवऋद्धि, ताराओं के पारस्परिक अन्तर, चन्द्र आदि की अग्रमहिषियों, आभ्यन्तर परिषत् एवं देवियों के साथ भोग-सामर्थ्य, ज्योतिष्क देवों के आयुष्य तथा सोलहवाँ द्वार–ज्योतिष्क देवों के अल्पबहुत्व का वर्णन है ।

[३३६] भगवन् ! क्षेत्र की अपेक्षा से चन्द्र तथा सूर्य के अधस्तन प्रदेशवर्ती तारा विमानों के अधिष्ठातृ देवों में से कतिपय क्या द्युति, वैभव आदि की दृष्टि से चन्द्र एवं सूर्य से अणु-हीन हैं ? क्या कतिपय उनके समान हैं ? क्षेत्र की अपेक्षा से चन्द्र आदि के विमानों के समश्रेणीवर्ती तथा उपरितन प्रदेशवर्ती ताराविमानों के अधिष्ठातृ देवों में से कतिपय क्या द्युति, वैभव आदि में उनसे न्यून हैं ? क्या कतिपय उनके समान हैं ? हाँ, गौतम ! ऐसा ही है ।

[३३७] भगवन् ! ऐसा किस कारण से है ? गौतम ! पूर्व भव में उन ताराविमानों के अधिष्ठातृ देवों का तप आचरण, नियमानुपालन तथा ब्रह्मचर्य-सेवन जैसा-जैसा उच्च या अनुच्च होता है, तदनुरूप उनमें द्युति, वैभव आदि की दृष्टि से चन्द्र आदि से हीनता–या तुल्यता होती है । पूर्व भव में उन देवों का तप आचरण नियमानुपालन, ब्रह्मचर्य-सेवन जैसे-जैसे उच्च या अनुच्च नहीं होता, तदनुसार उनमें द्युति, वैभव आदि की दृष्टि से चन्द्र आदि से न हीनता होती है, न तुल्यता होती है ।

[३३८] भगवन् ! एक एक चन्द्र का महाग्रह-परिवार, नक्षत्र-परिवार तथा तारागण-परिवार कितना कोड़ाकोड़ी है ? गौतम ! प्रत्येक चन्द्र का परिवार ८८ महाग्रह हैं, २८ नक्षत्र हैं तथा ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारागण हैं ।

[३३९] भगवन् ! ज्योतिष्क देव मेरु पर्वत से कितने अन्तर पर गति करते हैं ? गौतम ! ११२१ योजन की दूरी पर । ज्योतिश्चक्र–लोकान्त से अलोक से पूर्व ११११ योजन के अन्तर पर स्थित है । अधस्तन ज्योतिश्चक्र धरणितल से ७९० योजन की ऊँचाई पर गति करता है । इसी प्रकार सूर्यविमान धरणितल से ८०० योजन की ऊँचाई पर, चन्द्रविमान ८८० योजन की ऊँचाई पर तथा नक्षत्र-ग्रह-प्रकीर्ण तारे ९०० योजन की ऊँचाई पर गति करते हैं । ज्योतिश्चक्र के अधस्तनतल से सूर्यविमान १० योजन के अन्तर पर, ऊँचाई पर गति करता है । चन्द्र-विमान ९० योजन के और प्रकीर्ण तारे ११० योजन के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तर पर, ऊँचाई पर गति करते हैं । सूर्य के विमान से चन्द्रमा का विमान ८० योजन के अन्तर पर, ऊँचाई पर गति करता है । तारारूप ज्योतिश्चक्र १०० योजन के अन्तर पर, ऊँचाई पर गति करता है । वह चन्द्रविमान से २० योजन दूरी पर, ऊँचाई पर गति करता है।

[३४०] भगवन् ! जम्बूद्वीप में अट्ठाईस नक्षत्रों में कौनसा नक्षत्र सर्व मण्डलों के भीतर, कौनसा नक्षत्र समस्त मण्डलों के बाहर, कौनसा नक्षत्र सब मण्डलों के नीचे और कौनसा नक्षत्र सब मण्डलों के ऊपर होता हुआ गति करता है ? गौतम ! अभिजित् नक्षत्र सर्वाभ्यन्तर-मण्डल में से, मूल नक्षत्र सब मण्डलों के बाहर, भरणी नक्षत्र सब मण्डलों के नीचे तथा स्वाति नक्षत्र सब मण्डलों के ऊपर होता हुआ गति करता है ।

भगवन् ! चन्द्रविमान का संस्थान–कैसा है ? गौतम ! ऊपर की ओर मुँह कर रखे हुए आधे कपित्थ के फल के आकार का है । वह संपूर्णतः स्फटिकमय है । अति उन्नत है । सूर्य आदि सर्व ज्योतिष्क देवों के विमान इसी प्रकार के समझना । चन्द्रविमान कितना लम्बा-चौड़ा तथा ऊँचा है ?

[३४१] गौतम ! चन्द्रविमान ५६/६१ योजन चौड़ा, उतना ही लम्बा तथा २८/६१ योजन ऊंचा है ।

[३४२] सूर्यविमान ४८/६१ योजन चौड़ा, उतना ही लम्बा तथा २४/६१ योजन ऊंचा है ।

[३४३] ग्रहों, नक्षत्रों तथा ताराओं के विमान क्रमशः २ कोश, १ कोश तथा १/२ कोश विस्तीर्ण हैं । ऊँचाई उन से आधी होती है ।

[३४४] भगवन् ! चन्द्रविमान को कितने हजार देव परिवहन करते हैं ? गौतम ! सोलह हजार, चन्द्रविमान के पूर्व में श्वेत, सुभग, जनप्रिय, सुप्रभ, शंख के मध्यभाग, जमे हुए दहीं, गाय के दूध के झाग तथा रजतनिकर, उज्ज्वल दीप्तियुक्त, स्थिर, लष्ट, प्रकोष्ठक, वृत्त, पीवर, सुश्लिष्ट, विशिष्ट, तीक्ष्ण, दंष्ट्राओं प्रकटित मुखयुक्त, रक्तोत्पल, अत्यन्त कोमल तालुयुक्त, घनीभूत, शहद की गुटिका सदृश पिंगल वर्ण के, पीवर, मांसल, उत्तम जंघायुक्त, परिपूर्ण, विपुल, कन्धों से युक्त, मृदु, विशद, सूक्ष्म, प्रशस्त, लक्षणयुक्त, उत्तम वर्णमय, कन्धों पर उगे अयालों से शोभित उच्छ्रित, सुनमित, सुजात, आस्फोटित, वज्रमय नखयुक्त, वज्रमय दंष्ट्रायुक्त, वज्रमय दाँतों वाले, अग्नि में तपाये हुए स्वर्णमय जिह्वा तथा तालु से युक्त, तपनीय स्वर्णनिर्मित योक्त्रक–के साथ सुयोजित, कामगम, प्रीतिगम, मनोगम, मनोरम, अमितगति, अपरिमित बल, वीर्य, पुरुषार्थ तथा पराक्रम से युक्त, उच्च गम्भीर स्वर से सिंहनाद करते हुए, अपनी मधुर, मनोहर ध्वनि द्वारा गगन-मण्डल को आपूर्ण करते हुए, दिशाओं को सुशोभित करते हुए चार हजार सिंहरूपधारी देव विमान के पूर्वी पार्श्व को परिवहन किये चलते हैं । चन्द्रविमान के दक्षिण में सफेद वर्णयुक्त, सौभाग्ययुक्त यावत् को सुशोभित करते हुए चार हजार गजरूपधारी देव विमान के दक्षिणी पार्श्व को परिवहन करते हैं । चन्द्र-विमान के पश्चिम में सफेद वर्णयुक्त, यावत् दिशाओं को सुशोभित करते हुए चार हजार वृषभ-रूपधारी देव विमान के पश्चिमी पार्श्व का परिवहन करते हैं । चन्द्र-विमान के उत्तर में श्वेतवर्णयुक्त, सौभाग्ययुक्त यावत् दिशाओं को सुशोभित करते हुए चार हजार अश्वरूपधारी देव विमान के उत्तरी पार्श्व को परिवहन करते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३४५] चार-चार हजार सिंहरूपधारी देव, चार-चार हजार गजरूपधारी देव, चार-चार हजार वृषभरूपधारी देव तथा चार-चार हजार अश्वरूपधारी देव—कुल सोलह-सोलह हजार देव सूर्य विमानों का परिवहन करते हैं । ग्रहों के विमानों का दो-दो हजार सिंहरूपहधारी देव, दो-दो हजार गजरूपधारी देव, दो-दो हजार वृषभरूपधारी देव और दो-दो हजार अश्वरूपधारी देव—कुल आठ-आठ हजार देव परिवहन करते हैं ।

[३४६] नक्षत्रों के विमानों का एक-एक हजार सिंहरूपधारी देव, एक-एक हजार गजरूपधारी देव एक-एक हजार वृषभरूपधारी देव एवं एक-एक हजार अश्वरूपधारी देव—कुल चार-चार हजार देव परिवहन करते हैं । तारों के विमानों का पाँच-पाँच सौ सिंहरूपधारी देव, पाँच-पाँच सौ गजरूपधारी देव, पाँच-पाँच सौ वृषभरूपधारी देव तथा पाँच-पाँच सौ अश्वरूपधारी देव—कुल दो-दो हजार देव परिवहन करते हैं ।

[३४७] उपर्युक्त चन्द्र-विमानों के वर्णन के अनुरूप सूर्य-विमान यावत् तारा-विमानों का वर्णन है ।

[३४८] भगवन् ! इन चन्द्रों, सूर्यों, ग्रहों, नक्षत्रों तथा तारों में कौन सर्वशीघ्रगति हैं ? कौन सर्वशीघ्रतर गतियुक्त हैं ? गौतम ! चन्द्रों की अपेक्षा सूर्य, सूर्यों की अपेक्षा ग्रह, ग्रहों की अपेक्षा नक्षत्र तथा नक्षत्रों की अपेक्षा तारे शीघ्र गतियुक्त हैं । इनमें चन्द्र सबसे अल्प या मन्दगतियुक्त हैं तथा तारे सबसे अधिक शीघ्रगतियुक्त हैं ।

[३४९] इन चन्द्रों, सूर्यों, ग्रहों, नक्षत्रों तथा तारों में कौन सर्वमहर्द्धिक हैं ? कौन सबसे अल्प ऋद्धिशाली हैं ? गौतम ! तारों से नक्षत्र, नक्षत्रों से ग्रह, ग्रहों से सूर्य तथा सूर्यों से चन्द्र अधिक ऋद्धिशाली हैं । तारे सबसे कम ऋद्धिशाली तथा चन्द्र सबसे अधिक ऋद्धि-शाली हैं ।

[३५०] भगवन् ! जम्बूद्वीप में एक तारे से दूसरे तारे का कितना अन्तर है ? गौतम ! अन्तर दो प्रकार का है—व्याघातिक और निर्व्याघातिक । एक तारे से दूसरे तारे का निर्व्याघातिक अन्तर जघन्य ५०० धनुष तथा उत्कृष्ट २ गव्यूत है । एक तारे से दूसरे तारे का व्याघातिक अन्तर जघन्य २६६ योजन तथा उत्कृष्ट १२२४२ योजन है ।

[३५१] भगवन् ! ज्योतिष्क देवों के इन्द्र, ज्योतिष्क देवों के राजा चन्द्र के कितनी अग्रमहिषियां हैं ? गौतम ! चार, —चन्द्रप्रभा, ज्योत्सनाभा, अर्चिमाली तथा प्रभंकरा । उनमें से एक-एक अग्रमहिषी का चार-चार हजार देवी-परिवार है । एक-एक अग्रमहिषी अन्य सहस्र देवियों की विकुर्वणा करने में समर्थ होती है । यों विकुर्वणा द्वारा सोलह हजार देवियाँ निष्पन्न होती हैं । भगवन् ! क्या ज्योतिष्केन्द्र, ज्योतिष्कराज चन्द्रावतंसक विमान में चन्द्रा राजधानी में सुधर्मासभा में अपने अन्तःपुर के साथ नाट्य, गीत, वाद्य आदि का आनन्द लेता हुआ दिव्य भोग भोगने में समर्थ होता है ? गौतम ! ऐसा नहीं होता—क्योंकी—ज्योतिष्केन्द्र, ज्योतिष्कराज चन्द्र के चन्द्रावतंसक विमान में चन्द्रा राजधानी में सुधर्मासभा में माणवक नामक चैत्यस्तंभ है । उस पर वज्रमय गोलाकार सम्पुटरूप पात्रों में बहुत सी जिन-सक्थियाँ हैं । वे चन्द्र तथा अन्य बहुत से देवों एवं देवियों के लिए अर्चनीय तथा पर्युपासनीय हैं । वह वहाँ केवल अपनी परिवार-ऋद्धि—यह मेरा अन्तःपुर है, मैं इनका स्वामी हूं—यों अपने वैभव तथा प्रभुत्व की सुखानुभूति कर सकता है, मैथुनसेवन नहीं करता । सब ग्रहों आदि की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजया, वैजयन्ती, जयन्ती तथा अपराजिता नामक चार-चार अग्रमहिषियाँ हैं । यों १७६ ग्रहों की इन्हीं नामों की अग्रमहिषियाँ हैं ।

[३५२-३५४] अङ्गारक, विकालक, लोहिताङ्क, शनैश्चरस आधुनिक, प्राधुनिक, कण, कणक, कणकणक, कणवितानक, कणसन्तानक. सोम, सहित, आश्वासन, कार्योपग, कुर्बुरक, अजकरक, दुन्दुभक, शंख, शंखनाभ, शंखवर्णाभ– । यों भावकेतु पर्यन्त ग्रहों का उच्चारण करना । उन सबकी अग्रमहिषियाँ उपर्युक्त नामों की हैं ।

[३५५] भगवन् ! चन्द्र-विमान में देवों की स्थिति कितने काल की होती है ? गौतम ! चन्द्र-विमान में देवों की स्थिति जघन्य– १/४ पल्योपम तथा उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम, देवियों की स्थिति जघन्य १/४ पल्योपम तथा उत्कृष्ट–पचास हजार वर्ष अधिक अर्ध पल्योपम होती है । सूर्य-विमान में देवों की स्थिति जघन्य १/४ पल्योपम तथा उत्कृष्ट एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम, देवियों की स्थिति जघन्य १/४ पल्योपम तथा उत्कृष्ट पाँचसौ वर्ष अधिक अर्ध पल्योपम होती है । ग्रह-विमान में देवों की स्थिति जघन्य १/४ पल्योपम तथा उत्कृष्ट एक पल्योपम । देवियों की स्थिति जघन्य १/४ पल्योपम तथा उत्कृष्ट कुछ अधिक १/४ पल्योपम होती है ।

[३५६] नक्षत्रों के अधिदेवता–इस प्रकार हैं–अभिजित् के ब्रह्मा, श्रवण के विष्णु, धनिष्ठा के वसु, शतभिषक् के वरुण, पूर्वभाद्रपदा के अज, उत्तरभाद्रपदा के वृद्धि, रेवती के पूषा, अश्विनी के अश्व, भरणी के यम, कृत्तिका के अग्नि, रोहिणी के प्रजापति, मृगशिर के सोम, आर्द्रा के रुद्र, पुनर्वसु के अदिति, पुष्य के बृहस्पति और अश्लेषा के अधिदेवता सर्प है । तथा–

[३५७] मघा के पिता, पूर्वफाल्गुनी के भग, उत्तरफाल्गुनी के अर्यमा, हस्त के सविता, चित्रा के त्वष्टा, स्वाति के वायु, विशाखा के इन्द्राग्नी, अनुराधा के मित्र, ज्येष्ठा के इन्द्र, मूल के निर्ऋति, पूर्वाषाढा के आप तथा उत्तराषाढा के अधिदेवता विश्वे है ।

[३५८] यह संग्रहणी गाथाएं है ।

[३५९] भगवन् ! चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा ताराओं में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य तथा विशेषाधिक हैं ? गौतम ! चन्द्र और सूर्य तुल्य हैं । वे सबसे कम हैं । उनसे नक्षत्र संख्येय गुणे हैं । नक्षत्रों से ग्रह संख्येय गुने हैं । गहों से तारे संख्येय गुने हैं ।

[३६०] भगवन् जम्बूद्वीप में जघन्य तथा उत्कृष्ट कितने तीर्थंकर हैं ? गौतम ! जघन्य चार तथा उत्कृष्ट चौतीस तीर्थंकर होते हैं । जम्बूद्वीप में चक्रवर्ती कम से कम चार तथा अधिक से अधिक तीस होते हैं । जितने चक्रवर्ती होते हैं, उतने ही बलदेव होते हैं, वासुदेव भी उतने ही होते हैं । जम्बूद्वीप में निधि-रत्न ३०६ होते हैं । उसमें कम से कम ३६ तथा अधिक से अधिक २७० निधि-रत्न यथाशीघ्र परिभोग-उपयोग में आते हैं ।

[३६१] भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने सौ पञ्चेन्द्रिय-रत्न होते हैं ? २१० हैं । उसमें– कम से कम २८ और अधिक से अधिक २१० पञ्चेन्द्रिय-रत्न यथाशीघ्र परिभोग में आते हैं।

[३६२] भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने सौ एकेन्द्रिय रत्न होते हैं ? २१० हैं । उसमें– कम से कम २८ तथा अधिक से अधिक २१० एकेन्द्रिय-रत्न यथाशीघ्र परिभोग में आते हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप की लम्बाई-चौड़ाई, परिधि, भूमिगत गहराई, ऊँचाई कितनी है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौतम ! जम्बूद्वीप की लम्बाई-चौड़ाई १,००,००० योजन तथा परिधि ३,१६,२२७ योजन ३ कोश १२८ धनुष कुछ अधिक १३।। अंगुल है । इसकी भूमिगत गहराई १००० योजन, ऊँचाई कुछ अधिक ९९,००० योजन तथा भूमिगत गहराई और ऊँचाई दोनों मिलाकर कुछ अधिक १,००,००० योजन है ।

[३६३] भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप पृथ्वी-परिणाम है, अप्-परिणाम है, जीव-परिणाम है, पुद्गलपरिणाम है ? गौतम ! पृथ्वी, जल, जीव तथा पुद्गलपिण्डमय भी है । भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप में सर्वप्राण, सर्वजीव, सर्वभूत, सर्वसत्त्व–ये सब पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक तथा वनस्पतिकायिक के रूप में पूर्वकाल में उत्पन्न हुए हैं ? हाँ, गौतम ! वे अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं ।

[३६४] भगवन् ! जम्बूद्वीप 'जम्बूद्वीप' क्यों कहलाता है ? गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में स्थान-स्थान पर बहुत से जम्बू वृक्ष हैं, जम्बू वृक्षों से आपूर्ण वन हैं, वन-खण्ड हैं–वे अपनी सुन्दर लुम्बियों तथा मञ्जरियों के रूप में मानो शिरोभूषण–धारण किये रहते हैं । वे अपनी श्री द्वारा अत्यन्त सोभित होते हुए स्थित हैं । जम्बू सुदर्शना पर परम ऋद्धिशाली, पल्योपम-आयुष्ययुक्त अनाहत नामक देव निवास करता है । गौतम ! इसी कारण वह जम्बूद्वीप कहा जाता है ।

[३६५] आर्य जम्बू ! मिथिला नगरी में मणिभद्र चैत्य में बहुत-से श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों, श्राविकाओं, देवों, देवियों की परिषद् के बीच श्रमण भगवान् महावीर ने शस्त्रपरिज्ञादि को ज्यों श्रुतस्कन्धादि में जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति का आख्यान किया–भाषण किया निरूपण किया, प्ररूपण किया । विस्मरणशील श्रोतृवृन्द पर अनुग्रह कर अर्थ, तात्पर्य, हेतु, प्रश्न, पृष्ट अर्थ के प्रतिपादन, कारण तथा व्याकरण स्पष्टीकरण द्वारा प्रस्तुत शास्त्र का बार बार उपदेश किया।

१८	जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति-उपांगसूत्र-७-हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

१९ निरयावलिका

उपांगसूत्र-८-हिन्दी अनुवाद

अध्ययन-१-काल

[१] श्रुतदेवता को नमस्कार । उस काल उस समय में राजगृह नगर था । वह ऋद्धि-समृद्धि से सम्पन्न था । उसके उत्तर-पूर्व में गुणशिलक चैत्य था । वहाँ उत्तम अशोक वृक्ष था और उसके नीचे एक पृथ्वीशिलापट्टक रखा था ।

[२] उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के अंतेवासी जाति, कुल सम्पन्न आर्य सुधर्मास्वामी अनगार यावत् पांच सौ अनगारों के साथ पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए जहाँ राजगृह नगर पधारे यावत् यथा-प्रतिरूप अवग्रह प्राप्त करके संयम एवं तपश्चर्या से यावत् आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे । दर्शनार्थ परिषद् निकली, धर्मोपदेश दिया, परिषद् वापिस लौटी ।

[३] उस काल और उस समय में आर्य सुधर्मास्वामी अनगार के शिष्य समचतुरस्र-संस्थान वाले यावत् अपने अन्तर में विपुल तेजोलेश्या को समाहित किये हुए जम्बू अनगार आर्य सुधर्मास्वामी के थोड़ी दूरी पर ऊपर को घुटने किए हुए थे ।

[४] उस समय जम्बूस्वामी को श्रद्धा-संकल्प उत्पन्न हुआ यावत् पर्युपासना करते हुए उन्होंने कहा 'भदन्त ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त–भगवान् महावीर ने उपांगों का क्या अर्थ कहा है ? हे जम्बू ! उपांगो के पाँच वर्ग कहे हैं । निरयावलिका, कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका और वृष्णिदशा ।

[५] हे भदन्त ! श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त भगवान् ने निरयावलिका नामक प्रथम उपांग-वर्ग के कितने अध्ययन कहे है ? हे जम्बू ! भगवान् महावीर ने प्रथम उपांग निरयावलिया–के दस अध्ययन कहे हैं–काल, सुकाल, महाकाल, कृष्ण, सुकृष्ण, महाकृष्ण, वीरकृष्ण, रामकृष्ण, पितृसेन और महासेनकृष्ण । जम्बू अनगार ने पुनः कहा–भगवान् महावीर ने निरयावलिका के दस अध्ययन कहे है तो प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ बताया है ?

–उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में ऋद्धि आदि से सम्पन्न चम्पा नगरी थी । उसके उत्तर-पूर्व दिग्भाग में पूर्णभद्र चैत्य था । श्रेणिक राजा का पुत्र एवं चेलना देवी का अंगजात–कूणिक महामहिमाशाली राजा था । कूणिक राजा की रानी पद्मावती थी । वह अतीव सुकुमाल अंगोपांगों वाली थी । उसी चम्पा नगरी में श्रेणिक राजा की पत्नी और कूणिक राजा की छोटी माता काली नाम की रानी थी, जो हाथ पैर आदि सुकोमल अंग-प्रत्यंगों वाली थी यावत् सुरूपा थी ।

[६] उस काली देवी का पुत्र काल नामक कुमार था । वह सुकोमल यावत् रूप-सौन्दर्यशाली था । तदनन्तर किसी समय कालकुमार ३००० हाथियों, ३००० रथों, ३००० अश्वों और तीन कोटि मनुष्यों को लेकर गरुडव्यूह में, ग्यारहवें खण्ड-अंश के भागीदार कूणिक राजा के साथ रथमूसल संग्राम में प्रवृत्त हुआ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[७] तब एक बार अपने कुटुम्ब-परिवार की स्थिति पर विचार करते हुए काली देवी के मन में इस प्रकार का संकल्प उत्पन्न हुआ—'मेरा पुत्रकुमार काल ३००० हाथियों आदि को लेकर यावत् रथमूसल संग्राम में प्रवृत्त हुआ है । तो क्या वह विजय प्राप्त करेगा अथवा नहीं ? वह जीवित रहेगा अथवा नहीं ? शत्रु को पराजित करेगा या नहीं ? क्या मैं काल कुमार को जीवित देख सकूंगी ?' इत्यादि विचारों से वह उदास हो गई । निरुत्साहित-सी होती हुई यावत् आर्तध्यान में मग्न हो गई । उसी समय में श्रमण भगवान् महावीर का चम्पा नगरी में पदार्पण हुआ । वन्दना-नमस्कार करने एवं धर्मोपदेश सुनने के लिए जन-परिषद् निकली । तब वह काली देवी भी इस संवाद को जान कर हर्षित हुई और उसे इस प्रकार का आन्तरिक यावत् संकल्प-विचार उत्पन्न हुआ । तथारूप श्रमण भगवन्तों का नामश्रवण ही महान् फलप्रद हैं तो उनके समीप पहुँच कर वन्दन-नमस्कार करने के फल के विषय में तो कहना ही क्या है ? यावत् मैं श्रमण भगवान् के समीप जाऊँ, यावत् उनकी पर्युपासना करूँ और उनसे पूर्वोल्लिखित प्रश्न पूछूँ । काली रानी ने कौटुम्बिक पुरुषो—को बुलाया । आज्ञा दी—'देवानुप्रियो ! शीघ्र ही धार्मिक कार्यों में प्रयोग किये जाने वाले श्रेष्ठ रथ को जोत कर लाओ ।'

तत्पश्चात् स्नान कर एवं बलिकर्म कर काली देवी यावत् महामूल्यवान् किन्तु अल्प आभूषणों से विभूषित हो अनेक कुब्जा दासियों यावत् महत्तरकवृन्द को साथ लेकर अन्तःपुर से निकली । अपने परिजनों एवं परिवार से परिवेष्टित होकर जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ पहुँची। तीर्थंकरों के छत्रादि अतिशयों-प्रातिहार्यों के दृष्टिगत होते ही धार्मिक श्रेष्ठ रथ को रोका। धार्मिक श्रेष्ठ रथ से नीचे उतरी और श्रमण भगवान् महावीर बिराजमान थे, वहाँ पहुँची। तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा करके वन्दना-नमस्कार किया और वहीं बैठ कर सपरिवार भगवान् की देशना सुनने के लिए उत्सुक होकर विनयपूर्वक पर्युपासना करने लगी ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् ने यावत् उस काली देवी और विशाल जनपरिषद् को धर्मदेशना सुनाई इसके बाद श्रमण भगवान् महावीर से धर्मश्रवण कर और उसे हृदय में अवधारित कर काली रानी ने हर्षित, संतुष्ट यावत् विकसितहृदय होकर श्रमण भगवान् को तीन वार वंदन—नमस्कार करके कहा—भदन्त ! मेरा पुत्र काल कुमार रथमूसल संग्राम में प्रवृत्त हुआ है, तो क्या वह विजयी होगा अथवा नहीं ? यावत् क्या मैं काल कुमार को जीवित देख सकूंगी ? श्रमण भगवान् ने काली देवी से कहा—काली ! तुम्हारा पुत्र कालकुमार, जो यावत् कूणिक राजा के साथ रथमूसल संग्राम में जूझते हुए वीरवरों को आहत, मर्दित, घातित करते हुए और उनकी संकेतसूचक ध्वजा-पताकाओं को भूमिसात् करते हुए—दिशा विदिशाओं को आलोकशून्य करते हुए रथ से रथ को अड़ाते हुए चेटक राजा के सामने आया । तब चेटक राजा क्रोधाभिभूत हो यावत् मिस-मिसाते हुए धनुष को उठाया । बाण को हाथ में लिया, धनुष पर बाण चढ़ाया, उसे कान तक खींचा और एक ही वार में आहत करके, रक्तरंजित करके निष्प्राण कर दिया । अतएव हे काली वह काल कुमार मरण को प्राप्त हो गया है। अब तुम काल कुमार को जीवित नहीं देख सकती हो ।

श्रमण भगवान् महावीर के इस कथन को सुनकर और हृदय में धारण करके काली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रानी घोर पुत्र-शोक से अभिभूत, चम्पकलता के समान पछाड़ खाकर धड़ाम-से सर्वांगो से पृथ्वी पर गिर पड़ी । कुछ समय के पश्चात् जब काली देवी कुछ आश्वस्त-हुई तब खड़ी हुई और भगवान् को वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा-'भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! ऐसा ही है, भगवन् ! यह अवितथ, है । असंदिग्ध है । यह सत्य है । यह बात ऐसी ही है, जैसी आपने बतलाई है । उसने श्रमण भगवान् को पुनः वंदन-नमस्कार किया। उसी धार्मिक यान पर आरूढ होकर, वापिस लौट गई ।

[८] भगवान् गौतम, श्रमण भगवान् महावीर के समीप आए और वंदन-नमस्कार करके अपनी जिज्ञासा व्यक्त करते हुए कहा-भगवन् ! जो काल कुमार रथमूसल संग्राम करते हुए चेटक राजा के एक ही आघात-से रक्तरंजित हो, जीवनरहित-होकर मृत्यु को प्राप्त करके कहाँ गया है ? कहाँ उत्पन्न हुआ है ? भगवान् ने गौतमस्वामी से कहा-'गौतम ! युद्धप्रवृत्त वह कालकुमार जीवनरहित होकर कालमास में काल करके चौथी पंकप्रभा पृथ्वी के हेमाभ नरक में दस सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में नारक रूप में उत्पन्न हुआ है ।

[९] गौतम ने पुनः पूछा-भदन्त ! किस प्रकार के भोग-संभोगों को भोगने से, कैसे-कैसे आरम्भों और आरम्भ-समारंभों से तथा कैसे आचारित अशुभ कर्मों के भार से मरण करके वह काल कुमार चौथी पंकप्रभापृथ्वी में यावत् नैरयिक रूप से उत्पन्न हुआ है ? भगवान् ने बताया-गौतम ! उस काल और उस समय में राजगृह नगर था । वह नगर वैभव से सम्पन्न, शत्रुओं के भय से रहित और धन-धान्यादि की समृद्धि से युक्त था । उस राजगृह नगर में हिमवान् शैल के सदृश महान् श्रेणिक राजा राज्य करता था । श्रेणिक राजा की अंग-प्रत्यंगों से सुकुमाल नन्दा रानी थी, जो मानवीय कामभोगों को भोगती हुई यावत् समय व्यतीत करती थी । उस श्रेणिक राजा का पुत्र और नन्दा रानी का आत्मज अभय कुमार था, जो सुकुमाल यावत् सुरूप था तथा साम, दाम, भेद और दण्ड की राजनीति में चित्त सारथि के समान निष्णात था यावत् राज्यधुरा-शासन का चिन्तक था । उस श्रेणिक राजा की चेलना रानी भी थी । वह सुकुमाल हाथ-पैर वाली थी यावत् सुखपूर्वक विचरण करती थी । किसी समय शयनगृह में चिन्ताओं आदि से मुक्त सुख-शय्या पर सोते हुए वह चेलना देवी प्रभावती देवी के समान स्वप्न में सिंह को देखकर जागृत हुई, यावत् स्वप्न-पाठकों को आमंत्रित करके राजा ने उसका फल पूछा । स्वप्नपाठकों ने स्वप्न का फल बतलाया । स्वप्न-पाठकों को विदा किया यावत् चेलना देवी उन स्वप्नपाठकों के वचनों को सहर्ष स्वीकार करके अपने वासभवन में चली गई ।

[१०] तत्पश्चात् परिपूर्ण तीन मास बीतने पर चेलना देवी को इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ-वे माताएँ धन्य हैं यावत् वे पुण्यशालिनी हैं, उन्होंने पूर्व में पुण्य उपार्जित किया है, उनका वैभव सफल है, मानवजन्म और जीवन का, सुफल प्राप्त किया है जो श्रेणिक राजा की उदरावली के शूल पर सेके हुए, तले हुए, भूने हुए मांस का तथा सुरा यावत् मधु, मेरक, मद्य, सीधु और प्रसन्ना नामक मदिराओं का आस्वादन यावत् विस्वादन तथा उपभोग करती हुई और अपनी सहेलियों को आपस में वितरित करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती हैं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु इस अयोग्य एवं अनिष्ट दोहद के पूर्ण न होने से चेलना देवी शुष्क, पीड़ित, मांसरहित, जीर्ण और जीर्ण शरीर वाली हो गई, निस्तेज, दीन, विमनस्के जैसी हो गई, विवर्णमुखी, नेत्र और मुखकमल को नमाकर यथोचित पुष्प, वस्त्र, गन्ध, माला और अलंकारों का उपभोग नहीं करती हुई, मुरझाई हुई, आहतमनोरथा यावत् चिन्ताशोक-सागर में निमग्न हो, हथेली पर मुख को टिकाकर आर्त्तध्यान में डूब गई । तब चेलना देवी की अंगपरिचारिकाओं ने चेलना देवी को सूखी-सी, भूख से ग्रस्त-सी यावत् चिन्तित देखा । वे श्रेणिक राजा के पास पहुँची । उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर अंजलि करके श्रेणिक राजा से कहा—'स्वामिन् ! न मालूम किस कारण से चेलना देवी शुष्क-बुभुक्षित जैसी होकर यावत् आर्त्तध्यान में डूबी हुई हैं ।

श्रेणिक राजा उन अंगपरिचारिकाओं की इस बात को सुनकर और समझकर आकुल-व्याकुल होता हुआ, चेलना देवी के पास आया । चेलना देवी को सूखी-सी, भूख से पीड़ित जैसी, यावत् आर्त्तध्यान करती हुई देखकर बोला—'देवानुप्रिये ! तुम क्यों शुष्कशरीर, भूखी-सी यावत् चिन्ताग्रस्त हो रही हो ?' लेकिन चेलना देवी ने श्रेणिक राजा के इस प्रश्न का आदर नहीं किया, वह चुपचाप बैठी रही । तब श्रेणिक राजा ने पुनः दूसरी बार और फिर तीसरी बार भी यही प्रश्न चेलना देवी से पूछा और कहा—देवानुप्रिये ! क्या मैं इस बात को सुनने के योग्य नहीं हूँ जो तुम मुझसे इसे छिपा रही हो ? चेलना देवी ने श्रेणिक राजा से कहा—'स्वामिन् ! बात यह है कि उस उदार यावत् महास्वप्न को देखने के तीन मास पूर्ण होने पर मुझे इस प्रकार का यह दोहद उत्पन्न हुआ है—'वे माताएँ धन्य हैं जो आपकी उदरावलि के शूल पर सेके हुए यावत् मांस द्वारा तथा मदिरा द्वारा अपने दोहद को पूर्ण करती हैं ।' लेकिन स्वामिन् ! उस दोहद को पूर्ण न कर सकने के कारण मैं शुष्कशरीरी, भूखी-सी यावत् चिन्तित हो रही हूँ ।

तब श्रेणिक राजा ने चेलना देवी की उक्त बात को सुनकर उसे आश्वासन देते हुए कहा—देवानुप्रिये ! तुम हतोत्साह एवं चिन्तित न होओ । मैं कोई ऐसा उपाय करूंगा जिससे तुम्हारे दोहद की पूर्ति हो सकेगी । ऐसा कहकर चेलनादेवी को इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम, प्रभावक, कल्याणप्रद, शिव, धन्य, मंगलरूप मृदु-मधुर वाणी से आश्वस्त किया । वह चेलना देवी के पास से निकलकर बाह्य सभाभवन में उत्तम सिंहासन के पास आया । आकर पूर्व की ओर मुख करके आसीन हो गया । वह दोहद की संपूर्ति के लिए आयों से उपायों से औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी—बुद्धियों से वारंवार विचार करते हुए भी इसके आय-उपाय, स्थिति एवं निष्पत्ति को समझ न पाने के कारण उत्साहहीन यावत् चिन्ताग्रस्त हो उठा । इधर अभयकुमार स्नान करके यावत् अपने शरीर को अलंकृत करके अपने आवासगृह से बाहर निकला । जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आया । उसने श्रेणिक राजा को निरुत्साहित जैसा देखा, यह देखकर वह बोला—तात ! पहले जब कभी आप मुझे आता हुआ देखते थे तो हर्षित यावत् सन्तुष्टहृदय होते थे, किन्तु आज ऐसी क्या बात है जो आप उदास यावत् चिन्ता में डूबे हुए हैं ? तात ! यदि मैं इस अर्थ को सुनने के योग्य हूँ तो आप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्य एवं बिना किसी संकोच-संदेह के कहिए, जिससे मैं उसका हल करने का उपाय करूँ।

अभयकुमार के कहने पर श्रेणिक राजा ने अभयकुमार से कहा—पुत्र ! है पुत्र ! तुम्हारी विमाता चेलना देवी को उस उदार यावत् महास्वप्न को देखे तीन मास बीतने पर यावत् ऐसा दोहद उत्पन्न हुआ है कि जो माताएँ मेरी उदरावलि के शूलित आदि मांस से अपने दोहद को पूर्ण करती है—आदि । लेकिन चेलना देवी उस दोहद के पूर्ण न हो सकने के कारण शुष्क यावत् चिन्तित हो रही है । इसलिए पुत्र ! उस दोहद की पूर्ति के निर्मित आयों यावत् स्थिति को समझ नहीं सकने के कारण मैं भग्नमनोरथ यावत् चिन्तित हो रहा हूँ । श्रेणिक राजा के इस मनोगत भाव को सुनने के बाद अभयकुमार ने श्रेणिक राजा से कहा—'तात ! आप भग्नमनोरथ यावत् चिन्तित न हों, मैं ऐसा कोई जतन करूंगा कि जिससे मेरी छोटी माता चेलना देवी के उस दोहद की पूर्ति हो सकेगी ।' श्रेणिक राजा को आश्वस्त करने के पश्चात् अभयकुमार जहाँ अपना भवन था वहाँ आया । आकर गुप्त रहस्यों के जानकार आन्तरिक विश्वस्त पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा—तुम जाओ और सूनागार में जाकर गीला मांस, रुधिर और वस्तिपुटक लाओ । वे रहस्यज्ञाता पुरुष अभयकुमार की इस बात को सुनकर हर्षित एवं संतुष्ट हुए यावत् अभयकुमार के पास से निकले । गीला मांस, रक्त एवं वस्तिपुटक को लिया । जहाँ अभयकुमार था, वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़कर यावत् उस मांस, रक्त एवं वस्तिपुटक को रख दिया ।

तब अभयकुमार ने उस रक्त और मांस में से थोड़ा भाग कैंची से काटा । जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आया और श्रेणिक राजा को एकान्त में शैया पर चित लिटाया । श्रेणिक राजा की उदरावली पर उस आर्द्र रक्त-मांस को फैला दिया—और फिर वस्तिपुटक को लपेट दिया । वह ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे रक्त-धारा बह रही हो । और फिर ऊपर के माले में चेलना देवी को अवलोकन करने के आसन से बैठाया, बैठाकर चेलना देवी के ठीक नीचे सामने की ओर श्रेणिक राजा को शैया पर चित लिटा दिया । कतरनी से श्रेणिक राजा की उदरावली का मांस काटा, काटकर उसे एक बर्तन में रखा । तब श्रेणिक राजा ने झूठ-मूठ मूर्च्छित होने का दिखावा किया और उसके बाद कुछ समय के अनन्तर आपस में बातचीत करने में लीन हो गए । तत्पश्चात् अभयकुमार ने श्रेणिक राजा की उदरावली के मांस-खण्डों को लिया, लेकर जहाँ चेलना देवी थी, वहाँ आया और आकर चेलना देवी के सामने रख दिया । तब चेलना देवी ने श्रेणिक राजा के उस उदरावली के मांस से यावत् अपना दोहद पूर्ण किया । दोहद पूर्ण होने पर चेलना देवी का दोहद संपन्न, सम्मानित और निवृत्त हो गया । तब वह उस गर्भ का सुखपूर्वक वहन करने लगी ।

[११] कुछ समय व्यतीत होने के बाद एक बार चेलना देवी को मध्य रात्रि में जागते हुए इस प्रकार का यह यावत् विचार उत्पन्न हुआ—'इस बालक ने गर्भ में रहते ही पिता की उदरावलि का मांस खाया है, अतएव इस गर्भ को नष्ट कर देना, गिरा देना, गला देना एवं विध्वस्त कर देना ही मेरे लिए श्रेयस्कर होगा', उसने ऐसा निश्चय करके बहुत सी गर्भ को नष्ट करनेवाली यावत् विध्वस्त करनेवाली औषधियों से उस गर्भ को नष्ट यावत् विध्वस्त करना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहा, किन्तु वह गर्भ नष्ट नहीं हुआ, न गिरा, न गला और न विध्वस्त ही हुआ । तदनन्तर जब चेलना देवी उस गर्भ को यावत् विध्वस्त करने में समर्थ–नहीं हुई तब श्रान्त, क्लान्त, खिन्न और उदास होकर अनिच्छापूर्वक विवशता से दुस्सह आर्त्त ध्यान से ग्रस्त हो उस गर्भ को परिवहन–करने लगी ।

[१२] तत्पश्चात् नौ मास पूर्ण होने पर चेलना देवी ने एक सुकुमार एवं रूपवान् बालक का प्रसव किया–पश्चात् चेलना देवी को विचार आया–'यदि इस बालक ने गर्भ में रहते ही पिता की उदरावलि का मांस खाया है, तो हो सकता है कि यह बालक संवर्धित होने पर हमारे कुल का भी अंत करने वाला हो जाय ! अतएव इस बालक को एकान्त उकरड़े में फेंक देना ही उचित–होगा ।' इस प्रकार का संकल्प करके अपनी दास-चेटी को बुलाया, उससे कहा–तुम जाओ और इस बालक को एकान्त में उकरड़ें में फेंक आओ ।' तत्पश्चात् उस दास चेटी ने चेलना देवी की इस आज्ञा को सुनकर दोनों हाथ जोड़ यावत् चेलना देवी की इस आज्ञा को विनयपूर्वक स्वीकार किया । वह अशोक-वाटिका में गई और उस बालक को एकान्त में उकरड़े पर फेंक दिया । उस बालक के एकान्त में उकरड़े पर फैंके जाने पर वह अशोक-वाटिका प्रकाश से व्याप्त हो गई ।

इस समाचार को सुनकर राजा श्रेणिक अशोक-वाटिका में पहुंचा । वहाँ उस बालक को देखकर क्रोधित हो उठा यावत् रुष्ट, कुपित और चंडिकावत् रौद्र होकर दाँतों को मिसमिसाते हुए उस बालक को उसने हथेलियों में ले लिया और जहाँ चेलना देवी थी, वहाँ आया । चेलना देवी को भले-बुरे शब्दों से फटकारा, पुरुष वचनों से अपमानित किया और धमकाया। फिर कहा–'तुमने क्यों मेरे पुत्र को एकान्त-उकरड़े पर फिकवाया ?' चेलना देवी को भली-बुरी सौगंध–दिलाई और कहा–देवानुप्रिये ! इस बालक की देखरेख करती हुई इसका पालन-पोषण करो और संवर्धन करो । तब चेलना देवी ने श्रेणिक राजा के इस आदेश को सुनकर लज्जित, प्रताडित और अपराधिनी-सी हो कर दोनों हाथ जोड़कर श्रेणिक राजा के आदेश को विनयपूर्वक स्वीकार किया और अनुक्रम से उस बालक की देखरेख, लालन-पालन करती हुई वर्धित करने लगी ।

[१३] एकान्त उकरड़े पर फैंके जाने के कारण उस बालक की अंगुली का आगे का भाग मुर्गे की चोंच से छिल गया था और उससे बार-बार पीव और खून बहता रहता था । इस कारण वह बालक वेदना से चीख-चीख कर रोता था । उस बालक के रोने को सुन और समझकर श्रेणिक राजा बालक के पास आता और उसे गोदी में लेता । लेकर उस अंगुली को मुख में लेता और उस पीव और खून को मुख से चूस लेता, ऐसा करने से वह बालक शांति का अनुभव कर चुप शांत हो जाता । इस प्रकार जब-जब भी वह बालक वेदना के कारण जोर-जोर से रोने लगता, तब-तब श्रेणिक राजा उसी प्रकार चूसता यावत् वेदना शांत हो जाने से वह चुप हो जाता था । तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ने तीसरे दिन चन्द्र सूर्य दर्शन का संस्कार किया, यावत् ग्यारह दिन के बाद बारहवें दिन इस प्रकार का गुण-निष्पन्न नामकरण किया–इस बालक का नाम 'कूणिक' हो । इस प्रकार उस बालक के माता-पिता ने उसका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'कूणिक' यह नामकरण किया । तत्पश्चात् उस बालक का जन्मोत्सव आदि मनाया गया । यावत् मेघकुमार के समान राजप्रासाद में आमोद-प्रमोदपूर्वक समय व्यतीत करने लगा । माता-पिता ने आठ-आठ वस्तुएँ प्रीतिदान में प्रदान की ।

[१४] तत्पश्चात् उस कुमार कूणिक को किसी समय मध्यरात्रि में यावत् ऐसा विचार आया कि श्रेणिक राजा के विघ्न के कारण मैं स्वयं राज्यशासन और राज्यवैभव का उपभोग नहीं कर पाता हूँ, अतएव श्रेणिक राजा को बेड़ी में डाल देना और महान् राज्याभिषेक से अपना अभिषेक कर लेना मेरे लिए श्रेयस्कर होगा । उसने इस प्रकार का संकल्प किया और श्रेणिक राजा के अन्तर, छिद्र और विरह की ताक के रहता हुआ समय-यापन करने लगा । तत्पश्चात् श्रेणिक राजा के अवसरों यावत् मर्मों को जान न सकने के कारण कूणिक कुमार ने एक दिन काल आदि दस राजकुमारों को अपने घर आमंत्रित किया और उनको अपने विचार बताए—श्रेणिक राजा के कारण हम स्वयं राजश्री का उपभोग और राज्य का पालन नहीं कर पा रहे हैं । इसलिए हे देवानुप्रियो ! हमारे लिए श्रेयस्कर यह होगा कि श्रेणिक राजा को बेड़ी में डालकर और राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोष, धान्यभंडार और जनपद को ग्यारह भागों में बांट करके हम लोग स्वयं राजश्री का उपभोग करें और राज्य का पालन करें । कूणिक का कथन सुनकर उन काल आदि दस राजपुत्रों ने उसके इस विचार को विनयपूर्वक स्वीकार किया । कूणिककुमार ने किसी समय श्रेणिक राजा के अंदरूनी रहस्यों को जाना और श्रेणिक राजा को बेड़ी से बाँध दिया । महान राज्याभिषेक से अपना अभिषेक कराया, जिससे वह कूणिक कुमार स्वयं राजा बन गया ।

[१५] किसी दिन कूणिक राजा स्नान करके, बलिकर्म करके, विघ्नविनाशक उपाय कर, मंगल एवं प्रायश्चित्त कर और फिर अवसर के अनुकूल शुद्ध मांगलिक वस्त्रों को पहनकर, सर्व अलंकारों से अलंकृत होकर चेलना देवी के चरणवंदनार्थ पहुँचा । उस समय कूणिक राजा ने चेलना देवी को उदासीन यावत् चिन्ताग्रस्त देखा । चेलना देवी से पूछा—माता ! ऐसी क्या बात है कि तुम्हारे चित्त में संतोष, उत्साह, हर्ष और आनन्द नहीं है कि मैं स्वयं राज्यश्री का उपभोग करते हुए यावत् समय बिता रहा हूँ ? तब चेलना देवी ने कूणिक राजा से कहा—हे पुत्र ! मुझे तुष्टि, उत्साह, हर्ष अथवा आनन्द कैसे हो सकता है, जबकि तुमने देवतास्वरूप, गुरुजन जैसे, अत्यन्त स्नेहानुराग युक्त पिता श्रेणिक राजा को बन्धन में डालकर अपना निज का महान् राज्याभिषेक से अभिषेक कराया है । तब कूणिक राजा ने चेलना देवी से कहा—माताजी ! श्रेणिक राजा तो मेरा घात करने के इच्छुक थे । हे अम्मा ! श्रेणिक राजा तो मुझे मार डालना चाहते थे, बांधना चाहते थे और निर्वासित कर देना चाहते थे । तो फिर हे माता ! यह कैसे मान लिया जाए कि श्रेणिक राजा मेरे प्रति अतीव स्नेहानुराग वाले थे ?

यह सुनकर चेलना देवी ने कूणिक कुमार से कहा—हे पुत्र ! जब तुम्हें मेरे गर्भ में आने पर तीन मास पूरे हुए तो मुझे इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ कि—वे माताएँ धन्य हैं, यावत् अंगपरिचारिकाओ से मैंने तुम्हें उकरड़े में फिकवा दिया, आदि-आदि, यावत् जब भी तुम वेदना से पीड़ित होते और जोर-जोर से रोते तब श्रेणिक राजा तुम्हारी अंगुली मुख में लेते और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मवाद चूसते । तब तुम चुप-शांत हो जाते, इत्यादि सब वृत्तान्त चेलना ने कूणिक को सुनाया। इसी कारण हे पुत्र ! मैंने कहा कि श्रेणिक राजा तुम्हारे प्रति अत्यन्त स्नेहानुराग से युक्त हैं । कूणिक राजा ने चेलना रानी से इस पूर्ववृत्तान्त को सुनकर और ध्यान में लेकर चेलना देवी से कहा—माता ! मैंने बुरा किया जो देवतास्वरूप, गुरुजन जैसे अत्यन्त स्नेहानुराग से अनुरक्त अपने पिता श्रेणिक राजा को बेड़ियों से बाँधा । अब मैं जाता हूँ और स्वयं ही श्रेणिक राजा की बेड़ियों को काटता हूँ, ऐसा कहकर कुल्हाड़ी हाथ में ले जहाँ कारागृह था, उस ओर चलने के लिए उद्यत हुआ । श्रेणिक राजा ने हाथ में कुल्हाड़ी लिए कूणिककुमार को अपनी ओर आते देखा । मन ही मन विचार किया—यह मेरा बुरा चाहने वाला, यावत् कुलक्षण, अभागा कृष्णाचतुर्दशी को उत्पन्न, लोक-लाज से रहित, निर्लज्ज कूणिक कुमार हाथ में कुल्हाड़ी लेकर इधर आ रहा है । न मालूम मुझे यह किस कुमौत से मारे ! इस विचार से उसने भीत, त्रस्त भयग्रस्त, उद्विग्न और भयाक्रान्त होकर तालपुट विष को मुख में डाल दिया।

तदनन्तर तालपुट विष को मुख में डालने और मुहूर्तान्तर के बाद कुछ क्षणों में उस विष के व्याप्त होने पर श्रेणिक राजा निष्प्राण, निश्चेष्ट, निर्जीव हो गया । इसके बाद वह कूणिक कुमार जहां कारावास था, वहाँ पहुँचा । उसने श्रेणिक राजा को निष्प्राण, निश्चेष्ट, निर्जीव देखा । तब वह दुस्सह, दुर्द्धर्ष पितृशोक से विलविलाता हुआ कुल्हाड़ी से काटे चम्पक वृक्ष की तरह धड़ाम-से पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा । कुछ क्षणों पश्चात् कूणिककुमार आश्वस्त-सा हुआ और रोते हुए, आक्रंदन, शोक एवं विलाप करते हुए कहने लगा—अहो ! मुझ अधन्य, पुण्यहीन, पापी, अभागे ने बुरा किया—जो देवतारूप, अत्यन्त स्नेहानुराग-युक्त अपने पिता श्रेणिक राजा को कारागार में डाला । मेरे कारण ही श्रेणिक राजा कालगत हुए हैं । तदनन्तर ऐश्वर्यशाली पुरुषों, तलवर राज्यमान्य पुरुषों, मांडलिक, जागीरदारों, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापतियों, मंत्री, गणक, द्वारपाल, अमात्य, चेट, पीठमर्दक, नागरिक, व्यवसायी, दूत, संधिपाल—से संपरिवृत होकर रुदन, आक्रन्दन, शोक और विलाप करते हुए महान् ऋद्धि, सत्कार एवं अभ्युदय के साथ श्रेणिक राजा का अग्निसंस्कार किया । तत्पश्चात् वह कूणिक कुमार इस महान् मनोगत मानसिक दुःख से अतीव दुःखी होकर किसी समय अन्तःपुर परिवार को लेकर धन-संपत्ति आदि गार्हस्थिक उपकरणों के साथ राजगृह से निकला और जहां चंपानगरी थी, वहां आया । वहां परम्परागत भोगों को भोगते हुए कुछ समय के बाद शोक-संताप से रहित हो गया ।

[१६] तत्पश्चात् उस कूणिक राजा ने किसी दिन काल आदि दस राजकुमारों को बुलाया—आमंत्रित किया और राज्य, राष्ट्र बल-सेना, वाहन-रथ आदि, कोश, धन-संपत्ति, धान्य-भंडार, अंतःपुर और जनपद-देश के ग्यारह भाग किये । भाग करके वे सभी स्वयं अपनी-अपनी राजश्री का भोग करते हुए प्रजा का पालन करते हुए समय व्यतीत करने लगे।

[१७] उस चम्पानगरी में श्रेणिक राजा का पुत्र, चेलना देवी का अंगज कूणिक राजा का कनिष्ठ सहोदर भ्राता वेहल्ल राजकुमार था । वह सुकुमार यावत् रूप-सौन्दर्यशाली था । अपने जीवित रहते श्रेणिक राजा ने पहले ही वेहल्लकुमार को सेचनक नामक गंधहस्ती और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अठारह लड़ों का हार दिया था । वह वेहल्लकुमार अन्तःपुर परिवार के साथ सेचनक गंधहस्ती पर आरूढ होकर चम्पानगरी के बीचोंबीच होकर निकलता और स्नान करने के लिए वारंवार गंगा महानदी में उतरता । उस समय वह सेचनक गंधहस्ती रानियों को सूंढ से पकड़ता, पकड़ कर किसी को पीठ पर बिठलाता, किसी को कंधे पर बैठाता, किसी को गंडस्थल पर रखता, किसी को मस्तक पर बैठाता, दंत-मूसलों पर बैठाता, किसी को सूंढ में लेकर झुलाता, किसी को दाँतों के बीच लेता, किसी को फुहारों से नहलाता और किसी-किसी को अनेक प्रकार की क्रीडाओं से क्रीडित करता था । तब चम्पानगरी के श्रृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, महापथों और पथों में बहुत से लोग आपस में एक-दूसरे से इस प्रकार कहते, बोलते, बतलाते और प्ररूपित करते कि–देवानुप्रियो ! अन्तःपुर परिवार को साथ लेकर वेहल्ल कुमार सेचनक गंधहस्ती के द्वारा अनेक प्रकार की क्रीडाएँ करता है । वास्तव में वेहल्लकुमार ही राजलक्ष्मी का सुन्दर फल अनुभव कर रहा है । कूणिक राजा राजश्री का उपभोग नहीं करता ।

तब पद्मावती देवी को प्रजाजनों के कथन को सुनकर यह संकल्प यावत् विचार समुत्पन्न हुआ–'निश्चय ही वेहल्लकुमार सेचनक गंधहस्ती के द्वारा यावत् अनेक प्रकार की क्रीडाएँ करता है । अतएव सचमुच में राजश्री का फल भोग रहा है, कूणिक राजा नहीं । हमारा यह राज्य यावत् जनपद किस काम का यदि हमारे पास सेचनक गंधहस्ती न हो ! पद्मावती ने इस प्रकार का विचार किया और कूणिक राजा के पास आकर दोनों हाथ जोड़, मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय शब्दों से उसे बधाया और निवेदन किया–'स्वामिन् ! वेहल्लकुमार सेचनक गंधहस्ती से यावत् भांति-भांति की क्रीडाएँ करता है, तो हमारा राज्य यावत् जनपद किस काम का यदि हमारे पास सेचनक गंधहस्ती नहीं है । कूणिक राजा ने पद्मावती के इस कथन का आदर नहीं किया, उसे सुना नहीं–उस पर ध्यान नहीं दिया और चुपचाप ही रहा । पद्मावती द्वारा बार-बार इसी बात को दुहराने पर कूणिक राजा ने एक दिन वेहल्लकुमार को बुलाया और सेचनक गंधहस्ती तथा अठारह लड़ का हार मांगा ।

तब वेहल्ल कुमार ने कूणिक राजा को उत्तर दिया–'स्वामिन् ! श्रेणिक राजा ने अपने जीवनकाल में ही मुझे यह सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार दिया था । यदि स्वामिन् ! आप राज्य यावत् जनपद का आधा भाग मुझे दें तो मैं सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार दूंगा ।' कूणिक राजा ने वेहल्लकुमार के इस उत्तर को स्वीकार नहीं किया। उस पर ध्यान नहीं दिया और बार-बार सेचनक गंधहस्ती एवं अठारह लड़ों के हार को देने का आग्रह किया । तब कूणिक राजा के वारंवार सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों के हार को मांगने पर वेहल्लकुमार के मन में विचार आया कि वह उनको झपटना चाहता है, लेना चाहता है, छीनना चाहता है । इसलिए सेचनक गंधहस्ती और हार को लेकर अन्तःपुर परिवार और गृहस्थी की साधन-सामग्री के साथ चंपानगरी से निकलकर–वैशाली नगरी में आर्यक चेटक का आश्रय लेकर रहूँ । उसने ऐसा विचार करके कूणिक राजा की असावधानी, मौका, अन्तरंग बातों-रहस्यों की जानकारी की प्रतीक्षा करते हुए समय यापन करने लगा । किसी दिन वेहल्लकुमार ने कूणिक राजा की अनुपस्थिति को जाना और सेचनक गंधहस्ती, अठारह लड़ों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का हार तथा अन्तःपुर परिवार सहित गृहस्थी के उपकरण–को लेकर चंपानगरी से भाग निकला। वैशाली नगरी आया और अपने नाना चेटक का आश्रय लेकर वैशाली नगरी में निवास करने लगा ।

तत्पश्चात् कूणिक राजा ने यह समाचार जानकर कि मुझे बिना बताए ही वेहल्लकुमार सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार तथा अन्तःपुर परिवार सहित गृहस्थी के उपकरणसाधनों को लेकर यावत् आर्यक चेटक राजा के आश्रय में निवास कर रहा है । तब उसने बुलाकर कहा–तुम वैशाली नगरी जाओ । वहाँ तुम आर्यक चेटकराज को दोनों हाथ जोड़कर यावत् जय-विजय शब्दों से बधाकर निवेदन करना–'स्वामिन् ! कूणिक राजा विनति करते हैं कि वेहल्लकुमार कूणिक राजा को बिना बताए ही सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों के हार को लेकर यहाँ आ गये हैं । इसलिए स्वामिन् ! आप कूणिक राजा को अनुगृहीत करते हुए सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार कूणिक राजा को वापिस लौटा दें । साथ ही वेहल्लकुमार को भेज दें । कूणिक राजा की इस आज्ञा को यावत् स्वीकार करके दूत चित्त सारथी के समान यावत् पास-पास अन्तरावास करते हुए वैशाली नगरी वहाँ आकर जहाँ चेटक राजा का आवासगृह और उसकी बाह्य उपस्थान शाला थी, वहाँ पहुँचा । घोड़ों को रोका और रथ से नीचे उतरा । तदनन्तर बहुमूल्य एवं महान् पुरुषों के योग्य उपहार लेकर जहाँ आभ्यन्तर सभाभवन था, उसमें जहाँ चेटक राजा था, वहाँ पहुँचकर दोनों हाथ जोड़ यावत् 'जय-विजय' शब्दों से उसे बधाया और निवेदन किया–'स्वामिन् ! कूणिक राजा प्रार्थना करते हैं–वेहल्ल कुमार हाथी और हार लेकर कूणिक राजा की आज्ञा बिना यहाँ चले आए हैं इत्यादि, यावत् हार, हाथी और वेहल्लकुमार को वापिस भेजिए ।'

दूत का निवेदन सुनने के पश्चात् चेटक राजा ने कहा–जैसे कूणिक राजा श्रेणिक राजा का पुत्र और चेलना देवी का अंगजात तथा मेरा दौहित्र है, वैसे ही वेहल्लकुमार भी श्रेणिक राजा का पुत्र, चेलना देवी का अंगज और मेरा दौहित्र है । श्रेणिक राजा ने अपने जीवन-काल में ही वेहल्लकुमार को सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार दिया था । इसलिए यदि कूणिक राजा वेहल्लकुमार को राज्य और जनपद का आधा भाग दे तो मैं सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार कूणिक राजा को लौटा दूंगा तथा वेहल्लकुमार को भेज दूंगा ।' इसके बाद चेटक राजा द्वारा विदा किया गया वह दूत जहाँ चार घण्टों वाला अश्व-रथ था, वहाँ आया । उस चार घंटों वाले अश्व-रथ पर आरूढ हुआ । वैशाली नगरी के बीच से निकला। साताकारी वसतिकाओं में विश्राम करता हुआ यावत् कूणिक राजा के समक्ष उपस्थित हुआ और कहा–स्वामिन् ! चेटक राजा ने जो फरमाया था–वह सब बताया, चेटक का उत्तर सुनकर कूणिक राजा ने दूसरी बार भी दूत कहा–तुम पुनः वैशाली नगरी जाओ । वहाँ तुम मेरे नाना चेटकराजा से यावत् इस प्रकार निवेदन करो–स्वामिन् ! कूणिक राजा यह प्रार्थना करता है–'जो कोई भी रत्न प्राप्त होते हैं, वे सब राजकुलानुगामी होते हैं । श्रेणिक राजा ने राज्य-शासन करते हुए, प्रजा का पालन करते हुए दो रत्न प्राप्त किये थे–इसलिए राजकुल-परम्परागत स्थिति-मर्यादा को भंग नहीं करते हुए सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों के हार को वापिस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कूणिक राजा को लौटा दें और वेहल्लकुमार को भी भेज दें ।'

तत्पश्चात् उस दूत ने कूणिक राजा की आज्ञा को सुना । वह वैशाली गया और कूणिक की विज्ञप्ति निवेदन की–'स्वामिन् ! कूणिक राजा ने प्रार्थना की है कि–जो कोई भी रत्न होते हैं वे राजकुलानुगामी होते हैं, अतः आप हस्ती, हार और कुमार वेहल्ल को भेज दें।' तब चेटक राजा ने उस दूत से कहा–जैसे कूणिक राजा श्रेणिक राजा का पुत्र, चेलना देवी का अंगज है, इत्यादि कुमार वेहल्ल को भेज दूंगा, यहाँ तक जैसे पूर्व में कहा, वैसा पुनः यहाँ भी कहना । तदनन्तर उस दूत ने यावत् चम्पा लौटकर कूणिक राजा का अभिनन्दन कर इस प्रकार निवेदन किया–'चेटक राजा ने फरमाया है कि देवानुप्रिय ! जैसे कूणिक राजा श्रेणिक का पुत्र और चेलना देवी का अंगजात है, उसी प्रकार वेहल्लकुमार भी है। यावत् आधा राज्य देने पर कुमारवेहल्ल को भेजूंगा । इसलिए स्वामिन् ! चेटकराजा ने सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार नहीं दिया है और न वेहल्लकुमार को भेजा है ।'

[१८] तब कूणिक राजा ने उस दूत द्वारा चेटक के इस उत्तर को सुनकर और उसे अधिगत करके क्रोधाभिभूत हो यावत् दांतों को मिसमिसाते हुए पुनः तीसरी बार दूत को बुलाया । उससे तुम वैशाली नगरी जाओ और बायें पैर से पादपीठ को ठोकर मारकर चेटक राजा को भाले की नोकर से यह पत्र देना । पत्र देकर क्रोधित यावत् मिसमिसाते हुए भृकुटि तान कर ललाट में त्रिवली डालकर चेटकराज से यह कहना–'ओ अकाल मौत के अभिलाषी, निर्भागी, यावत् निर्लज्ज चेटकराजा, कूणिक राजा यह आदेश देता है कि कूणिक राजा को सेचनक गंधहस्ती एवं अठारह लड़ों का हार प्रत्यर्पित करो और वेहल्लकुमार को भेजो अथवा युद्ध के लिए सज्जित हो– । कूणिक राजा बल, वाहन और सैन्य के साथ युद्धसज्जित होकर शीघ्र ही आ रहे हैं ।' तब दूत ने पूर्वोक्त प्रकार से हाथ जोड़कर कूणिक का आदेश स्वीकार किया। वह वैशाली नगरी पहुंचा । उसने दोनों हाथ जोड़कर यावत् बधाई देकर कहा– 'स्वामिन् ! यह तो मेरी विनयप्रतिपति–है । किन्तु कूणिक राजा की आज्ञा यह है कि बायें पैर से चेटक राजा की पादपीठ को ठोकर मारो, ठोकर मारकर क्रोधित होकर भाले की नोक से यह पत्र दो, इत्यादि यावत् वे सेना सहित शीघ्र ही यहाँ आ रहे हैं ।' तब चेटक राजा ने उस दूत से यह धमकी सुनकर और अवधारित कर क्रोधाभिभूत यावत् ललाट सिकोड़कर उत्तर दिया–'कूणिक राजा को सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार नहीं लौटाऊँगा और न वेहल्लकुमार को भेजूंगा किन्तु युद्ध के लिए तैयार हूँ ।'

तत्पश्चात् कूणिक राजा ने दूत से इस समाचार को सुनकर और विचार कर क्रोधित हो काल आदि दस कुमारों को बुलाया और कहा–बात यह है कि मुझे बिना बताये ही वेहल्ल कुमार सेचनक गंधहस्ती, अठारह लड़ों का हार और अन्तःपुर-परिवार सहित गृहस्थी के उपकरणों को लेकर चम्पा से भाग निकला । वैशाली में आर्य चेटक का आश्रय लेकर रह रहा है । मैंने सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार लाने के लिए दूत भेजा । चेटक राजा ने इंकार कर दिया और मेरे तीसरे दूत को असत्कारित, अपमानित कर पिछले द्वार से निष्कासित कर दिया । इसलिए हमें चेटक राजा का निग्रह करना चाहिए, उसे दण्डित करना चाहिए ।' उन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काल आदि दस कुमारों ने कूणिक राजा के इस विचार को विनयपूर्वक स्वीकार किया ।

कूणिक राजा ने उन काल आदि दस कुमारों से कहा–देवानुप्रियो ! आप लोग अपने-अपने राज्य में जाओ, और प्रत्येक स्नान यावत् प्रायश्चित्त आदि करके श्रेष्ठ हाथी पर आरूढ होकर प्रत्येक अलग-अलग ३००० हाथियों, ३००० रथों, ३००० घोड़ों और तीन कोटि मनुष्यों को साथ लेकर समस्त ऋद्धि-वैभव यावत् सब प्रकार के सैन्य, समुदाय एवं आदरपूर्वक सब प्रकार की वेशभूषा से सजकर, सर्व विभूति, सर्व सम्भ्रम, सब प्रकार के सुगंधित पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकार, सर्व दिव्य वाद्यसमूहों की ध्वनि प्रतिध्वनि, महान् ऋद्धि-विशिष्ट वैभव, महान् द्युति, महाबल, शंख, ढोल, पटह, भेरी, खरमुखी, हुडुक्क, मुरज, मृदंग, दुन्दुभि के घोष की ध्वनि के साथ अपने-अपने नगरों से प्रस्थान करो और प्रस्थान करके मेरे पास आकर एकत्रित होओ । तब वे कालादि दसों कुमार कूणिक राजा के इस कथन को सुनकर अपने-अपने राज्यों को लौटे । प्रत्येक ने स्नान किया, यावत् जहाँ कूणिक राजा था, वहाँ आए और दोनों हाथ जोड़कर यावत् बधाया । काल आदि दस कुमारों की उपस्थिति के अनन्तर कूणिक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों–को बुलाया और यह आज्ञा दी–'देवानुप्रियो ! शीघ्र ही आभिषेक्य हस्तीरत्न–को प्रतिकर्मित कर, घोड़े, हाथी, रथ और श्रेष्ठ योद्धाओं से सुगठित चतुरंगिणी सेना को सुसन्नद्ध–करो, यावत् से सेवक आज्ञानुरूप कार्य सम्पन्न होने की सूचना देते हैं । तत्पश्चात् कूणिक राजा जहाँ स्नानगृह था वहाँ आया, मोतियों के समूह से युक्त होने से मनोहर, चित्र-विचित्र मणि-रत्नों से खचित फर्श वाले, रमणीय, स्नान-मंडप में विविध मणि-रत्नों के चित्रामों से चित्रित स्नानपीठ पर सुखपूर्वक बैठकर उसने शुभ, पुष्पोदक से, सुगंधित एवं शुद्ध जल से कल्याणकारी उत्तम स्नान-विधि से स्नान किया ।

अनेक प्रकार के सैंकड़ों कौतुक किए तथा कल्याणप्रद प्रवर स्नान के अंत में रुएँदार काषायिक मुलायम वस्त्र से शरीर को पौंछा । नवीन–महा मूल्यवान् दूष्यरत्न को धारण किया; सरस, सुगंधित गोशीर्ष चंदन से अंगों का लेपन किया । पवित्र माला धारण की, केशर आदि का विलेपन किया, मणियों और स्वर्ण से निर्मित आभूषण धारण किए । हार, अर्धहार, त्रिसर और लम्बे-लटकते कटिसूत्र–से अपने को सुशोभित किया; गले में ग्रैवेयक आदि आभूषण धारण किए, अंगुलियों में अंगूठी पहनीं । मणिमय कंकणों, त्रुटितों एवं भुजबन्दों से भुजाएँ स्तम्भित हो गईं, कुंडलों से उसका मुख चमक गया, मुकुट से मस्तक देदीप्यमान हो गया । हारों से आच्छादित उसका वक्षस्थल सुन्दर प्रतीत हो रहा था । लंबे लटकते हुए वस्त्र को उत्तरीय के रूप में धारण किया। मुद्रिकाओं से अंगुलियां पीतवर्ण-सी दिखती थीं । सुयोग्य शिल्पियों द्वारा निर्मित, स्वर्ण एवं मणियों के सुयोग से सुरचित, विमल महार्ह, सुश्लिष्ट, उत्कृष्ट, प्रशस्त आकारयुक्त; वीरवलय धारण किया । कल्पवृक्ष के समान अलंकृत और विभूषित नरेन्द्र कोरण्ट पुष्प की मालाओं से युक्त छत्र को धारण कर, दोनों पार्श्वों में चार चामरों से विंजाता हुआ, लोगों द्वारा मंगलमय जय-जयकार किया जाता हुआ, अनेक गणनायकों, दंडनायकों, राजा, ईश्वर, यावत् संधिपाल, आदि से घिरा हुआ, स्नानगृह से बाहर निकला । यावत् अंजनगिरि के शिखर के समान विशाल उच्च गजपति पर वह नरपति आरूढ हुआ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्पश्चात् कूणिक राजा ३००० हाथियों यावत् वाद्यघोषपूर्वक चंपा नगरी के मध्य भाग में से निकला, जहाँ काल आदि दस कुमार ठहरे थे वहाँ पहुँचा और काल आदि दस कुमारों से मिला । इसके बाद ३३००० हाथियों, ३३००० घोड़ों, ३३००० रथों और तेतीस कोटि मनुष्यों से घिर कर सर्व ऋद्धि यावत् कोलाहल पूर्वक सुविधाजनक पड़ाव डालता हुआ, अति विकट अन्तरावास न कर, विश्राम करते हुए अंग जनपद के मध्य भाग में से होते हुए जहाँ विदेह जनपद था, वैशाली नगरी थी, उस ओर चलने के लिए उद्यत हुआ । राजा कूणिक का युद्ध के लिए प्रस्थान का समाचार जानकर चेटक राजा ने काशी-कोशल देशों के नौ लिच्छवी और नौ मल्लकी इन अठारह गण-राजाओं को परामर्श करने हेतु आमंत्रित किया और कहा–देवानुप्रियो ! बात यह है कि कूणिक राजा को बिना जताए–वेहल्लकुमार सेचनक हाथी और अठारह लड़ों का हार लेकर यहाँ आ गया है । किन्तु कूणिक ने सेचनक हाथी और अठारह लड़ों के हार को वापिस लेने के लिए तीन दूत भेजे । किन्तु अपनी जीवित अवस्था में स्वयं श्रेणिक राजा ने उसे ये दोनों वस्तुएं प्रदान की हैं, फिर भी हार-हाथी चाहते हो तो उसे आधा राज्य दो, यह उत्तर देकर उन दूतों को वापिस लौटा दिया । तब कूणिक मेरी इस बात को न सुनकर और न स्वीकार कर चतुरंगिणी सेना के साथ युद्धसज्जित होकर यहाँ आ रहा है । तो क्या सेचनक हाथी और अठारह लड़ों का हार वापिस कूणिक राजा को लौटा दें ? वेहल्लकुमार को उसके हवाले कर दें ? अथवा युद्ध करें ?

तब उन काशी-कोशल के नौ मल्लकी और नौ लिच्छवी–अठारह गणराजाओं ने चेटक राजा से कहा–स्वामिन् ! यह न तो उचित है–न अवसरोचित है और न राजा के अनुरूप ही है कि सेचनक और अठारह लड़ों का हार कूणिक राजा को लौटा दिया जाए और शरणागत वेहल्लकुमार को भेज दिया जाए । इसलिए जब कूणिक राजा चतुरंगिणी सेना को लेकर युद्धसज्जित होकर यहाँ आ रहा है तब हम कूणिक राजा के साथ युद्ध करें । इस पर चेटक राजा ने कहा–यदि आप देवानुप्रिय कूणिक राजा से युद्ध करने के लिए तैयार हैं तो देवानुप्रियो ! अपने अपने राज्यों में जाइए और स्नान आदि कर कालादि कुमारों के समान यावत् चतुरंगिणी सेना के साथ यहाँ चम्पा में आइए । यह सुनकर अठारहों राजा अपने-अपने राज्यों में गए और युद्ध के लिए सुसज्जित होकर उन्होंने चेटक राजा को जय-विजय शब्दों से बधाया । उसके बाद चेटक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर यह आज्ञा दी–आभिषेक्य हस्तिरत्न को सजाओ आदि कूणिक राजा की तरह यावत् चेटक राजा हाथी पर आरूढ हुआ ।

अठारहों गण-राजाओं के आ जाने के पश्चात् चेटक राजा कूणिक राजा की तरह तीन हजार हाथियों आदि के साथ वैशाली नगरी के बीचोंबीच होकर निकला । जहाँ वे नौ मल्ली, नौ लिच्छवी काशी-कोशल के अठारह गणराजा थे, वहाँ आया । तदनन्तर चेटक राजा ५७००० हाथियों, ५७००० घोड़ों, ५७००० रथों और सत्तावन कोटि मनुष्यों को साथ लेकर सर्व ऋद्धि यावत् वाद्यघोष पूर्वक सुखद वास, निकट-निकट विश्राम करते हुए विदेह जनपद के बीचोंबीच से चलते जहाँ सीमान्त-प्रदेश था, वहाँ आकर स्कन्धावार का निवेश किया– तथा कूणिक राजा की प्रतीक्षा करते हुए युद्ध को तत्पर हो ठहर गया । इसके बाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कूणिक राजा समस्त ऋद्धि–यावत् कोलाहल के साथ जहाँ सीमांतप्रदेश था, वहाँ आया । चेटक राजा से एक योजन की दूरी पर उसने भी स्कन्धावारनिवेष किया ।

तदनन्तर दोनों राजाओं ने रणभूमि को सज्जित किया, सज्जित करके रणभूमि में अपनी-अपनी जय-विजय के लिए अर्चना की । इसके बाद कूणिक राजा ने ३३००० हाथियों यावत् तीस कोटि पैदल सैनिकों से गरुड-व्यूह की रचना की । गरुडव्यूह द्वारा रथ-मूसल संग्राम प्रारम्भ किया । इधर चेटक राजा ने ५७००० हाथियों यावत् सत्तावन कोटि पदातियों द्वारा शकटव्यूह की रचना की और रचना करके शकटव्यूह द्वारा रथ-मूसल संग्राम में प्रवृत्त हुआ । तब दोनों राजाओं की सेनाएं युद्ध के लिए तत्पर हो यावत् आयुधों और प्रहरणों को लेकर हाथों में ढालों को बांधकर, तलवारें म्यान से बाहर निकालकर, कंधों पर लटके तूणीरों से, प्रत्यंचायुक्त धनुषों से छोड़े हुए बाणों से, फटकारते हुए बायें हाथों से, जोर-जोर से बजती हुई जंघाओं में बंधी हुई घंटिकाओं से, बजती हुई तुरहियों से एवं प्रचंड हुंकारों के महान् कोलाहल से समुद्रगर्जना जैसी करते हुए सर्व ऋद्धि यावत् वाद्यघोषों से, परस्पर अश्वारोही अश्वारोहियों से, गजारूढ गजारूढों से, रथी रथारोहियों से और पदाति पदातियों से भिड़ गए। दोनों राजाओं की सेनाएं अपने-अपने स्वामी के शासनानुराग से आपूरित थीं । अतएव महान् जनसंहार, जनवध, जनमर्दन, जनभय और नाचते हुए रुंड-मुंडों से भयंकर रुधिर का कीचड़ करती हुई एक दूसरे से युद्ध में झूझने लगीं । तदनन्तर कालकुमार गरुडव्यूह के ग्यारहवें भाग में कूणिक राजा के साथ रथमूसल संग्राम करता हुआ हत और मथित हो गया, इत्यादि जैसा भगवान् ने काली देवी से कहा था, तदनुसार यावत् मृत्यु को प्राप्त हो गया । अतएव गौतम ! इस प्रकार के आरम्भों से, अशुभ कार्यों के कारण वह काल कुमार मरण करके चौथी पंकप्रभा पृथ्वी के हेमाभ नरक में नैरयिक रूप से उत्पन्न हुआ है ।

[१९] गौतम स्वामी ने पुनः प्रश्न किया–भदन्त ! वह काल कुमार चौथी पृथ्वी से निकलकर कहाँ जाएगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ? गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में जो आढ्य कुल हैं, उनमें जन्म लेकर दृढ़प्रतिज्ञ के समान सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, यावत् परिनिर्वाण को प्राप्त होगा और समस्त दुःखों का अंत करेगा । 'इस प्रकार आयुष्मन् जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने निरयावलिका के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है ।

अध्ययन-१-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-२-सुकाल

[२०] भदन्त ! यदि श्रमण यावत् मुक्ति संप्राप्त भगवान् महावीर ने निरयावलिका के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो द्वितीय अध्ययन का क्या भाव प्रतिपादन किया है ? –आयुष्मन् जम्बू ! उस काल और उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी । वहाँ पूर्णभद्र चैत्य था । कूणिक वहाँ का राजा था । पद्मावती उसकी पटरानी थी । उस चम्पानगरी में श्रेणिक राजा की भार्या, कूणिक राजा की सौतेली माता सुकाली नाम की रानी थी जो सुकुमाल शरीर आदि से सम्पन्न थी । उस सुकाली देवी का पुत्र सुकाल राजकुमार था । वह सुकोमल अंग-प्रत्यंग वाला आदि विशेषणों से युक्त था । शेष सर्व कथन कालकुमार अनुसार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जानना । यावत् वह महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर कर्मों का अन्त करेगा । सम्पूर्ण कथन काल कुमार के समान ही कहना चाहिये ।

अध्ययन-३-से-१०

[२१] प्रथम अध्ययन के समान शेष आठ अध्ययन भी जानना । किन्तु इतना विशेष है कि उनकी माताओं के नाम के समान उन कुमारों के नाम हैं ।

१९	निरयावलिका-उपांगसूत्र-८-हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

२० कल्पवतंसिका

उपांगसूत्र-९-हिन्दी अनुवाद

अध्ययन-१-पद्म

[१] भदन्त ! यदि श्रमण यावत् निर्वाण-संप्राप्त भगवान् महावीर ने निरयावलिका नामक उपांग के प्रथम वर्ग का यह अर्थ कहा तो हे भदन्त ! दूसरे वर्ग कल्पावतंसिका का क्या अर्थ कहा है ? आयुष्मन् जम्बू ! कल्पावतंसिका के दस अध्ययन कहे हैं । –पद्म, महापद्म, भद्र, सुभद्र, पद्मभद्र, पद्मसेन, पद्मगुल्म, नलिनगुल्म, आनन्द और नन्दन । भगवन् ! यदि कल्पावतंसिका के दस अध्ययन कहे हैं तो प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ बताया है ? उस काल और उस समय में चम्पा नगरी थी । पूर्णभद्र चैत्य था । कूणिक राजा था । पद्मावती पटरानी थी । उस चम्पा नगरी में श्रेणिक राजा की भार्या, कूणिक राजा की विमाता काली रानी थी, जो अतीव सुकुमार एवं स्त्री-उचित यावत् गुणों से सम्पन्न थी । उस काली देवी का पुत्र कालकुमार था । उस कालकुमार की पद्मावती पत्नी थी, जो सुकोमल थी यावत् मानवीय भोगों को भोगती हुई समय व्यतीत कर रही थी ।

किसी एक रात्रि में भीतरी भाग में चित्र-विचित्र चित्रामों से चित्रित वासगृह में शैया पर शयन करती हुई स्वप्न में सिंह को देखकर वह पद्मावती देवी जागृत हुई । पुत्र का जन्म हुआ, महाबल की तरह उसका जन्मोत्सव मनाया गया, यावत् नामकरण किया–हमारे इस बालक का नाम पद्म हो । शेष समस्त वर्णन महाबल के समान समझना, यावत् आठ कन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ । यावत् पद्मकुमार ऊपरी श्रेष्ठ प्रासाद में रहकर भोग भोगते, विचरने लगा । भगवान् महावीर स्वामी समवसृत हुए । परिषद् धर्म-देशना श्रवण करने निकली। कूणिक भी वंदनार्थ निकला । महाबल के समान पद्म भी दर्शन-वंदना करने के लिए निकला । माता-पिता से अनुमति प्राप्त करके प्रवजित हुआ, यावत् गुप्त ब्रह्मचारी अनगार हो गया । पद्म अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर के तथारूप स्थविरों से सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया यावत् चतुर्थभक्त, षष्टभक्त, अष्टमभक्त, इत्यादि विविध प्रकार की तप-साधना से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगा । इसके बाद वह पद्म अनगार मेघकुमार के समान उस प्रभावक विपुल, सश्रीक, गुरु द्वारा प्रदत्त, कल्याणकारी, शिव, धन्य, प्रशंसनीय, मांगलिक, उदग्र, उदार, उत्तम, महाप्रभावशाली तप-आराधना से शुष्क, रूक्ष, अस्थिमात्रावशेष शरीर वाला एवं कृश हो गया ।

किसी समय मध्य रात्रि में धर्म-जागरण करते हुए पद्म अनगार को चिन्तन उत्पन्न हुआ। मेघकुमार के समान श्रमण भगवान् से पूछकर विपुल पर्वत जा कर यावत् पादोपगमन संस्थारा स्वीकार करके तथारूप स्थविरों से सामायिक आदि से लेकर ग्यारह अंगों का श्रवण कर परिपूर्ण पांच वर्ष की श्रमण पर्याय का पालन करके मासिक संलेखना को अंगीकार कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और अनशन द्वारा साठ भक्तों का त्याग करके अनुक्रम से कालगत हुआ । भगवान् गौतम ने पद्ममुनि के भविष्य के विषय में प्रश्न किया । स्वामी ने उत्तर दिया कि यावत् अनशन द्वारा साठ भोजनों का छेदन कर, आलोचना-प्रतिक्रमण कर सुदूर चंद्र आदि ज्योतिष्क विमानों के ऊपर सौधर्मकल्प में देव रूप से उत्पन्न हुआ है । वहाँ दो सागरोपम की उसकी आयु है। भदन्त ! वह पद्मदेव आयुक्षय के अनन्तर उस देवलोक से च्यवन करके कहाँ उत्पन्न होगा ? गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा । दृढप्रतिज्ञ के समान यावत् जन्म-मरण का अंत करेगा। इस प्रकार हे आयुष्यमन् जम्बू ! कल्पावतंसिका के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है ।

अध्ययन-१-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-२-महापद्म

[२] भदन्त ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणप्राप्त भगवान् ने कल्पावतंसिका के प्रथम अध्ययन का उक्त भाव प्रतिपादित किया है तो उसके द्वितीय अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ? आयुष्यमन् जम्बू ! उस काल और उस समय में चंपा नगरी थी । पूर्णभद्र चैत्य था । उस चंपानगरी में श्रेणिक राजा की भार्या कूणिक राजा की विमाता सुकाली रानी थी । उस सुकाली का पुत्र सुकाल राजकुमार था । उस राजकुमार सुकाल की सुकुमाल आदि विशेषता युक्त महापद्मा नाम की पत्नी थी । उस महापद्मा ने किसी एक रात्रि में सुखद शैया पर सोते हुए एक स्वप्न देखा, इत्यादि पूर्ववत् । बालक का जन्म हुआ और उसका महापद्म नामकरण किया गया यावत् वह प्रव्रज्या अंगीकार करके महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा । विशेष यह कि ईशान कल्प में उत्पन्न हुआ । वहाँ उसे उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक दो सागरोपम हुई ।

अध्ययन-३-से-१०

[३] इसी प्रकार शेष आठों ही अध्ययनों का वर्णन जान लेना । पुत्रों के समान ही माता के नाम हैं, पद्म और महापद्म अनगार की पाँच-पाँच वर्ष की, भद्र, सुभद्र और पद्मभद्र की चार-चार वर्ष की, पद्मसेन, पद्मगुल्म और नलिनीगुल्म की तीन-तीन वर्ष की तथा आनन्द और नन्दन की दीक्षापर्याय दो-दो वर्ष की थी । ये सभी श्रेणिक राजा के पौत्र थे । अनुक्रम से इनका जन्म हुआ । देहत्याग के पश्चात् प्रथम का सौधर्मकल्प में, द्वितीय का ईशानकल्प में, तृतीय का सनत्कुमारकल्प में, चतुर्थ का माहेन्द्रकल्प में, पंचम का ब्रह्मलोक में, षष्ठ का लान्तककल्प में, सप्तम का महाशुक्र में, अष्टम का सहस्त्रारकल्प में, नवम का प्राणतकल्प में और दशम का अच्युतकल्प में देव रूप में जन्म हुआ । सभी की स्थिति उत्कृष्ट कहना। ये सभी स्वर्ग से च्यवन करके महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होंगे ।

२० कल्पवतंसिका-उपांग-९-का हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

२१ पुष्पिका

उपांगसूत्र-१०-हिन्दी अनुवाद

अध्ययन-१-चन्द्र

[१] भदन्त ! यदि श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् महावीर ने द्वितीय उपांग कल्पवतंसिका का यह भाव प्रतिपादन किया है तो भगवन् ! उपांगों के तृतीय वर्ग रूप पुष्पिका का क्या अर्थ कहा है ? आयुष्मन् जम्बू ! तृतीय उपांग वर्ग रूप पुष्पिका के दस अध्ययन कहे हैं ।

[२] चन्द्र, सूर्य, शुक्र, बहुपुत्रिका, पूर्णभद्र, मानभद्र, दत्त, शिव, बल और अनादृत।

[३] हे भदन्त ! श्रमण भगवान् ने प्रथम अध्ययन का क्या आशय कहा है ? आयुष्यमन् जम्बू ! उस काल और समय में राजगृह नगर था । गुणशिलक चैत्य था । श्रेणिक राजा राज्य करता था । उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे । दर्शनार्थ परिषद निकली । उस काल और उस समय में ज्योतिष्कराज ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान की सुधर्मा सभा में चन्द्र नामक सिंहासन पर बैठकर ४००० सामानिक देवों यावत् सपरिवार चार अग्रमहिषियों, तीन परिपदाओं, सात प्रकार की सेनाओं, सात उनके सेनापतियों, १६००० आत्मरक्षक देवों तथा अन्य दूसरे भी बहुत से उस विमानवासी देव-देवियों सहित निरंतर महान् गंभीर ध्वनिपूर्वक निपुण पुरुषों द्वारा वादित–वीणा, हस्ततताल, कांस्यताल, त्रुटित, घन मृदंग आदि वाद्यों एवं नाट्यों के साथ दिव्य भोगोपभोगों को भोगता हुआ विचर रहा था । उसने अपने विपुल अवधि ज्ञान से अवलोकन करते हुए इस केवलकल्प जम्बूद्वीप को और श्रमण भगवान् महावीर को देखा । तब भगवान् के दर्शनार्थ जाने का विचार करके सूर्याभदेव के समान अपने आभियोगिक देवों को बुलाया यावत् उन्हें देव-देवेन्द्रों के अभिगमन करने योग्य कार्य करने की आज्ञा दी फिर अपने पदाति सेनानायक को आज्ञा दी–

सुस्वरा घंटा बजाकर सब देव-देवियों को भगवान् के दर्शनार्थ चलने के लिए सूचित करो। यावत् सूर्याभदेव के समान नाट्यविधि आदि प्रदर्शित करने की विकुर्वणा की । इतना अंतर है कि उसका यान-विमान १००० योजन विस्तीर्ण और ६२।। योजन ऊँचा था । माहेन्द्रध्वज की ऊँचाई २५ योजन की थी । भगवन् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार करके निवेदन किया–भंते ! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चंद्र द्वारा विकुर्वित वह सब दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य दैविक प्रभाव कहाँ चले गये ? कहाँ समा गये ? गौतम ! चन्द्र द्वारा विकुर्वित वह सब दिव्य ऋद्धि आदि उसके शरीर में चली गई, शरीर में प्रविष्ट हो गई– पूर्वभव सम्बन्धी प्रश्न–

श्रमण भगवान् महावीर ने कहा–गौतम ! उस काल और उस समय में श्रावस्ती नगरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी । कोष्ठक चैत्य था । अंगति गाथापति–था, जो धनाढ्य यावत् लोगों द्वारा अपरिभूत था–वह अंगजित गाथापति श्रावस्ती नगरी के बहुत से नगरनिवासी व्यापारी, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत, संधिपालक, आदि के अनेक कार्यों में, कारणों में, मंत्रणाओं में, पारिवारिक समस्याओं में, गोपनीय बातों में, निर्णयों में, सामाजिक व्यवहारों पूछने योग्य एवं विचार–करने योग्य था एवं अपने कुटुम्ब परिवार का मेढि–प्रमाण, आधार, आलंबन, चक्षु, मेढिभूत यावत् तथा सब कार्यों में अग्रेसर था । उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के समान धर्म की आदि करनेवाले इत्यादि, नौ हाथ की अवगाहना वाले पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्वप्रभु १६००० श्रमणों एवं ३८००० आर्याओं के समुदाय के साथ गमन करते हुए यावत् कोष्ठक चैत्य में पधारे । परिषद् दर्शनार्थ निकली ।

तब वह अंगजित गाथापति इस संवाद को सुनकर हर्षित एवं संतुष्ट होता हुआ कार्तिक श्रेष्ठी के समान निकला यावत् पर्युपासना की । धर्म को श्रवण कर और अवधारित कर उसने प्रभु से निवेदन किया–देवानुप्रिय ! ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करूँगा । तत्पश्चात् मैं यावत् प्रव्रजित होऊँगा । गंगदत्त के समान वह प्रव्रजित हुआ यावत् गुप्त ब्रह्मचारी अनगार हो गया । अंगजित अनगार ने अर्हत् पार्श्व के तथारूप स्थविरों से सामायिक आदि ले लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । चतुर्थभक्त यावत् आत्मा को भावित करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन करके अर्धमासिक संलेखना पूर्वक अनशन द्वारा तीस भक्तों का छेदन कर–मरण करके संयमविराधना के कारण चन्द्रावतंसक विमान की उपपात–शैया में ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ । तब सद्यःउत्पन्न ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चन्द्र पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्तभाव को प्राप्त हुआ–आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति और भाषामनःपर्याप्ति । भदन्त ! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चन्द्र की कितने काल की आयु–है ? गौतम ! एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है । आयुष्मन् जम्बू ! इस प्रकार से यावत् मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने पुष्पिका के प्रथम अध्ययन का यह भाव निरूपण किया है, ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-१-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-२-सूर्य

[४] भदन्त ! यदि श्रमण भगवान् महावीरने पुष्पिका के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो द्वितीय अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ? आयुष्मन् जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नगर था । गुणशिलक चैत्य था । श्रेणिक राजा था । श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ । जैसे भगवान् की उपासना के लिये चन्द्र आया था उसी प्रकार सूर्य इन्द्र का भी आगमन हुआ यावत् नृत्य-विधियाँ प्रदर्शित कर वापिस लौट गया । गौतम स्वामी ने सूर्य के पूर्वभव के विषय में पूछा । श्रावस्ती नाम की नगरी थी । वहाँ धन-वैभव आदि से संपन्न सुप्रतिष्ठ नामक गाथापति रहता था । वह भी अंगजित के समान यावत् धनाढ्य एवं प्रभावशाली था । वहाँ पार्श्व प्रभु पधारे । अंगजित के समान वह भी प्रव्रजित हुआ और उसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरह संयम की विराधना करके मरण को प्राप्त होकर सूर्यविमान में देव रूप से उत्पन्न हुआ । आयुक्षय होने के अनन्तर वहाँ से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्धि प्राप्त करेगा यावत् सर्व दुखों का अन्त करेगा ।

अध्ययन-३

[५] भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने पुष्पिका के द्वितीय अध्ययन का यह आशय प्ररूपित किया है तो तृतीय अध्ययन का क्या भाव बताया है—आयुष्मन् जम्बू ! राजगृह नगर था । गुणशिलक चैत्य था । राजा श्रेणिक था । स्वामी का पदार्पण हुआ । परिषद् निकली । उस काल और उस समय में शुक्र महाग्रह शुक्रावतंसक विमान में शुक्र सिंहासन पर बैठा था । ४००० सामानिक देवों आदि के साथ नृत्य गीत आदि दिव्य भोगों को भोगता हुआ विचरण कर रहा था आदि । वह चन्द्र के समान भगवान् के समवसरण में आया । नृत्यविधि दिखाकर वापिस लौट गया । गौतमस्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से उसकी दैविक ऋद्धि आदि के अन्तर्लीन होने के सम्बन्ध में पूछा । भगवान् ने कूटाकार शाला के दृष्टान्त द्वारा गौतम का समाधान किया । गौतम स्वामी ने पुनः उसके पूर्वभव के सम्बन्ध में पूछा ।

गौतम ! उस काल और समय में वाराणसी नगरी थी । सोमिल नामक माहण था । वह धन-धान्य आदि से संपन्न-समृद्ध यावत् अपरिभूत था । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चार वेदों, पांचवें इतिहास, छठे निघण्टु नामक कोश का तथा सांगोपांग रहस्य सहित वेदों का सारक, वारक, धारक, पारक, वेदों के षट्-अंगों में, एवं षष्ठितंत्र में विशारद था । गणितशास्त्र, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्दशास्त्र, निरुक्तशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र तथा दूसरे बहुत से ब्राह्मण और परिव्राजकों सम्बन्धी नीति और दर्शनशास्त्र आदि में अत्यन्त निष्णात था। पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व प्रभु पधारे । परिषद् निकली और पर्युपासना करने लगी । सोमिल ब्राह्मण को यह संवाद सुनकर इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व प्रभु पूर्वानुपूर्वी के क्रम से गमन करते हुए यावत् आम्रशालवन में विराज रहे हैं । अतएव मैं जाऊं और अर्हत् पार्श्वप्रभु के सामने उपस्थित होऊं एवं उनसे यह तथा इस प्रकार के अर्थ हेतु, प्रश्न, कारण और व्याख्या पूछूँ । तत्पश्चात् सोमिल घर से निकला और भगवान् की सेवा में पहुंचकर पूछा—भगवन् ! आपकी यात्रा चल रही है ? यापनीय है ? अव्याबाध है ? और आपका प्रासुक विहार हो रहा है ? आपके लिए सरिसव मास कुलत्थ भक्ष्य हैं या अभक्ष्य हैं ? आप एक हैं ? यावत् सोमिल संबुद्ध हुआ और श्रावक धर्म को अंगीकार करके वापिस लौट गया । तदनन्तर वह सोमिल ब्राह्मण किसी समय असाधु दर्शन—के कारण एवं निर्ग्रन्थ श्रमणों की पर्युपासना नहीं करने से—मित्यात्व पर्यायों के प्रवर्धमान होने से तथा सम्यक्त्व पर्यायों के परिहीयमान होने से मिथ्यात्व भाव को प्राप्त हो गया ।

इसके बाद किसी एक समय मध्यरात्रि में अपनी कौटुम्बिक स्थिति पर विचार करते हुए उस सोमिल ब्राह्मण को यह और इस प्रकार का आन्तरिक यावत् मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ—मैं वाराणसी नगरी का रहनेवाला और अत्यन्त शुद्ध ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ हूँ । मैंने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्रतों को अंगीकार किया, वेदाध्ययन किया, पत्नी को लाया–कुलपरंपरा की वृद्धि के लिए पुत्रादि संतान को जन्म दिया, समृद्धियों का संग्रह किया–अर्थोपार्जन किया, पशुबंध किया, यज्ञ किए, दक्षिणा दी, अतिथिपूजा–किया, अग्नि में हवन किया–आहुति दी, यूप स्थापित किये, इत्यादि गृहस्थ सम्बन्धी कार्य किये । लेकिन अब मुझे यह उचित है कि कल रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित हो जाने पर, जब कमल विकसित हो जाएँ, प्रभात पाण्डुर-श्वेत वर्ण का हो जाए, लाल अशोक, पलाशपुष्प, तोते की चोंच, चिरमी के अर्धभाग, बंधुजीवकपुष्प, कबूतर के पैर, कोयल के नेत्र, जसद के पुष्प, जाज्वल्यमान अग्नि, स्वर्णकलश एवं हिंगुलकसमूह की लालिमा से भी अधिक रक्तिम श्री से सुशोभित सूर्य उदित हो जाए और उसकी किरणों के फैलने से अंधकार विनष्ट हो जाए, सूर्य रूपी कुंकुम से विश्व व्याप्त हो जाए, नेत्रों के विषय का प्रचार होने से विकसित होनेवाला लोक स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे, तब वाराणसी नगरी के बाहर बहुत से आम्र-उद्यान लगवाऊं, इसी प्रकार से मातुलिंग, बिल्व, कविट्ठ, चिंचा और फूलों की वाटिकाएँ लगवाऊँ ।' तत्पश्चात् वे बहुत से आम के बगीचे यावत् फूलों के बगीचे अनुक्रम से संरक्षण, संगोपन और संवर्धन किये जाने से दर्शनीय बगीचे बन गये । श्यामल, श्यामल आभावाले यावत् रमणीय महामेघों के समूह के सदृश होकर पत्र, पुष्प, फल एवं अपनी हरी-भरी श्री से अतीव-अतीव शोभायमान हो गये ।

इसके बाद पुनः उस सोमिल ब्राह्मण को किसी अन्य समय मध्यरात्रि में कौटुम्बिक स्थिति का विचार करते हुए इस प्रकार का यह आन्तरिक यावत् मनःसंकल्प उत्पन्न हुआ–वाराणसी नगरी वासी मैं सोमिल ब्राह्मण अत्यन्त शुद्ध–कुल में उत्पन्न हुआ । मैंने व्रतों का पालन किया, वेदों का अध्ययन आदि किया यावत् यूप स्थापित किये और इसके बाद वाराणसी नगरी के बाहर बहुत से आम के बगीचे यावत् फूलों के बगीचे लगवाए । लेकिन अब मुझे यह उचित है कि कल यावत् तेज सहित सूर्य के प्रकाशित होने पर बहुत से लोहे के कड़ाह, कुडछी एवं तापसों के योग्य तांबे के पात्रों–घड़वाकर तथा विपुल मात्रा में अशन-पान-खादिम-स्वादिम भोजन बनवाकर मित्रों, जातिबांधवों, स्वजनों, संबन्धियों और परिचित जनों को आमंत्रित कर उन का विपुल अशन-पान-खादिम-स्वादिम, वस्त्र, गंध, माला एवं अलंकारों से सत्कार-सन्मान करके उन्हीं के सामने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपकर तथा मित्रों-जाति-बंधुओं आदि परिचितों और ज्येष्ठपुत्र से पूछकर उन बहुत से लोहे के कड़ाहे, कुड़छी आदि तापसों के पात्र लेकर जो गंगातटवासी वानप्रस्थ तापस हैं, जैसे कि–होत्रिक, पोत्रिक, कौत्रिक, यात्रिक, श्राद्धकिन, स्थालकिन, हुम्बउट्ठ, दन्तोदूखलिक, उन्मज्जक, समज्जक, निमज्जक, संप्रक्षालक, दक्षिणकूल, वासी, उत्तरकूल-वासी, शंखधमा, कूलधमा, मृगलुब्धक, हस्तीतापस, उद्दण्डक, दिशाप्रोक्षिक, वल्कवासी, बिलवासी, जलवासी, वृक्षमूलिक, जलभक्षी, वायुभक्षी, शैवालभक्षी, मूलाहारी, कंदाहारी, त्वचाहारी, पत्राहारी, पुष्पाहारी, बीजाहारी, विनष्ट कन्द, मूल, त्वचा, पत्र, पुष्प, फल को खानेवाले, जलाभिषेक से शरीर कठिन–बनानेवाले हैं तथा आतापना और पंचाग्नि ताप से अपनी देह को अंगारपक्व और कंदुपक्व जैसी बनाते हुए समय यापन करते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन तापसों में से मैं दिशाप्रोक्षिक तापसों में दिशाप्रोक्षिक रूप से प्रव्रजित होऊँ और इस प्रकार का अभिग्रह अंगीकार करूँगा—'यावज्जीवन के लिए निरंतर षष्ठ-षष्ठभक्त पूर्वक दिशा चक्रवाल तपस्या करता हुआ सूर्य के अभिमुख भुजाएँ उठाकर आतापनाभूमि में आतापना लूँगा ।' संकल्प करके यावत् कल जाज्वल्यमान सूर्य के प्रकाशित होने पर बहुत से लोह-कड़ाहां आदि को लेकर यावत् दिशाप्रोक्षिक तापस के रूप में प्रव्रजित हो गया । प्रव्रजित होने के साथ अभिग्रह अंगीकार करके प्रथम षष्ठक्षपण तप अंगीकार करके विचरने लगा । तत्पश्चात् ऋषि सोमिल ब्राह्मण प्रथम षष्ठक्षपण के पारणे के दिन आतापना भूमि से नीचे उतरे । फिर उसने वल्कल वस्त्र पहने और जहाँ अपनी कुटियां थी, वहाँ आये । वहाँ से—किढिण बांस की छबड़ी और कावड़ को लिया, पूर्वदिशा का पूजन किया और कहा—हे पूर्व दिशा के लोकपाल सोम महाराज ! प्रस्थान में प्रस्थित हुए मुझ सोमिल ब्रह्मर्षि की रक्षा करें और यहाँ जो भी कन्द, मूल, छाल, पत्ते, पुष्प, फूल, बीज और हरी वनस्पतियाँ हैं, उन्हें लेने की आज्ञा दें ।' यों कहकर सोमिल ब्रह्मर्षि पूर्व दिशा की ओर गया और वहां जो भी कन्द, मूल, यावत् हरी वनस्पति आदि थी उन्हें ग्रहण किया और कावड़ में रखी, बांस की छबड़ी में भर लिया । फिर दर्भ, कुश तथा वृक्ष की शाखाओं को मोड़कर तोड़े हुए पत्ते और समिधाकाष्ठ लिए । अपनी कुटियां पे आये । वेदिका का प्रमार्जन किया, उसे लीपकर शुद्ध किया । तदनन्तर डाभ और कलश हाथ में लेकर गंगा महानदी आए और उसके जल से देह शुद्ध की । अपनी देह पर पानी सींचा और आचमन आदि करके स्वच्छ और परम शुचिभूत होकर देव और पितरों संबंधी कार्य सम्पन्न करके डाभ सहित कलश को हाथ में लिए गंगा महानदी के बाहर निकले । कुटिया में आकर डाभ, कुश और बालू से वेदी का निर्माण किया, सर और अरणि तैयार की। अग्नि सुलगाई । तब उसमें समिधा डालकर और अधिक प्रज्वलित की और फिर अग्नि की दाहिनी ओर ये सात वस्तुएं रखीं—

[६] सकथ वल्कल, स्थान, शैयाभाण्ड, कमण्डलु, लकड़ी का डंडा और अपना शरीर। फिर मधु, घी और चावलों का अग्नि में हवन किया और चरु तैयार किया तथा नित्य यज्ञ कर्म किया । अतिथिपूजा की और उसके बाद स्वयं आहार ग्रहण किया ।

[७] तत्पश्चात् उन सोमिल ब्रह्मर्षि ने दूसरा षष्ठक्षपण अंगीकार किया । पारणे के दिन भी आतापनाभूमि से नीचे उतरे, वल्कल वस्त्र पहने यावत् आहार किया, इतना विशेष है कि इस बार वे दक्षिण दिशा में गए और कहा—'हे दक्षिण दिशा के यम महाराज ! प्रस्थान के लिए प्रवृत्त सौमिल ब्रह्मर्षि की रक्षा करें और यहाँ जो कन्द, मूल आदि हैं, उन्हें लेने की आज्ञा दें, ऐसा कहकर दक्षिण में गमन किया । तदनन्तर उन सोमिल ब्रह्मर्षि ने तृतीय बेला किया। पारणे के दिन भी पूर्वोक्त सब विधि की । किन्तु पश्चिम दिशा की पूजा की । कहा—'हे पश्चिम दिशा के लोकपाल वरुण महाराज ! परलोक-साधना में प्रवृत्त मुझ सोमिल ब्रह्मर्षि की रक्षा करें' इत्यादि इसके बाद चतुर्थ बेला तप किया । पारणा के दिन पूर्ववत् सारी विधि की। विशेष यह है कि इस बार उत्तर दिशा की पूजा की और इस प्रकार प्रार्थना की—'हे उत्तर दिशा के लोकपाल वैश्रमण महाराज ! परलोकसाधना में प्रवृत्त मुझ सोमिल ब्रह्मर्षि की रक्षा करें'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यादि यावत् उत्तर दिशा का अवलोकन किया आदि । इस चारों दिशाओं का वर्णन, आहार किया तक का वृत्तान्त पूर्ववत् जानना ।

इसके बाद किसी समय मध्यरात्रि में अनित्य जागरण करते हुए उन सोमिल ब्रह्मर्षि के मन में इस प्रकार का यह आन्तरिक विचार उत्पन्न हुआ–'मैं वाराणसी नगरी का रहने वाला, अत्यन्त उच्चकुल में उत्पन्न सोमिल ब्रह्मर्षि हूँ । मैंने गृहस्थाश्रम में रहते हुए व्रत पालन किए हैं, यावत् यूप–गाड़वाए । इसके बाद आम के यावत् फूलों के बगीचे लगवाए । तत्पश्चात् प्रव्रजित हुआ । प्रव्रजित होने पर षष्ठ-षष्ठभक्त तपःकर्म अंगीकार करके दिक्चक्रवाल साधना करता हुआ विचरण कर रहा हूँ । लेकिन अब मुझे उचित है कि कल सूर्योदय होते ही बहुत से दृष्ट-भाषित, पूर्व संगतिक, और पर्यायसंगतिक, तापसों से पूछकर और आश्रमसंश्रित अनेक शत जनों को वचन आदि से संतुष्ट कर और उनसे अनुमति लेकर वल्कल वस्त्र पहनकर, कावड़ की छबड़ी में अपने भाण्डोपकरणों को लेकर तथा काष्ठमुद्रा से मुख को बांधकर उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा में महाप्रस्थान करूं ।' इस प्रकार विचार करने के पश्चात् कल यावत् सूर्य के प्रकाशित होने पर उन्होंने सभी दृष्ट, भाषित, पूर्वसंगतिक और तापस पर्याय के साथियों आदि से पूछकर तथा आश्रमस्थ अनेक शत-प्राणियों को संतुष्ट कर अंत में काष्ठमुद्रा से मुख को बाँधा । इस प्रकार का अभिग्रह लिया–चाहे वह जल हो या स्थल, हो अथवा नीचा प्रदेश, पर्वत हो अथवा विषम भूमि, गड्ढा हो या गुफा, इन सब में से जहाँ कहीं भी प्रस्खलित होऊँ या गिर जाऊं वहाँ से मुझे उठना नहीं कल्पता है ।

तत्पश्चात् उत्तराभिमुख होकर महाप्रस्थान के लिए प्रस्थित वह सोमिल ब्रह्मर्षि उत्तर दिशा की ओर गमन करते हुए अपराह्न काल में जहां सुन्दर अशोक वृक्ष था, वहाँ आए । अपना कावड़ रखा । अनन्तर वेदिका साफ की, उसे लीप-पोत कर स्वच्छ किया, फिर डाभ सहित कलश को हाथ में लेकर जहाँ गंगा महानदी थी, वहाँ आए और शिवराजर्षि के समान उस गंगा महानदी में स्नान आदि कृत्य कर वहाँ से बाहर आए । फिर शर और अरणि बनाई, अग्नि पैदा की इत्यादि । अग्नियज्ञ करके काष्ठमुद्रा से मुख को बाँधकर मौन होकर बैठ गये। तदनन्तर मध्यरात्रि के समय सोमिल ब्रह्मर्षि के समक्ष एक देव प्रकट हुआ । उस देव ने सोमिल ब्रह्मर्षि से कहा–'प्रव्रजित सोमिल ब्राह्मण ! तेरी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है ।' उस देव ने दूसरी और तीसरी बार भी ऐसा ही कहा । किन्तु सोमिल ब्राह्मण ने उस देव की बात का आदर नहीं किया– यावत् मौन ही रहे । इसके बाद उस सोमिल ब्रह्मर्षि द्वारा अनादृत वह देव वापिस लौट गया । तत्पश्चात कल यावत् सूर्य के प्रकाशित होने पर वल्कल वस्त्रधारी सोमिल ने कावड़, भाण्डोपकरण आदि लेकर काष्ठमुद्रा से मुख को बांधा । बांधकर उत्तराभिमुख हो उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान कर दिया ।

इसके बाद दूसरे दिन अपराह्न काल के अंतिम प्रहर में सोमिल ब्रह्मर्षि जहाँ सप्तपर्ण वृक्ष था, वहाँ आये । कावड़ को रखा वेदिका–को साफ किया, इत्यादि पूर्ववत् । तब मध्यरात्रि में सोमिल ब्रह्मर्षि के समक्ष पुनः देव प्रकट हुआ और आकाश में स्थित होकर पूर्ववत् कहा परन्तु सोमिल ने उस देव की बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया । यावत् वह देव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनः वापिस लौट गया । इसके बाद वल्कल वस्त्रधारी सोमिल ने सूर्य के प्रकाशित होने पर अपने कावड़ उपकरण आदि लिए । काष्ठमुद्रा से मुख को बांधा और मुख बांधकर उत्तर की ओर मुख करके उत्तर दिशा में चल दिये । तदनन्तर वह सोमिल ब्रह्मर्षि तीसरे दिन अपराह्न काल में जहां उत्तम अशोक वृक्ष था, वहां आए । कावड़ रखी । बैठने के लिए वेदी बनाई और दर्भयुक्त कलश को लेकर गंगा महानदी में अवगाहन किया । अग्निहवन आदि किया फिर काष्ठमुद्रा से मुख को बांधकर मौन बैठ गए । तत्पश्चात् मध्यरात्रि में सोमिल के समक्ष पुनः एक देव प्रकट हुआ और उसने उसी प्रकार कहा–'हे प्रव्रजित सोमिल ! तेरी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है' यावत् वह देव वापिस लौट गया । इसके बाद सूर्योदय होने पर वह वल्कल वस्त्रधारी सोमिल कावड़ और पात्रोपकरण लेकर यावत् काष्ठमुद्रा से मुख को बांधकर उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा की ओर चल दिया ।

तदनन्तर चलते-चलते सोमिल ब्रह्मर्षि चौथे दिवस के अपराह्न काल में जहाँ वट वृक्ष था, वहाँ आए । नीचे कावड़ रखी । इत्यादि पूर्ववत् । मध्यरात्रि के समय पुनः सोमिल के समक्ष वह देव प्रकट हुआ और उसने कहा–'सोमिल ! तुम्हारी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है ।' ऐसा कहकर वह अन्तर्धान हो गया । रात्रि के बीतने के बाद और जाज्वल्यमान तेजयुक्त सूर्य के प्रकाशित होने पर वह वल्कल वस्त्रधारी वह यावत् उत्तर दिशा में चल दिए । तत्पश्चात् वह सोमिल ब्रह्मर्षि पाँचवें दिन के चौथे प्रहर में जहां उदुम्बर का वृक्ष था, वहाँ आए । कावड़ रखी । यावत् मौन होकर बैठ गए । मध्यरात्रि में पुनः सोमिल ब्राह्मण के समीप एक देव प्रकट हुआ और कहा–'हे सोमिल ! तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है ।' इसके बाद देव ने दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा–तब सोमिल ने देव से पूछा–देवानुप्रिय ! मेरी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या क्यों है ?'

देव ने कहा–तुमने पहले पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् से पंच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावकधर्म अंगीकार किया था । किन्तु इसके बाद सुसाधुओं के दर्शन उपदेश आदि का संयोग न मिलने और मिथ्यात्व पर्यायों के बढ़ने से अंगीकृत श्रावकधर्म को त्याग दिया । यावत् तुमने दिशाप्रोक्षिक प्रव्रज्या धारण की । यावत् जहाँ अशोक वृक्ष था, वहाँ आए और कावड़ रख वेदी आदि बनाई । यावत् मध्यरात्रि के समय मैं तुम्हारे समीप आया और तुम्हें प्रतिबोधित किया–'हे सोमिल ! तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है ।' किन्तु तुमने उस पर ध्यान नहीं दिया और मौन ही रहे । इस प्रकार चार दिन तक समझाया, आज पांचवें दिवस चौथे प्रहर में इस उदुम्बर वृक्ष के नीचे आकर तुमने अपना कावड़ रखा । यावत् तुम मौन होकर बैठ गए । इस प्रकार से हे देवानुप्रिय ! तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है । यह सब सुनकर सोमिल ने देव से कहा–'अब आप ही बताइए कि मैं कैसे सुप्रव्रजित बनूँ ?' देव ने सोमिल ब्राह्मण से कहा–'देवानुप्रिय ! यदि तुम पूर्व में ग्रहण किए हुए पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप श्रावकधर्म को स्वयंमेव स्वीकार करके विचरण करो तो तुम्हारी यह प्रव्रज्या सुप्रव्रज्या होगी । इसके बाद देव ने सोमिल ब्राह्मण को वन्दन-नमस्कार किया और अन्तर्धान हो गया । पश्चात् सोमिल ब्रह्मर्षि देव के कथनानुसार पूर्व में स्वीकृत पंच अणुव्रतों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को अंगीकार करके विचरण करने लगे ।

तत्पश्चात् सोमिल ने बहुत से चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त, अष्टमभक्त, यावत् अर्धमासक्षपण, मासक्षपण रूप विचित्र तपःकर्म से अपनी आत्मा को भावित करते हुए—श्रमणोपासक पर्याय का पालन किया । अंत में अर्धमासिक संलेखना द्वारा आत्मा की आराधना कर और तीस भोजनों का अनशन द्वारा त्याग कर किन्तु पूर्वकृत उस पापस्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण न करके सम्यक्त्व की विराधना के कारण कालमास में काल किया । शुक्रावतंसक विमान की उपपातसभा में स्थित देवशैया पर यावत् अंगुल के असंख्यातवें भाग की जघन्य अवगाहना से शुक्रमहाग्रह देव के रूप में जन्म लिया । वह शुक्रमहाग्रह देव यावत् पांचों पर्याप्तियों से पर्याप्त भाव को प्राप्त हुआ । —हे गौतम ! इस प्रकार से उस शुक्रमहाग्रह देव ने वह दिव्य देवऋद्धि, द्युति यावत् दिव्य प्रभाव प्राप्त किया है । उसकी वहाँ एक पल्योपम की स्थिति है। भदन्त ! वह शुक्रमहाग्रह देव आयु, भव और स्थिति का क्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवन कर कहां जाएगा ? गौतम ! वह शुक्रमहाग्रह देव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय के अनन्तर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा । आयुष्मन् जम्बू ! इस प्रकार श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त महावीर ने पुष्पिका के तृतीय अध्ययन में इस भाव का निरूपण किया है, ऐसा मैं कहता हूं ।

अध्ययन-३-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-४-बहुपुत्रिका

[८] भगवन् ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणप्राप्त भगवान् महावीर ने पुष्पिका के तृतीय अध्ययन का यह भाव निरूपण किया है तो भदन्त ! चतुर्थ अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नगर था । गुणशिलक चैत्य था। राजा श्रेणिक था । स्वामी का पदार्पण हुआ । परिषद् निकली । उस काल और उस समय में सौधर्मकल्प के बहुपुत्रिक विमान की सुधर्मासभा में बहुपुत्रिका देवी बहुपुत्रिक सिंहासन पर ४००० सामानिक देवियों तथा ४००० महत्तरिका देवियों के साथ सूर्याभदेव के समान नानाविध दिव्य भोगों को भोगती हुई विचरण कर रही थी । उसने अपने विपुल अवधिज्ञान से इस केवलकल्प जम्बूद्वीप को देखा और भगवान् महावीर को देखा । सूर्याभ देव के समान यावत् नमस्कार करके अपने उत्तम सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गई । फिर सूर्याभदेव के समान उसने अपने आभियोगिक देवों को बुलाया और उन्हें सुस्वरा घंटा बजाने की आज्ञा दी । देव-देवियों को भगवान् के दर्शनार्थ चलने की सूचना दी । पुनः आभियोगिक देवों को वुलाया और विमान की विकुर्वणा करने की आज्ञा दी । वह यान-विमान १००० योजन विस्तीर्ण था । सूर्याभदेव के समान वह अपनी समस्त ऋद्धि-वैभव के साथ यावत् उत्तर दिशा के निर्याणमार्ग से निकलकर १००० योजन ऊँचे वैक्रिय शरीर को बनाकर भगवान् के समवसरण में उपस्थित हुई । भगवान् ने धर्मदेशना दी । पश्चात् उस बहुपुत्रिका देवी ने अपनी दाहिनी भुजा पसारी— १०८ देवकुमारों की ओर बांयीं भुजा फैलाकर १०८ देवकुमारिकाओं की विकुर्वणा की । इसके बाद बहुत से दारक-दारिकाओं तथा डिम्भक-डिम्भिकाओं की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकुर्वणा की तथा सूर्याभ देव के समान नाट्य-विधियों को दिखाकर वापिस लौट गई ।

गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया और प्रश्न किया—भगवन् ! उस बहुपुत्रिका देवी की वह दिव्य देवऋद्धि, द्युति और देवानुभाव कहाँ गया ? गौतम ! वह देव-ऋद्धि आदि उसी के शरीर से निकली थी और उसी के शरीर में समा गई । गौतमस्वामी ने पुनः पूछा—भदन्त ! उस बहुपुत्रिका देवी को वह दिव्य देव-ऋद्धि आदि कैसे मिली, कैसे उसके उपभोग में आई ? गौतम ! उस काल और उस समय वाराणसी नगरी थी । आम्रशालवन चैत्य था । भद्र सार्थवाह रहता था, जो धन-धान्यादि से समृद्ध यावत् दूसरों से अपरिभूत था भद्र सार्थवाह की पत्नी सुभद्रा थी । वह अतीव सुकुमाल अंगोपांगवाली थी, रूपवती थी । किन्तु वन्ध्या होने से उसने एक भी सन्तान को जन्म नहीं दिया । वह केवल जानु और कूर्पर की माता थी । किसी एक समय मध्य रात्रि में पारिवारिक स्थिति का विचार करते हुए सुभद्रा को इस प्रकार का मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—'मैं भद्र सार्थवाह के साथ विपुल मानवीय भोगों को भोगती हुई समय व्यतीत कर रही हूं, किन्तु आज तक मैंने एक भी बालक या बालिका का प्रसव नहीं किया है । वे माताएँ धन्य हैं यावत् पुण्यशालिनी हैं, उन माताओं ने अपने मनुष्यजन्म और जीवन का फल भलीभांति प्राप्त किया है, जो अपनी निज की कुक्षि से उत्पन्न,स्तन के दूध के लोभी, मन को लुभानेवाली वाणी का उच्चारण करनेवाली, तोतली बोली बोलनेवाली, स्तन मूल और कांख के अंतराल में अभिसरण करनेवाली सन्तान को दूध पिलाती हैं । उसे गोद में बिठलता हैं, मधुर-मधुर संलापों से अपना मनोरंजन करती हैं । लेकिन मैं ऐसी भाग्यहीन, पुण्यहीन हूं कि संतान सम्बन्धी एक भी सुख मुझे प्राप्त नहीं है ।' इस प्रकार के विचारों से निरुत्साह—होकर यावत् आर्त्तध्यान करने लगी ।

उस काल और उस समय में ईर्यासमिति यावत् उच्चार-प्रस्रवण-श्लेष्म-सिंघाणपरिष्ठापना-समिति से समित, मनोगुप्ति, यावत् कायगुप्ति से युक्त, इन्द्रियों का गोपन करनेवाली, गुप्त ब्रह्मचारिणी बहुश्रुता, शिष्याओं के बहुत बड़े परिवारवाली सुव्रता आर्या विहार करती हुई वाराणसी नगरी आई । कल्पानुसार यथायोग्य अवग्रह आज्ञा लेकर संयम और तप से आत्मा को परिशोधित करती हुई विचरने लगी । उन सुव्रता आर्या का एक संघाड़ा वाराणसी नगरी के सामान्य, मध्यम और उच्च कुलों में सामुदायिक भिक्षाचर्या के लिए परिभ्रमण करता हुआ भद्र सार्थवाह के घर में आया । तब सुभद्रा सार्थवाही हर्षित और संतुष्ट होती हुई शीघ्र ही अपने आसन से उठकर खड़ी हुई । सात-आठ डग उनके सामने गई और वन्दन-नमस्कार किया । फिर विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार से प्रतिलाभित कर इस प्रकार कहा—आर्याओ ! मैं भद्र सार्थवाह के साथ विपुल भोगोपभोग भोग रही हूँ, मैंने आज तक एक भी संतान का प्रसव नहीं किया है । वे माताएँ धन्य हैं, यावत् मैं अधन्या पुण्यहीना हूँ कि उनमें से एक भी सुख प्राप्त नहीं कर सकी हूँ । देवानुप्रियो ! आप बहुत ज्ञानी हैं, और बहुत से ग्रामों, आकरों, नगरों यावत् देशों में घूमती हैं । अनेक राजा, ईश्वर, यावत् सार्थवाह आदि के घरों में भिक्षा के लिए प्रवेश करती हैं । तो क्या कहीं कोई विद्याप्रयोग, मंत्रप्रयोग, वमन, विरेचन, वस्तिकर्म, औषध अथवा भेषज ज्ञात किया है, देखा-पढ़ा है जिससे मैं बालक या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बालिका का प्रसव कर सकूं ?

तब उन आर्यिकाओं ने सुभद्रा सार्थवाही से कहा—देवानुप्रिय । हम ईर्यासमिति आदि समितिओं से समित, तीन गुप्तिओं से गुप्त, यावत् श्रमणियाएं हैं । हमको ऐसी बातों का सुनना भी नहीं कल्पता है तो फिर हम इनका उपदेश कैसे कर सकती हैं ? किन्तु हम तुम्हें केवलिप्ररूपित धर्मोपदेश सुना सकती हैं । इसके बाद उन आर्यिकाओं से धर्मश्रवण कर उसे अवधारित कर उस सुभद्रा सार्थवाही ने हृष्ट-तुष्ट हो उन आर्याओं को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की । दोनों हाथ जोड़कर वंदन-नमस्कार किया । उसने कहा—मैं निर्ग्रन्थप्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ, विश्वास करती हूँ, रुचि करती हूँ । आपने जो उपदेश दिया है, वह तथ्य है, सत्य है, अवितथ है । यावत् मैं श्रावकधर्म को अंगीकार करना चाहती हूँ । देवानुप्रिये ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसा करो किन्तु प्रमाद मत करो । तब उसने आर्यिकाओं से श्रावकधर्म अंगीकार किया । उन आर्यिकाओं को वन्दन-नमस्कार किया । वह सुभद्रा सार्थवाही श्रमणोपासिका होकर श्रावकधर्म पालती हुई यावत् विचरने लगी ।

इसके बाद उस सुभद्रा श्रमणोपासिका को किसी दिन मध्यरात्रि के समय कौटुम्बिक स्थिति पर विचार करते हुए इस प्रकार का आन्तरिक मनःसंकल्प यावत् विचार समुत्पन्न हुआ—"मैं भद्र सार्थवाह के साथ विपुल भोगोपभोगों को भोगती हुई समय व्यतीत कर रही हूँ किन्तु मैंने अभी तक एक भी दारक या दारिका को जन्म नहीं दिया है । अतएव मुझे यह उचित है कि मैं कल यावत् जाज्वल्यमान तेज सहित सूर्य के प्रकाशित होने पर भद्र सार्थवाह से अनुमति लेकर सुव्रता आर्यिका के पास गृह त्यागकर यावत् प्रव्रजित हो जाऊँ । भद्र सार्थवाह को दोनों हाथ जोड़ यावत् इस प्रकार बोली—तुम्हारे साथ बहुत वर्षों से विपुल भोगों को भोगती हुई समय बिता रही हूँ, किन्तु एक भी बालक या बालिका को जन्म नहीं दिया है । अब मैं आप देवानुप्रिय की अनुमति प्राप्त करके सुव्रता आर्यिका के पास यावत् प्रव्रजित-दीक्षित होना चाहती हूँ । तब भद्र सार्थवाह ने कहा—तुम अभी मुंडित होकर यावत् गृहत्याग करके प्रव्रजित मत होओ, मेरे साथ विपुल भोगोपभोगों का भोग करो और भोगों को भोगने के पश्चात् यावत् अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना । तब सुभद्रा सार्थवाही ने भद्र सार्थवाह के वचनों का आदर नहीं किया—दूसरी बार और फिर तीसरी बार भी सुभद्रा सार्थवाही ने यही कहा—आपकी आज्ञा लेकर मैं सुव्रताआर्या के पास प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूँ । जब भद्र सार्थवाह अनुकूल और प्रतिकूल बहुत सी युक्तियों, प्रज्ञप्तियों, संज्ञप्तियों और विज्ञप्तियों से उसे समझाने-बुझाने, संबोधित करने और मनाने में समर्थ नहीं हुआ तब इच्छा न होने पर भी लाचार होकर सुभद्रा को दीक्षा लेने की आज्ञा दे दी ।

तत्पश्चात् भद्र सार्थवाह ने विपुल परिमाण में अशन-पान-खादिम-स्वादिम भोजन तैयार करवाया और अपने सभी मित्रों, जातिबांधवों, स्वजनों, सम्बन्धी-परिचितों को आमन्त्रित किया । उन्हें भोजन कराया यावत् उन का सत्कार-सम्मान किया । फिर स्नान की हुई, कौतुक-मंगल प्रायश्चित्त आदि से युक्त, सभी अलंकारों से विभूषित सुभद्रा सार्थवाही को हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने योग्य पालकी में बैठाया और उसके बाद वह सुभद्रा सार्थवाही जहाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुव्रता आर्या का उपाश्रय था वहाँ आई । आकर उस पुरुषसहस्त्रवाहिनी पालकी को रोका और पालकी से उतरी । भद्र सार्थवाह सुभद्रा सार्थवाही को आगे करके सुव्रता आर्या के पास आया और आकर उसने वन्दन नमस्कार किया । निवेदन किया–'देवानुप्रिये ! मेरी यह सुभद्रा भार्या मुझे अत्यन्त इष्ट और कान्त है यावत् इसको बात-पित्त-कफ और सन्निपातजन्य विविध रोग-आतंक आदि स्पर्श न कर सकें, इसके लिए सर्वदा प्रयत्न करता रहा । लेकिन अब यह संसार के भय से उद्विग्न एवं जन्म-स्मरण से भयभीत होकर आप के पास यावत् प्रव्रजित होने के लिए तत्पर है । इसलिए मैं आपको यह शिष्या रूप भिक्षा दे रहा हूँ । आप देवानुप्रिया इस शिष्या-भिक्षा को स्वीकार करें ।' भद्र सार्थवाह के इस प्रकार निवेदन करने पर सुव्रता आर्या ने कहा–'देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें अनुकूल प्रतीत हो, वैसा करो, किन्तु इस मांगलिक कार्य में विलम्ब मत करो ।'

सुव्रता आर्या के इस कथन को सुनकर सुभद्रा सार्थवाही हर्षित एवं संतुष्ट हुई और उसने स्वयमेव अपने हाथों से वस्त्र, माला और आभूषणों को उतारा । पंचमुष्टिक केशलोंच किया फिर जहाँ सुव्रता आर्या थीं, वहाँ आई । प्रदक्षिणापूर्वक वन्दन-नमस्कार किया । और बोली–यह संसार आदीप्त है, प्रदीप्त है, इत्यादि कहते हुए देवानन्दा के समान वह उन सुव्रता आर्या के पास प्रव्रजित हो गई और पांच समितियों एवं तीन गुप्तियों से युक्त होकर इन्द्रियों का निग्रह करने वाली यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी आर्या हो गई । इसके बाद सुभद्रा आर्या किसी समय गृहस्थों के बालक-बालिकाओं में मूर्च्छित आसक्त हो गई–यावत् उन बालक-बालिकाओं के लिए अभ्यंगन, उबटन, प्रासुक जल, उन बच्चों के हाथ-पैर रंगने के लिए मेहंदी आदि रंजक द्रव्य, कंकण, अंजन, वर्णक, चूर्णक, खिलौने, के लिए मिष्टान्न, खीर, दूध और पुष्प-माला आदि की गवेषणा करने लगी । उन गृहस्थों के दारक-दारिकाओं, कुमार-कुमारिकाओं, बच्चे-बच्चियों में से किसी की तेल-मालिश करती, किसी के उबटन लगाती, इसी प्रकार किसी को प्रासुक जल से स्नान कराती, पैरों को रंगती, ओठों को रंगती, काजल आंजती, तिलक लगाती, बिन्दी लगाती, झुलाती तथा किसी-किसी को पंक्ति में खड़ा करती, चंदन लगाती, सुगन्धित चूर्ण लगाती, खिलौने देती, खाने के लिए मिष्टान्न देती, दूध पिलाती, किसी के कंठ में पहनी हुई पुष्प माला को उतारती, पैरों पर बैठाती तो किसी को जांघों पर बैठाती । किसी को टांगों पर, गोदी में, कमर पर, पीठ पर, छाती पर, कन्धों पर, मस्तक पर बैठाती और हथेलियों में लेकर हुलराती, लोरियां गाती हुई, पुचकारती हुई पुत्र की लालसा, पुत्री की वांछा, पोते-पोतियों की लालसा का अनुभव करती हुई अपना समय बिताने लगी ।

उसकी ऐसी वृत्ति–देखकर सुव्रता आर्या ने कहा–देवानुप्रिये ! हम लोग संसार-विषयों से विरक्त, ईर्यासमिति आदि से युक्त यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी निर्ग्रन्थी श्रमणी हैं । हमें बालकों का लालन-पालन, आदि करना-कराना नहीं कल्पता है । लेकिन तुम गृहस्थों के बालकों में मूर्च्छित यावत् अनुरागिणी होकर उनका अभ्यंगत आदि करने रूप अकल्पनीय कार्य करती हो यावत् पुत्र-पौत्र आदि की लालसापूर्ति का अनुभव करती हो । अतएव तुम इस स्थान–की आलोचना करो यावत् प्रायश्चित्त लो । सुव्रता आर्या द्वारा इस प्रकार से अकल्पनीय कार्यों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से रोकने के लिए समझाए जाने पर भी सुभद्रा आर्या ने उन सुव्रता आर्या के कथन का आदर नहीं किया–किन्तु उपेक्षा-पूर्वक अस्वीकार कर पूर्ववत् बाल-मनोरंजन करती रही ।

तब निर्ग्रन्थ श्रमणियाँ इस अयोग्य कार्य के लिए सुभद्रा आर्या की हीलना, निन्दा, खिंसा, गर्हा करतीं– और ऐसा करने से उसे बार-बार रोकतीं । उन सुव्रता आदि निर्ग्रन्थ श्रमणी आर्याओं द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से हीलना आदि किए जाने और बार-बार रोकने–पर उस सुभद्रा आर्या को इस प्रकार का यावत् मानसिक विचार उत्पन्न हुआ–'जब मैं अपने घर में थी, तब मैं स्वाधीन थी, लेकिन जब से मैं मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगारिक प्रव्रज्या से प्रव्रजित हुई हूँ, तब से मैं पराधीन हो गई हूँ । पहले जो निर्ग्रन्थ श्रमणियाँ मेरा आदर करती थी, मेरे साथ प्रेम-पूर्वक आलाप–संलाप करती थीं, वे आज न तो मेरा आदर करती हैं और न प्रेम से बोलती हैं । इसलिए मुझे कल प्रातःकाल यावत् सूर्य के प्रकाशित होने पर पृथक् उपाश्रय में जाकर रहना उचित हैं ।' यावत् सूर्योदय होने पर सुव्रताआर्या को छोड़कर वह निकल गई और अलग उपाश्रय में जाकर अकेली रहने लगी । तत्पश्चात् वह सुभद्रा आर्या, आर्याओं द्वारा नहीं रोके जाने से निरंकुश और स्वच्छन्दमति होकर गृहस्थों के बालकों में आसक्त–यावत्–उनकी तेल-मालिश आदि करती हुई पुत्र-पौत्रादि की लालसापूर्ति का अनुभव करती हुई समय बिताने लगी ।

तदनन्तर वह सुभद्रा पासत्था, पासत्थविहारी, अवसन्न, अवसन्नविहारी, कुशील कुशीलविहारी, संसक्त संसक्तविहारी और स्वच्छन्द तथा स्वच्छन्दविहारी हो गई । उसने बहुत वर्षों तक श्रमणी-पर्याय का पालन किया । अर्धमासिक संलेखना द्वारा आत्मा को परिशोधित कर, अनशन द्वारा तीस भोजनों को छोड़कर और अकरणीय पाप-स्थान–की आलोचना–किए बिना ही मरण करके सौधर्मकल्प के बहुपुत्रिका विमान की उपपातसभा में देवदूष्य से आच्छादित देवशैया पर अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण अवगाहना से बहुपुत्रिका देवी के रूप में उत्पन्न हुई । उत्पन्न होते ही वह बहुपुत्रिका देवी पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर देवी रूप में रहने लगी । गौतम ! इस प्रकार बहुपुत्रिका देवी ने वह दिव्य देव-ऋद्धि एवं देवद्युति प्राप्त की है यावत् उसके सन्मुख आई है । गौतम स्वामी ने पुनः पूछा–'भदन्त ! किस कारण से बहुपुत्रिका देवी को बहुपुत्रिका कहते हैं ?' 'गौतम ! जब-जब वह बहुपुत्रिका देवी देवेन्द्र देवराज शक्र के पास जाती तब-तब वह बहुत से बालक-बालिकाओं, बच्चे-बच्चियों की विकुर्वणा करती । जाकर उन देवेन्द्र-देवराज शक्र के समक्ष अपनी दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति एवं दिव्य देवानुभाव–प्रदर्शित करती । इसी कारण हे गौतम ! वह उसे 'बहुपुत्रिका देवी' कहते हैं। 'भदन्त ! बहुपुत्रिका देवी की स्थिति कितने काल की है ?' 'गौतम ! चार पल्योपम है ।' 'भगवन् ! आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर बहुपुत्रिका देवी उस देवलोक से च्यवन करके कहाँ जाएगी ?' 'गौतम ! आयुक्षय आदि के अनन्तर बहुपुत्रिका देवी इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में विन्ध्य-पर्वत की तलहटी में बसे बिभेल सन्निवेश में ब्राह्मणकुल में बालिका रूप में उत्पन्न होगी । उस बालिका के माता-पिता ग्यारह दिन बीतने पर यावत् बारहवें दिन वे अपनी बालिका का नाम सोमा रखेंगे ।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्पश्चात् वह सोमा बाल्यावस्था से मुक्त होकर, सज्ञानदशापन्न होकर युवावस्था आने पर रूप, यौवन एवं लावण्य से अत्यन्त उत्तम एवं उत्कृष्ट शरीरवाली हो जाएगी । तब माता-पिता उस सोमा बालिका को बाल्यावस्था को पार कर विषय-सुख से अभिज्ञ एवं यौवनावस्था में प्रविष्ट जानकर यथायोग्य गृहस्थोपयोगी उपकरणों, धन-आभूषणों और संपत्ति के साथ अपने भानजे राष्ट्रकूट को भार्या के रूप में देंगे । वह सोमा उस राष्ट्रकूट की इष्ट, कान्त, भार्या होगी यावत् वह सोमा की भाण्डकरण्डक के समान, तेलकेल्ला के समान, वस्त्रों के पिटारे के समान, रत्नकरण्डक के समान उसकी सुरक्षा का ध्यान रखेगा और उसको शीत, उष्ण, वात, पित्त, कफ एवं सन्निपातजन्य रोग और आतंक स्पर्श न कर सकें, इस प्रकार से सर्वदा चेष्टा करता रहेगा । तत्पश्चात् सोमा ब्राह्मणी राष्ट्रकूट के साथ विपुल भोगों को भोगती हुई प्रत्येक वर्ष एक युगल संतान को जन्म देकर सोलह वर्ष में बत्तीस बालकों का प्रसव करेगी ।

तब वह बहुत से दारक-दारिकाओं, कुमार-कुमारिकाओं और बच्चे-बच्चियों में से किसी के उत्तान शयन करने से, किसी के चीखने-चिल्लाने से, जन्म-घूंटी आदि दवाई पिलाने से, घुटने-घुटने चलने से, पैरों पर खड़े होने में प्रवृत्त होने से, चलते-चलते गिर जाने से, स्तन को टटोलने से, दूध मांगने से, खिलौना मांगने से, मिठाई मांगने से, कूर मांगने से, इसी प्रकार पानी मांगने से, हंसने से, रूठ जाने से, गुस्सा करने से, झगड़ने से, आपस में मारपीट करने से, उसका पीछा करने से, रोने से, आक्रंदन करने से, विलाप करने से, छीना-छपटी करने से, कराहने से, ऊंघने से, प्रलाप करने से, पेशाब आदि करने से, उलटी कर से, छेरने से, मूतने से, सदैव उन बच्चों के मल-मूत्र वमन से लिपटे शरीरवाली तथा मैले-कुचैले कपड़ों से कांतिहीन यावत् अशुचि से सनी हुई होने से देखने में बीभत्स और अत्यन्त दुर्गन्धित होने के कारण राष्ट्रकूट के साथ विपुल कामभोगों को भोगने में समर्थ नहीं हो सकेगी ।

ऐसी अवस्था में किसी समय रात को पिछले प्रहर में अपनी और अपने कुटुम्ब की स्थिति पर विचार करते हुए उस सोमा ब्राह्मणी को विचार उत्पन्न होगा–'मैं इन बहुत से अभागे, दुःखदायी एक साथ थोड़े-थोड़े दिनों के बाद उत्पन्न हुए छोटे-बड़े और नवजात बहुत से दारक-दारिकाओं यावत् बच्चे-बच्चियों में से यावत् उनके मल-मूत्र-वमन आदि से लिपटी रहने के कारण अत्यन्त दुर्गन्धमयी होने से राष्ट्रकूट के साथ भोगों का अनुभव नहीं कर पा रही हूँ । वे माताएँ धन्य हैं यावत् उन्होंने मनुष्यजन्म और जीवन का सुफल पाया है, जो वंध्या हैं, प्रजननशीला नहीं होने से जानु-कूर्पर की माता होकर सुरभि सुगंध से सुवासित होकर विपुल मनुष्य सम्बन्धी भोगोपभोगों को भोगती हुई समय बिताती हैं । सोमा ने जब ऐसा विचार किया कि उस काल और उसी समय ईर्या आदि समितिओं से युक्त यावत् बहुत-सी साध्वियों के साथ सुव्रता नाम की आर्याएँ उस बिभेल सन्निवेश में आएँगी और अनगारोचित अवग्रह लेकर स्थित होंगी । तदनन्तर उन सुव्रता आर्याओ का एक संघाड़ा बिभेल सन्निवेश के उच्च, सामान्य और मध्यम परिवारों में गृहसमुदानी भिक्षा के लिए घूमता हुआ राष्ट्रकूट के घर में प्रवेश करेगा । तब वह सोमा ब्राह्मणी उन आर्याओं को आते देखकर हर्षित और संतुष्ट होगी। शीघ्र ही अपने आसन से उठेगी, सात-आठ डग उनके सामने आएगी । वंदन-नमस्कार करेगी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन से प्रतिलाभित करके कहेगी–'आर्याओ ! राष्ट्रकूट के साथ विपुल भोगों को भोगते हुए यावत् मैंने प्रतिवर्ष बालक-युगलों को जन्म देकर सोलह वर्ष में बत्तीस बालकों का प्रसव किया है । जिससे मैं उन दुर्जन्मा यावत् बद्यों के मल-मूत्र-वमन आदि से सनी होने के कारण अत्यन्त दुर्गन्धित शरीरवाली हो राष्ट्रकूट के साथ भोगोपभोग नहीं भोग पाती हूँ । आर्याओ ! मैं आप से धर्म सुनना चाहती हूँ । तब वे आर्याएँ सोमा ब्राह्मणी को यावत् केवलिप्ररूपित धर्म का उपदेश सुनाएंगी ।

तत्पश्चात् सोमा ब्राह्मणी उन आर्यिकाओं से धर्मश्रवण कर और उसे हृदय में धारण कर हर्षित और संतुष्ट–यावत् विकसितहृदयपूर्वक उन आर्याओ को वंदन-नमस्कार करेगी । और कहेगी–मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ यावत् उसे अंगीकार करने के लिए उद्यत हूँ । निर्ग्रन्थप्रवचन इसी प्रकार का है यावत् जैसा आपने प्रतिपादन किया है । किन्तु मैं राष्ट्रकूट से पूछूंगी । तत्पश्चात् आप देवानुप्रिय के पास मुंडित होकर प्रव्रजित होऊंगी । देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो । तत्पश्चात् वह सोमा ब्राह्मणी राष्ट्रकूट के निकट जाकर दोनों हाथ जोड़ कहेगी–मैंने आर्याओ से धर्मश्रवण किया है और वह धर्म मुझे इच्छित–है यावत् रुचिकर लगा है । इसलिए आपकी अनुमति लेकर मैं सुव्रता आर्या से प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूँ । तब राष्ट्रकूट कहेगा–अभी तुम मुंडित होकर यावत् घर छोड़कर प्रव्रजित मत होओ किन्तु अभी तुम मेरे साथ विपुल कामभोगों का उपभोग करो और भुक्तभोगी होने के पश्चात् यावत् गृहत्याग कर प्रव्रजित होना । राष्ट्रकूट के इस सुझाव को मानने के पश्चात् सोमा ब्राह्मणी स्नान कर, कौतुक मंगल प्रायश्चित कर यावत् आभरण-अलंकारों से अलंकृत होकर दासियों के समूह से घिरी हुई अपने घर से निकलेगी । बिभेल सन्निवेश के मध्यभाग को पार करती हुई सुव्रता आर्याओं के उपाश्रय में आएगी । आकर सुव्रता आर्याओं को वंदन-नमस्कार करके उनकी पर्युपासना करेगी ।

तत्पश्चात् वे सुव्रता आर्या उस सोमा ब्राह्मणी को 'कर्म से जीव बद्ध होते हैं–इत्यादिरूप केवलिप्ररूपित धर्मोपदेश देंगी । तब वह सोमा ब्राह्मणी बारह प्रकार के श्रावक धर्म को स्वीकार करेगी और फिर सुव्रता आर्या को वंदन-नमस्कार करेगी । वापिस लौट जाएगी । तत्पश्चात् सोमा ब्राह्मणी श्रमणोपासिका हो जाएगी । वह जीव-अजीव पदार्थों के स्वरूप की ज्ञाता, पुण्य-पाप के भेद की जानकार, आस्रव-संवर-निर्जरा-क्रिया-अधिकरण तथा बंध-मोक्ष के स्वरूप को समझने में निष्णात, परतीर्थियों के कुतर्कों का खण्डन करने में स्वयं समर्थ, होगी । देव, असुर, नाग, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, गंधर्व, महोरग आदि देवता भी उसे निर्ग्रन्थप्रवचन से विचलित नहीं कर सगेंगे । निर्ग्रन्थप्रवचन पर श्रद्धा करेगी । आत्मोत्थान के सिवाय अन्य कार्यों में उसकी अभिलाषा नहीं रहेगी । धार्मिक-आध्यात्मिक सिद्धान्तों के आशय के प्रति उसे संशय नहीं रहेगा । लब्धार्थ, गृहीतार्थ, विनिश्चितार्थ, होने से उसकी अस्थि और मज्जा तक धर्मानुराग से अनुरंजित हो जाएगी । इसीलिए वह दूसरों को संबोधित करते हुए उद्घोषणा करेगी–आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही अर्थ है, परमार्थ है, इसके सिवाय अन्यतीर्थिकों का कथन कुगति-प्रापक होने से अनर्थ है । असद् विचारों से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहीन होने के कारण उसका हृदय स्फटिक के समान निर्मल होगा, निर्ग्रन्थ श्रमण भिक्षा के लिए सुगमता से प्रवेश कर सकें, अतः उसके घर का द्वार सर्वदा खुला होगा । सभी के घरों, में उसका प्रवेश प्रीतिजनक होगा । चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णमासी को परिपूर्ण पौषधव्रत का सम्यक् प्रकार से परिपालन करते हुए श्रमण-निर्ग्रन्थों को प्रासुक एषणीय-निर्दोष आहार, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक-आसन, वस्त्र, पात्र, कंबल, रजोहरण, औषध, भेषज से प्रतिलाभित करती हुई एवं यथाविधि ग्रहण किए हुए विविध प्रकार के शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान, पौषधोपवासों से आत्मा को भावित करती हुई रहेगी ।

सुव्रता आर्या किसी समय ग्रामानुग्राम में विचरण करती हुई यावत् पुनः बिभेल संनिवेश में आएंगी । तब वह सोमा ब्राह्मणी हर्षित एवं संतुष्ट हो, स्नान कर तथा अलंकारों से विभूषित हो पूर्व की तरह दर्शनार्थ निकलेगी यावत् वंदन-नमस्कार करके धर्म श्रवण कर यावत् सुव्रता आर्या से कहेगी–मैं राष्ट्रकट से पूछकर आपके पास मुंडित होकर प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहती हूँ । तब सुव्रता आर्या कहेंगी–देवानुप्रिये ! तुम्हें जिसमें सुख हो वैसा करो, किन्तु शुभ कार्य में विलम्ब मत करो । इसके बाद सोमा ब्राह्मणी उन सुव्रता आर्याओं को वंदन-नमस्कार करके जहाँ राष्ट्रकूट होगा, वहाँ आएगी । दोनों हाथ जोड़कर पूर्व के समान पूछेगी कि आपकी आज्ञा लेकर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूँ । इस बात को सुनकर राष्ट्रकूट कहेगा–देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो, इसके पश्चात् राष्ट्रकूट विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम चार प्रकार के भोजन बनवाकर अपने मित्र जाति-बांधव, स्वजन, संबन्धियों को आमंत्रित करेगा । इत्यादि, पूर्वभव में सुभद्रा के समान यहाँ भी वह प्रव्रजित होगी और आर्या होकर ईर्यासमिति आदि समितियों एवं गुप्तियों से युक्त होकर यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी होगी ।

तदनन्तर वह सोमाआर्या सुव्रताआर्या से सामायिक आदि से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन करेगी । विविध प्रकार के बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादशभक्त आदि विचित्र तपःकर्म से आत्मा को भावित करती हुई बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन करेगी । मासिक संलेखना से आत्मा शुद्ध कर, अनशन द्वारा साठ भोजनों को छोड़कर, आलोचना प्रतिक्रमणपूर्वक समाधिस्थ हो, मरण करके देवेन्द्र देवराज शक्र के सामानिक देव के रूप में उत्पन्न होगी । उस सोमदेव की दो सागरोपम की स्थिति होगी । तब गौतमस्वामी ने पूछा–'भदन्त ! वह सोम देव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर देवलोक से च्यवकर कहाँ जाएगा ? 'हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध होगा यावत् सर्व दुःखों का अंत करेगा ।' 'आयुष्मन् जम्बू ! इस प्रकार से भगवान् महावीर ने पुष्पिका के चतुर्थ अध्ययन का यह भाव निरूपण किया है । ऐसा मैं कहता हूँ ।'

अध्ययन-४-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-५-पूर्णभद्र

[९] भगवन् ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणप्राप्त भगवान् महावीर ने पुष्पिका नामक उपांग के चतुर्थ अध्ययन का यह भाव प्रतिपादन किया है तो भगवन् ! पंचम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ? आयुष्मन् जम्बू ! उस काल और उस समय राजगृह नगर था ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणशिलक चैत्य था । श्रेणिक राजा था । स्वामी पधारे । परिषद् दर्शन करने निकली । उस काल और उस समय सौधर्मकल्प में पूर्णभद्र विमान की सुधर्मासभा में पूर्णभद्र सिंहासन पर आसीन होकर पूर्णभद्र देव सूर्याभदेव के समान विचर रहा था । उसने अवधिज्ञान से भगवान् को देखा । भगवान् की सेवा में उपस्थित हुआ, वन्दन नमस्कार करके यावत् बत्तीस प्रकार की नृत्यविधियों को प्रदर्शित कर वापिस लौट गया । तब गौतमस्वामी ने भगवान् से उस देव की दिव्य देव-ऋद्धि आदि के विषय में पूछा । गौतम ! उस काल और उस समय इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में धन वैभव इत्यादि से समृद्धि–मणिपदिका नगरी थी । राजा चन्द्र था और ताराकीर्ण नाम का उद्यान था । उस नगरी में पूर्णभद्र नाम का एक सद्गृहस्थ रहता था, जो धन-धान्य इत्यादि से संपन्न था । उस काल और उस समय जाति एवं कुल से संपन्न यावत्, बहुश्रुत स्थविर भगवन्त बहुत बड़े अन्तेवासी परिवार के साथ समवसृत हुए। जनसमूह धर्मदेशना श्रवण करने निकला ।

पूर्णभद्र गाथापति उन स्थविरों के आगमन का वृत्तान्त जानकर यावत् भगवती-सूत्रोक्त गंगदत्त के समान गया यावत् उनके पास प्रव्रजित हुआ यावत् ईर्यासमिति आदि से युक्त गुप्तब्रह्मचारी अनगार हो गया । तत्पश्चात् पूर्णभद्र अनगार ने उन स्थविर भगवन्तों से सामायिक से प्रारंभ कर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टमभक्त आदि तपःकर्म से आत्मा को परिशोधित करके बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन किया । मासिक संलेखनापूर्वक साठ भोजनों का अनशन द्वारा छेदन कर आलोचनापूर्वक समाधि प्राप्त कर काल करके सौधर्मकल्प के पूर्णभद्र विमान में देव रूप से उत्पन्न हुआ । यावत् भाषा-मन पर्याप्ति से पर्याप्त भाव को प्राप्त किया । भदन्त ! पूर्णभद्र देव की कितने काल की स्थिति बताई है ? 'गौतम ! दो सागरोपम की ।' 'भगवन् ! वह पूर्णभद्र देव उस देवलोक से च्यवन करके कहाँ जाएगा ? 'गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध होगा यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा ।'

अध्ययन-६-माणिभद्र

[१०] भगवन् ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणप्राप्त भगवान् ने पुष्पिका के पंचम अध्ययन का यह आशय कहा है तो के षष्ठ अध्ययन का क्या अर्थ बताया है ? आयुष्यमन् जम्बू ! उस काल और उस समय राजगृह नगर था । गुणशिलक चैत्य था । राजा श्रेणिक था । महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ । मणिभद्र देव सुधर्मासभा के मणिभद्र सिंहासन पर बैठकर यावत् रहा था । पूर्वभद्र देव के समान वह भी भगवान् के समवसरण में आया और वापिस लौट गया । गौतम स्वामी ने उसको देव-ऋद्धि एवं पूर्वभव के विषय में पूछा । भगवान् ने कहा–उस काल और उस समय मणिपदिका नगरी थी । मणिभद्र गाथापति था । उसने स्थविरों के समीप प्रव्रज्या अंगीकार की । ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन किया और मासिक संलेखना की । पापस्थानों का आलोचन–करके समाधिपूर्वक मरण करके मणिभद्र विमान में उत्पन्न हुआ । वहाँ उसकी दो सागरोपम की स्थिति है । अन्त में उस देवलोक से च्यवन करके महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा और सर्व दुःखों का अन्त करेगा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्ययन-७-से-१०

[११] इसी प्रकार दत्त, शिव, बल और अनादृत, इन सभी देवों को पूर्णभद्रदेव के समान जानना । सभी की दो-दो सागरोपम की स्थिति है । इन देवों के नाम के समान ही इनके विमानों के नाम हैं । पूर्वभव में दत्त चन्दना नगरी में, शिव मिथिला, बल हस्तिनापुर और अनादृत काकन्दी नगरी में जन्मे थे ।

२१	पुष्पिका-उपांगसूत्र-१०-हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

२२ पुष्पचूलिका

उपांगसूत्र-११-हिन्दी अनुवाद

अध्ययन-१-से-१०

[१] हे भदन्त ! यदि मोक्षप्राप्त यावत् श्रमण भगवान् महावीर ने पुष्पिका नामक तृतीय उपांग का यह अर्थ प्रतिपादित किया है तो चतुर्थ उपांग का क्या अर्थ–कहा है ? है जम्बू ! चतुर्थ उपांग पुष्पचूलिका के दस अध्ययन प्रतिपादित किए हैं, वे इस प्रकार हैं–

[२] श्रीदेवी, ह्रीदेवी, धृतिदेवी, कीर्तिदेवी, बुद्धिदेवी, लक्ष्मीदेवी, इलादेवी, सुरादेवी, रसदेवी और गन्ध देवी ।

[३] हे भदन्त ! श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त भगवान् महावीर ने प्रथम अध्ययन का क्या आशय बताया है ? हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नगर था । गुणशिलक चैत्य था । श्रेणिक राजा था । श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे । परिषद् निकली। उस काल और उस समय श्रीदेवी सौधर्मकल्प में श्री अवतंसक विमान की सुधर्मासभा में बहुपुत्रिका देवी के समान श्रीसिंहासन पर बैठी हुई थी उसने अवधिज्ञान से भगवान् को देखा। यावत् नृत्य-विधि को प्रदर्शित कर वापिस लौट गई । यहाँ इतना विशेष है कि श्रीदेवी ने अपनी नृत्यविधि में बालिकाओं की विकुर्वणा नहीं की थी । गौतमस्वामी ने भगवान् से पूर्वभव के विषय में पूछा । हे गौतम ! उस काल और उस समय में राजगृह नगर था । गुणशिलक चैत्य था, राजा जितशत्रु था । उस राजगृह नगर में धनाढ्य सुदर्शन नाम का गाथापति था । ऊसकी सुकोमल अंगोपांग, सुन्दर शरीर वाली आदि विशेषणों से विशिष्ट प्रिया नाम की भार्या थी । उस सुदर्शन गाथापति की पुत्री, प्रिया गाथापत्नी की आत्मजा भूता नाम की दारिका थी । जो वृद्धशरीर और वृद्धकुमारी, जीर्णशरीरवाली और जीर्णकुमारी, शिथिल नितम्ब और स्तनवाली तथा वरविहीन थी ।

उस काल और उस समय में पुरुषादानीय एवं नौ हाथ की अवगाहनावाले इत्यादि रूप से वर्णनीय अर्हत् पार्श्व प्रभु पधारे । परिषद् निकली । भूता दारिका इस संवाद को सुनकर हर्षित और संतुष्ट हुई और माता-पिता से आज्ञा मांगी–'हे मात-तात ! पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् यावत् शिष्यगण से परिवृत होकर बिराजमान हैं । आपकी आज्ञा-अनुमति लेकर मैं वंदना के लिए जाना चाहती हूँ । 'देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो ।' तत्पश्चात् भूता दारिका ने स्नान किया यावत् शरीर को अलंकृत करके दासियों के समूह के साथ अपने घर से निकली । उत्तम धार्मिक यान–पर आसीन हुई । इसके बाद वह भूता दारिका अपने स्वजन-परिवार को साथ लेकर राजगृह नगर के मध्य भाग में से निकली । पार्श्व प्रभु बिराजमान थे, वहाँ आई । तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा करके वंदना की यावत् पर्युपासना करने लगी । तदनन्तर पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्वप्रभु ने उस भूता बालिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और अति विशाल परिषद् को धर्मदेशना सुनाई । धर्मदेशना सुनकर और उसे हृदयंगम करके वह हृष्ट-तुष्ट हुई । फिर भूता दारिका ने वंदन-नमस्कार किया और कहा—'भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ—यावत् निर्ग्रन्थ-प्रवचन को अंगीकार करने के लिए तत्पर हूँ । हे भदन्त ! माता-पिता से आज्ञा प्राप्त कर लूँ, तब मैं यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूँ ।' अर्हत् पार्श्व प्रभु ने उत्तर दिया—'देवानुप्रिये ! इच्छानुसार करो ।'

इसके बाद वह भूता दारिका यावत् उसी धार्मिक श्रेष्ठ यान पर आरूढ हुई । जहाँ राजगृह नगर था, जहाँ अपना आवास स्थान—वहाँ आई । रथ से नीचे उतर कर माता-पिताके समीप आकर दोनों हाथ जोड़कर यावत् जमालि की तरह माता-पिता से आज्ञा मांगी । तदनन्तर सुदर्शन गाथापति ने विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन बनवाया और मित्रों, ज्ञातिजनों आदि को आमंत्रित किया यावत् भोजन करने के पश्चात् शुद्ध-स्वच्छ होकर अभिनिष्क्रमण कराने के लिए कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर उन्हें आज्ञा दी—शीघ्र ही भूता दारिका के लिए सहस्र पुरुषों द्वारा वहन की जाए ऐसी शिबिका लाओ । तत्पश्चात् उस सुदर्शन गाथापति ने स्नान की हुई और आभूषणों से विभूषित शरीरवाली भूता दारिका को पुरुषसहस्रवाहिनी शिबिका पर आरूढ किया यावत् गुणशिलक चैत्य था, वहाँ आया और छत्रादि तीर्थंकरातिशयों को देखकर पालकी को रोका और उससे भूता दारिका को उतारा ।

इसके बाद माता-पिता उस भूता दारिका को आगे करके जहाँ पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्वप्रभु बिराजमान थे, वहाँ आए और तीन वार आदक्षिण-प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया तथा कहा—यह भूता दारिका हमारी एकलौती पुत्री है । यह हमें इष्ट—है । यह संसार के भय से उद्विग्न होकर आप देवानुप्रिय के निकट मुंडित होकर यावत् प्रव्रजित होना चाहती है । हम इसे शिष्या-भिक्षा के रूप में आपको समर्पित करते हैं । पार्श्व प्रभु ने उत्तर दिया—'देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसा करो ।' तब उस भूता दारिका ने पार्श्व अर्हत् की अनुमति—सुनकर हर्षित हो, उत्तर-पूर्व दिशा में जाकर स्वयं आभरण—उतारे । यह वृत्तान्त देवानन्दा के समान कह लेना । अर्हत् प्रभु पार्श्व ने उसे प्रव्रजित किया और पुष्पचूलिका आर्या को शिष्या रूप में सौंप दिया । उसने पुष्पचूलिका आर्या से शिक्षा प्राप्त की यावत् वह गुप्त ब्रह्मचारिणी हो गई ।

कुछ काल के पश्चात् वह भूता आर्यिका शरीरबकुशिका हो गई । वह बारंबार हाथ, पैर, शिर, मुख, स्तनान्तर, कांख, गुह्यान्तर धोती और जहाँ कहीं भी खड़ी होती, सोती, बैठती अथवा स्वाध्याय करती उस-उस स्थान पर पहले पानी छिड़कती और उसके बाद खड़ी होती, सोती, बैठती या स्वाध्याय करती । तब पुष्पचूलिका आर्या ने समझाया—देवानुप्रिये ! हम ईर्यासमिति से समित यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी निर्ग्रन्थ श्रमणी हैं । इसलिए हमें शरीरबकुशिका होना नहीं कल्पता है, तुम इस स्थान—की आलोचना करो । इत्यादि शेष वर्णन सुभद्रा के समान जानना । यावत् एक दिन उपाश्रय से निकल कर वह बिल्कुल अकेले उपाश्रय में जाकर निवास करने लगी । तत्पश्चात् वह भूता आर्या निरंकुश, बिना रोकटोक के स्वच्छन्द-मति होकर बार-बार हाथ धोने लगी यावत् स्वाध्याय करने लगी।

तब वह भूता आर्या विविध प्रकार की चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त आदि तपश्चर्या करके और बहुत वर्षों तक श्रमणीपर्याय का पालन करके एवं अपनी अनुचित अयोग्य कायप्रवृत्ति की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आलोचना एवं प्रतिक्रमण किए बिना ही मरण करके सौधर्मकल्प के श्रीअवतंसक विमान की उपपातसभा में यावत् श्रीदेवी के रूप में उत्पन्न हुई, यावत् पांच–पर्याप्ति से पर्याप्त हुई । इस प्रकार हे गौतम ! श्रीदेवी ने यह दिव्य देवऋद्धि लब्ध और प्राप्त की है । वहाँ उसकी एक पल्योपम की आयु-स्थिति है । वह आयुष्य पूर्ण करके 'महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगी और सिद्धि प्राप्त करेगी ।'

इसी प्रकार शेष नौ अध्ययनों का भी वर्णन करना । मरण के पश्चात् अपने-अपने नाम के अनुरूप नामवाले विमानों में उनकी उत्पत्ति हुई । सभी का सौधर्मकल्प में उत्पाद हुआ । उनका पूर्वभव भूता के समान है । नगर, चैत्य, माता-पिता और अपने नाम आदि संग्रहणीगाथा के अनुसार हैं । सभी पार्श्व अर्हत् से प्रव्रजित हुईं और वे पुष्पचूला आर्या की शिष्याएँ हुईं । सभी शरीरबकुशिका हुईं और देवलोक के भव के अनन्तर च्यवन करके महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होंगी ।

२२ | पुष्पचूलिका-उपांग-११-हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

२३ वण्हिदशा

उपांगसूत्र-१२-हिन्दी अनुवाद

अध्ययन-१-निषध

[१] भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मोक्ष को प्राप्त हुए भगवान् महावीर ने चतुर्थ उपांग पुष्पचूलिका का यह अर्थ कहा है तो हे भदन्त ! पांचवें वण्हिदसा नामक उपांग-वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है ? हे जम्बू ! पांचवें वह्निदशा उपांग के बारह अध्ययन कहे हैं।

[२] निषध, मातलि, वह, वेहल, पगया, युक्ति, दशरथ, दृढरथ, महाधन्वा, सप्तधन्वा, दशधन्वा और शतधन्वा ।

[३] हे भदन्त ! श्रमण यावत् संप्राप्त भगवान् ने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ? हे जम्बू ! उस काल और उस समय में द्वारवती–नगरी थी । वह पूर्व-पश्चिम में बारह योजन लम्बी और उत्तर-दक्षिण में नौ योजन चौड़ी थी, उसका निर्माण स्वयं धनपति ने अपने मतिकौशल से किया था । स्वर्णनिर्मित श्रेष्ठ प्राकार और पंचरंगी मणियों के बने कंगूरों से वह शोभित थी । अलकापुरी–समान सुन्दर थी । उसके निवासीजन प्रमोदयुक्त एवं क्रीडा करने में तत्पर रहते थे । वह साक्षात् देवलोक सरीखी प्रतीत होती थी । प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप एवं प्रतिरूप थी । उस द्वारका नगरी के बाहर ईशान कोण में रैवतक पर्वत था । वह बहुत ऊँचा था और उसके शिखर गगनतल को स्पर्श करते थे । वह नाना प्रकार के वृक्षों, गुच्छों, गुल्मों, लताओं और वल्लियों से व्याप्त था । हंस, मृग, मयूर आदि पशु-पक्षियों के कलरव से गूंजता रहता था । उसमें अनके तट, मैदान, गुफाएँ, झरने, प्रपात, प्राग्भार और शिखर थे । वह पर्वत अप्सराओं के समूहों, देवों के समुदायों, चारणों और विद्याधरो के मिथुनों से व्याप्त रहता था । तीनों लोकों में बलशाली माने जानेवाले दसारवंशीय वीर पुरुषों द्वारा वहां नित्य नये-नये उत्सव मनाए जाते थे । वह पर्वत सौम्य, सुभग, देखने में प्रिय, सुरूप, प्रासादिक, दर्शनीय, मनोहर और अतीव मनोरम था ।

उस रैवतक पर्वत से न अधिक दूर और न अधिक समीप नन्दनवन उद्यान था । वह सर्व ऋतुओं संबन्धी पुष्पों और फलों से समृद्ध, रमणीय नन्दनवन के समान आनन्दप्रद; दर्शनीय, मनमोहक और मन को आकर्षित करने वाला था । उस नन्दनवन उद्यान के अति मध्य भाग में सुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन था । वह अति पुरातन था यावत् बहुत से लोग वहाँ आ-आकर सुरप्रिय यक्षायतन की अर्चना करते थे । वह सुरप्रिय यक्षायतन पूर्णभद्र चैत्य के समान चारों ओर से एक विशाल वनखंड से पूरी तरह घिरा हुआ था, यावत् उस वनखण्ड में एक पृथ्वीशिलापट्ट था । उस द्वारका नगरी में कृष्ण वासुदेव राजा थे । वे वहाँ समुद्रविजय आदि दस दसारों का, बलदेव आदि पांच महावीरों का, उग्रसेन आदि १६००० राजाओं का, प्रद्युम्न आदि साढे तीन करोड़ कुमारों का, शाम्ब आदि ६०००० दुर्दान्त योद्धाओं का, वीरसेन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि २१००० वीरों का, रुक्मिणी आदि १६००० रानियों का, अनंगसेना आदि अनेक सहस्र गणिकाओं का तथा अन्य बहुत से राजाओं, ईश्वरों यावत् सार्थवाहों वगैरह का उत्तर दिशा में वैताढ्य पर्वत पर्यन्त तथा अन्य तीन दिशाओं में लवण समुद्र पर्यन्त दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र का तथा द्वारका नगरी का अधिपतित्व, नेतृत्व, स्वामित्व, भट्टित्व, महत्तरकत्व आज्ञैश्वर्यत्व और सेनापतित्व करते हुए उनका पालन करते हुए, उन पर प्रशासन करते हुए विचरते थे ।

उसी द्वारका नगरी में बलदेव नामक राजा थे । वे महान् थे यावत् राज्य का प्रशासन करते हुए रहते थे । उन बलदेव राजा की रेवती नाम की पत्नी थी, जो सुकुमाल थी यावत् भोगोपभोग भोगती हुई विचरण करती थी । किसी समय रेवती देवी ने अपने शयनागार में सोते हुए यावत् स्वप्न में सिंह को देखा । स्वप्न देखकर वह जागृत हुई । उन्हें स्वप्न देखने का वृत्तान्त कहा । यथासमय बालक का जन्म हुआ । महाबल के समान उसने बोंहत्तर कलाओं का अध्ययन किया । एक ही दिन पचास उत्तम राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ इत्यादि । विशेषता यह है कि उस बालक का नाम निषध था यावत् वह आमोद-प्रमोद के साथ समय व्यतीत करने लगा ।

उस काल और उस समय में अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु पधारे । वे धर्म की आदि करने वाले थे, इत्यादि अर्हत् अरिष्टनेमि दस धनुष की अवगाहना वाले थे । परिषद् निकली । तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने यह संवाद सुनकर हर्षित एवं संतुष्ट होकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा—देवानुप्रियो ! शीघ्र ही सुधर्मासभा में जाकर सामुदानिक भेरी को बजाओ। तब वे कौटुम्बिक पुरुष यावत् सुधर्मा सभा में आए और सामुदानिक भेरी को जोर से बजाया। उस सामुदानिक भेरी को जोर-जोर से बजाए जाने पर समुद्रविजय आदि दसार, देवियाँ यावत् अनंगसेना आदि अनेक सहस्र गणिकाएँ तथा अन्य बहुत से राजा, ईश्वर यावत् सार्थवाह प्रभृति स्नान कर यावत् प्रायश्चित्त-मंगलविधान कर सर्व अलंकारों से विभूषित हो यथोचित अपने-अपने वैभव ऋद्धि सत्कार एवं अभ्युदय के साथ जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ उपस्थित हुए । उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर यावत् कृष्ण वासुदेव का जय-विजय शब्दों से अभिनन्दन किया । तदनन्तर कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को यह आज्ञा दी—देवानुप्रियो ! शीघ्र ही आभिषेक्य हस्तिरत्न को विभूषित करो और चतुरंगिणी सेना को सुसज्जित करो । तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव यावत् स्नान करके, वस्त्रालंकार से विभूषित होकर आरूढ़ हुए । आगे-आगे मांगलिक द्रव्य चले और कूणिक राजा के समान उत्तम श्रेष्ठ चामरों से विंजाते हुए समुद्रविजय आदि दस दसारों यावत् सार्थवाह आदि के साथ समस्त ऋद्धि यावत् वाद्यघोषों के साथ द्वारवती नगरी के मध्य भाग में से निकले इत्यादि वर्णन कूणिक के समान जानना ।

तब उस उत्तम प्रासाद पर रहे हुए निषधकुमार को उस जन-कोलाहल आदि को सुनकर कौतूहल हुआ और वह भी जमालि के समान ऋद्धि वैभव के साथ प्रासाद से निकला यावत् भगवान् के समवसरण में धर्म श्रवण कर और उसे हृदयंगम करके भगवान् को वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ इत्यादि । चित्त सारथी के समान यावत् उसने श्रावकधर्म अंगीकार किया और वापिस लौटा । उस काल और उस समय में अर्हत् अरिष्टनेमि के प्रधान शिष्य वरदत्त अनगार विचरण कर रहे थे । उन वरदत्त अनगार ने निषधकुमार को देखकर जिज्ञासा हुई यावत् अरिष्टनेमि भगवान् की पर्युपासना करते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए कहा—अहो भगवन् ! यह निषधकुमार इष्ट, इष्ट रूपवाला, कमनीय, कमनीय रूप से सम्पन्न एवं प्रिय, प्रिय रूपवाला, मनोज्ञ, मनोज्ञ रूपवाला, मणाम, मणाम रूपवाला, सौम्य, सौम्य रूपवाला, प्रियदर्शन और सुन्दर है ! भदन्त ! इस निषध कुमार को इस प्रकार की यह मानवीय ऋद्धि कैसे उपलब्ध हुई, कैसे प्राप्त हुई ? अर्हत् अरिष्टनेमि ने कहा—आयुष्मन् वरदत्त ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में रोहीतक नगर था । वह धन धान्य से समृद्ध था इत्यादि । वहाँ मेघवन उद्यान था और मणिदत्त यक्ष का यक्षायतन था । उस रोहीतक नगर का राजा महाबल था और रानी पद्मावती थी । किसी एक रात उस पद्मावती ने सुखपूर्वक शय्या पर सोते हुए स्वप्न में सिंह को देखा यावत् महाबल के समान पुत्रजन्म का वर्णन जानना । विशेषता यह कि पुत्र का नाम वीरांगद रखा यावत् बत्तीस श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ, यावत् वैभव के अनुरूप छहों ऋतुओं के योग्य इष्ट शब्द यावत् स्पर्श वाले पंच प्रकर के मानवीय कामभोगों का उपभोग करते हुए समय व्यतीत करने लगा ।

उस काल और उस समय जातिसम्पन्न इत्यादि विशेषणों वाले केशीश्रमण जैसे किन्तु बहुश्रुत के धनी एवं विशाल शिष्यपरिवार सहित सिद्धार्थ आचार्य रोहीतक नगर के मणिदत्त यक्ष के यक्षायतन में पधारे और साधुओं के योग्य अवग्रह लेकर विराजे । दर्शनार्थ परिषद् निकली । तब उत्तम प्रासाद में वास करनेवाले उस वीरांगदकुमार ने महान् जन कोलाहल इत्यादि सुना और जनसमूह देखा । वह भी जमालि की तरह दर्शनार्थ निकला । धर्मदेशना श्रवण करके उसने अनगार-दीक्षा अंगीकार करने का संकल्प किया और फिर जमालि की तरह ही प्रवज्या अंगीकार की और यावत् गुप्त ब्रह्मचारी अनगार हो गया । तत्पश्चात् उस वीरांगद अनगार ने सिद्धार्थआचार्य से सामायिक से यावत् ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, यावत् विविध प्रकार के तपःकर्म से आत्मा को परिशोधित करते हुए परिपूर्ण पैंतालीस वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर द्विमासिक संलेखना से आत्मा को शुद्ध करके १२० भक्तों-भोजनों का अनशन द्वारा छेदनकर, आलोचना प्रतिक्रमणपूर्वक समाधि सहित कालमास में मरण कर ब्रह्मलोककल्प के मनोरम विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ । वीरांगद देव की दस सागरोपम की स्थिति हुई ।

वह वीरांगद देव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय के अनन्तर उस देवलोक से च्यवन करके इसी द्वारवती नगरी में बलदेव राजा की रेवती देवी की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। उस समय रेवती देवी ने सुखद शय्या पर सोते हुए स्वप्न देखा, यथासमय बालक का जन्म हुआ, वह तरुणावस्था में आया, पाणिग्रहण हुआ यावत् उत्तम प्रासाद में भोग भोगते हुए यह निषधकुमार विचरण कर रहा है । इस प्रकार, हे वरदत्त ! इस निषध कुमार को यह उत्तम मनुष्य ऋद्धिलब्ध, प्राप्त और अधिगत हुई है । भगवन् ! क्या निषधकुमार आप देवानुप्रिय के पास यावत् प्रव्रजित होने के लिए समर्थ है ? हाँ वरदत्त ! समर्थ है । आपका कथन यथार्थ है, भदन्त ! इत्यादि कहकर वरदत्त अनगार अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। इसके बाद किसी एक समय अर्हत् अरिष्टनेमि द्वारवती नगरी से निकले यावत् बाह्य जनपदों में विचरण करने लगे । निषधकुमार जीवाजीव आदि तत्त्वो का ज्ञाता श्रमणोपासक हो गया।

किसी समय पौषधशाला में निषधकुमार आया । घास के संस्तारक—पर बैठकर पौषधव्रत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहण किया । तब उस निषधकुमार को मध्यरात्रि में धार्मिक चिन्तन करते हुए आंतरिक विचार उत्पन्न हुआ—'वे ग्राम, आकर यावत् सन्निवेश निवासी धन्य हैं जहाँ अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु विचरण करते हैं तथा वे राजा, ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि भी धन्य हैं जो अरिष्टनेमि प्रभु को वंदन-नमस्कार करते हैं, यदि अर्हत् अरिष्टनेमि पूर्वानुपूर्वी से विचरण करते हुए, यावत् यहाँ नन्दनवन में पधारें तो मैं उन अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु को वंदन-नमस्कार करूंगा यावत् पर्युपासना करुंगा । निषधकुमार के मनोगत विचार को जानकर अरिष्टनेमि अर्हत् १८००० श्रमणों के साथ ग्राम-ग्राम आदि में गमन करते हुए यावत् नन्दनवन में पधारे । परिषद् निकली । तब निषधकुमार भी अरिष्टनेमि अर्हत् के पदार्पण के वृत्तान्त को जान कर हर्षित एवं परितुष्ट होता हुआ चार घंटों वाले अश्वरथ पर आरूढ होकर जमालि की तरह निकला, यावत् माता-पिता से आज्ञा-अनुमति प्राप्त करके प्रव्रजित हुआ । यावत् गुप्त ब्रह्मचारी अनगार हो गया ।

तत्पश्चात् उस निषध अनगार ने अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और विविध प्रकार के यावत् विचित्र तपःकर्मों से आत्मा को भावित करते हुए परिपूर्ण नौ वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन किया। बयालीस भोजनों को अनशन द्वारा त्याग कर आलोचन और प्रतिक्रमण करके समाधिपूर्वक कालधर्म को प्राप्त हुआ । तब वरदत्त अनगार निषधकुमार को कालगत जानकर अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु के पास आए यावत् कहा—देवानुप्रिय ! प्रकृति से भद्र यावत् विनीत जो आपका शिष्य निषध अनगार था वह कालमास में काल को प्राप्त होकर कहाँ गया है ? अर्हत् अरिष्टनेमि ने कहा—'हे भदन्त ! प्रकृति से भद्र यावत् विनीत मेरा अन्तेवासी निषध अनगार मेरे तथारूप स्थविरों से सामायिक आदि से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन करके, यावत् मरण करके ऊर्ध्वलोक में, ज्योतिष्क देव विमानों, सौधर्म यावत् अच्युत देवलोकों का तथा गैवेयक विमानों का अतिक्रमण करके सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ है । वहां निषधदेव की स्थिति भी तेतीस सागरोपम की है ।'

'भदन्त !' वह निषधदेव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के पश्चात् वहाँ से च्यवन करके कहाँ जाएगा ? 'आयुष्मन् वरदत्त ! इसी जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र के उन्नाक नगर में विशुद्ध पितृवंश वाले राजकुल में पुत्र रूप से उत्पन्न होगा । बाल्यावस्था के पश्चात् युवावस्था को प्राप्त करके तथारूप स्थविरों से केवलबोधि-सम्यग्ज्ञान को प्राप्त कर अगार त्याग कर अनगार प्रव्रज्या को अंगीकार करेगा । ईर्यासमिति से सम्पन्न यावत् गुप्त ब्रह्मचारी अनगार होगा और बहुत से चतुर्थभक्त, आदि विचित्र तपसाधना द्वारा आत्मा को भावित करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमणावस्था का पालन करेगा । मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध करेगा, साठ भोजनों का अनशन द्वारा त्याग करेगा और जिस प्रयोजन के लिए नग्नभाव, मुंडभाव, स्नानत्याग यावत् दांत धोने का त्याग, छत्र का त्याग, उपानह का त्याग तथा केशलोंच, ब्रह्मचर्य ग्रहण करना, भिक्षार्थ पर-गृह में प्रवेश करना, यथापर्याप्त भोजन की प्राप्ति होना या न होना, तीव्र और सामान्य ग्रामकंटकों को सहन किया जाता है, उस साध्य की आराधना करेगा और आराधना करके चरम श्वासोच्छ्वास में सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा । 'इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् महावीर ने वृष्णिदशा के प्रथम अध्ययन का यह आशय प्रतिपादित किया है, ऐसा मैं कहता हूँ ।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्ययन-२-से-१२

[४] इसी प्रकार शेष ग्यारह अध्ययनों का आशय भी संग्रहणी-गाथा के अनुसार बिना किसी हीनाधिकता के जैसा का तैसा जान लेना ।

अध्ययन-१-से-१२का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण–

० निरयावलिका श्रुतस्कंध समाप्त हुआ, इसके साथ ही उपांगों का वर्णन भी पूर्ण हुआ । निरयावलिका उपांग में एक श्रुतस्कन्ध है । उसके पांच वर्ग हैं, जिनका पांच दिनों में निरूपण किया जाता है ।

२३	वण्हिदशा-उपांगसूत्र-१२-हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

२४ चतुःशरण

प्रकीर्णक-१-हिन्दी अनुवाद

[१] पाप व्यापार से निवर्तने के समान सामायिक नाम का पहला आवश्यक, चौबीस तीर्थंकर के गुण का उत्कीर्तन करने रूप चउविसत्थओ नामक दुसरा आवश्यक, गुणवंत गुरु की वंदना समान वंदनक नाम का तीसरा आवश्यक, लगे हुए अतिचार रूप दोष की निन्दा समान प्रतिक्रमण नाम का चौथा आवश्यक, भाव व्रण यानि आत्मा का लगे भारी दूषण को मिटानेवाला काउस्सग्ग नाम का पाँचवा आवश्यक और गुण को धारण करने समान पच्चक्खाण नाम का छट्ठा आवश्यक निश्चय से कहलाता है ।

[२] इस जिनशासन में सामायिक के द्वारा निश्चय से चारित्र की विशुद्धि की जाती है । वह सावद्ययोग का त्याग करने से और निरवद्ययोग का सेवन करने से होता है ।

[३] दर्शनाचार की विशुद्धि चउविसत्थओ (लोगस्स) द्वारा की जाती है; वह चौबीस जिन के अति अद्‌भूत गुण के कीर्तन समान स्तुति के द्वारा होती है ।

[४] ज्ञानादिक गुण, उससे युक्त गुरु महाराज को विधिवत् वंदन करने रूप तीसरे वंदन नाम के आवश्यक द्वारा ज्ञानादिक गुण की शुद्धि की जाती है ।

[५] ज्ञानादिक की (मूल और उत्तरगुण की) आशातना की निंदा आदि की विधिपूर्वक शुद्धि करना प्रतिक्रमण कहलाता है ।

[६] चारित्रादिक के जिन अतिचार की प्रतिक्रमण के द्वारा शुद्धि न हुई हो उनकी शुद्धि गड्-गुमड़ के ओसड़ समान और क्रमिक आए हुए पाँचवे काउस्सग्ग नाम के आवश्यक द्वारा होती है ।

[७] गुण धारण करने समान पच्चक्खाण नाम के छट्ठे आवश्यक द्वारा तप के अतिचार की शुद्धि होती है और वीर्याचार के अतिचार की शुद्धि सर्व आवश्यक द्वारा की जाती है ।

[८] (१) गज, (२) वृषभ, (३) सिंह, (४) अभिषेक (लक्ष्मी), (५) माला, (६) चन्द्रमा, (७) सूर्य, (८) धजा, (९) कलश, (१०) पद्मसरोवर । (११) सागर, (१२) देवगति में से आए हुए तीर्थंकर की माता विमान और (नर्क में से आए हुए तीर्थंकर की माता) भवन को देखती है, (१३) रत्न का ढेर और (१४) अग्नि, इन चौदह सपने सभी तीर्थंकर की माता वह (तीर्थंकर) गर्भ में आए तब देखती है ।

[९] देवेन्द्रों, चक्रवर्तिओ और मुनीश्वर ने वंदन किए हुए महावीरस्वामी को वन्दन करके मोक्ष दिलानेवाले चउसरण नाम का अध्ययन मैं कहुंगा।

[१०] चार शरण स्वीकारना, पाप कार्य की निंदा करनी और सुकृत की अनुमोदना करना यह तीन अधिकार मोक्ष का कारण है । इसलिए हंमेशा करने लायक है ।

[११] अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली भगवंत ने बताया हुआ सुख देनेवाला धर्म, यह चार शरण, चार गति को नष्ट करनेवाले है और उसे भागशाली पुरुष पा शकता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१२] अब तीर्थंकर की भक्ति के समूह से उछलती रोमराजी समान बख्तर से शोभायमान वो आत्मा काफी हर्ष और स्नेह सहित मस्तक झुकाकर दो हाथ जुड़कर इस मुताबिक कहता है–

[१३] राग और द्वेष समान शत्रु का घात करनेवाले, आठ कर्म आदि शत्रु को हणनेवाले और विषय कषाय आदि वैरी को हणनेवाले अरिहंत भगवान मुझे शरण हो ।

[१४] राज्य लक्ष्मी का त्याग करके, दुष्कर तप और चारित्र का सेवन करके केवल ज्ञान रूपी लक्ष्मी के योग्य अरहंत मुझे शरण रूप हो ।

[१५] स्तुति और वंदन के योग्य, इन्द्र और चक्रवर्ती की पूजा के योग्य और शाश्वत सुख पाने के लिए योग्य अरहंत मुजे शरणरूप हो ।

[१६] दुसरो के मन के भाव को जाननेवाले, योगेश्वर और महेन्द्र को ध्यान करने योग्य और फिर धर्मकथी अरहंत भगवान मुजे शरणरूप हो ।

[१७] सर्व जीव की दया पालने योग्य, सत्य वचन के योग्य, ब्रह्मचर्य पालने के योग्य अरहंत मुजे शरणरूप हो ।

[१८] समवसरण में बैठकर चौतीस अतिशय का सेवन करते हुए धर्मकथा कहनेवाले अरिहंत मुजे शरणरूप हो ।

[१९] एक वचन द्वारा जीव के कई संदेह को एक ही काल में छेदनेवाले और तीनों जगत को उपदेश देनेवाले अरिहंत मुजे शरणरूप हो ।

[२०] वचनामृत द्वारा जगत को शान्ति देनेवाले, गुण में स्थापित करनेवाले, जीव लोक का उद्धार करनेवाले अरिहंत भगवान मुजे शरणरूप हो ।

[२१] अति अद्‌भूत गुणवाले, अपने यश समान चन्द्र द्वारा दिशाओ के अन्त को शोभायमान करनेवाले, शाश्वत अनादि अनन्त अरिहंत को शरणरूप से मैंने अंगीकार किया है ।

[२२] बुढ़ापा और मृत्यु का सर्वथा त्याग करनेवाले, दु:ख से त्रस्त समस्त जीव को शरणभूत और तीन जगत के लोक को सुख देनेवाले अरिहंत को मेरा नमस्कार हो ।

[२३] अरिहंत के शरण से होनेवाली कर्म समान मेल की शुद्धि के द्वारा जिसे अति शुद्ध स्वरुप प्रकट हुआ है वैसे सिद्ध परमात्मा के लिए जिन्हें आदर है ऐसा आत्मा झुके हुए मस्तक से विकस्वर कमल की दांड़ी समान अंजलि जोड़कर हर्ष सहित (सिद्ध का शरण) कहते है ।

[२४] आठ कर्म के क्षय से सिद्ध होनेवाले, स्वाभाविक ज्ञान दर्शन की समृद्धिवाले और फिर जिन्हें सर्व अर्थ की लब्धि सिद्ध हुई है वैसे सिद्ध मुजे शरणरूप हो ।

[२५] तीन भुवन के मस्तक में रहे और परमपद यानि मोक्ष पानेवाले, अचिंत्य बलवाले, मंगलकारी सिद्ध पद में रहे और अनन्त सुख देनेवाले प्रशस्त सिद्ध मुजे शरण हो ।

[२६] राग-द्वेष समान शत्रु को जड़ से उखाड देनेवाले, अमूढ़ लक्ष्यवाले (सदा उपयोगवंत) सयोगी केवलीओ को प्रत्यक्ष दिखनेवाले, स्वाभाविक सुख का अनुभव करनेवाले उत्कृष्ट मोक्षवाले सिद्ध (मुजे) शरणरूप हो ।

[२७] रागादिक शत्रु का तिरस्कार करनेवाले, समग्र ध्यान समान अग्नि द्वारा भवरूपी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीज (कर्म) को जला देनेवाले, योगेश्वर के आश्रय के योग्य और सभी जीव को स्मरण करने लायक सिद्ध मुजे शरणरूप हो ।

[२८] परम आनन्द पानेवाले, गुण के सागर समान, भव समान कंद का सर्वथा नाश करनेवाले, केवल ज्ञान के प्रकाश द्वारा सूर्य और चन्द्र को फीका कर देनेवाले और फिर राग द्वेष आदि द्वन्द्व को नाश करनेवाले सिद्ध मुजे शरणरूप हो ।

[२९] परम ब्रह्म (उत्कृष्ट ज्ञान) को पानेवाले, मोक्ष समान दुर्लभ लाभ को पानेवाले, अनेक प्रकार के समारम्भ से मुक्त, तीन भुवन समान घर को धारण करने में स्तम्भ समान, आरम्भ रहित सिद्ध मुजे शरणरूप हो ।

[३०] सिद्ध के शरण द्वारा नय (ज्ञान) और ब्रह्म के कारणभूत साधु के गुण में प्रकट होनेवाले अनुरागवाला भव्य प्राणी अपने अति प्रशस्त मस्तक को पृथ्वी पर रखकर इस तरह कहते है–

[३१] जीवलोक (छ जीवनिकाय) के बन्धु, कुगति समान समुद्र के पार को पानेवाले, महा भाग्यशाली और ज्ञानादिक द्वारा मोक्ष सुख को साधनेवाले साधु मुजे शरण हो ।

[३२] केवलीओ, परमावधिज्ञानवाले, विपुलमतिमनःपर्यवज्ञानी श्रुतधर और जिनमत के आचार्य और उपाध्याय ये सब साधु मुझे शरणरूप हो ।

[३३] चौदहपूर्वी, दसपूर्वी और नौपूर्वी और फिर जो बारह अंग धारण करनेवाले, ग्यारह अंग धारण करनेवाले, जिनकल्पी, यथालंदी और परिहारविशुद्धि चारित्रवाले साधु ।

[३४] क्षीराश्रवलब्धिवाले, मध्वाश्रवलब्धिवाले, संभिन्नश्रोतलब्धिवाले, कोष्ठबुद्धिवाले, चारणमुनि, वैक्रियलब्धिवाले और पदानुसारीलब्धिवाले साधु मुझे शरणरूप हो ।

[३५] वैर-विरोध को त्याग करनेवाले, हंमेशा अद्रोह वृत्तिवाले अति शान्त मुख की शोभावाले, गुण के समूह का बहुमान करनेवाले और मोह का घात करनेवाले साधु मुझे शरणरूप हो ।

[३६] स्नेह समान बँन्धन को तोड़ देनेवाले, निर्विकारी स्थान में रहनेवाले, विकाररहित सुख की इच्छा करनेवाले, सत्पुरुष के मन को आनन्द देनेवाले और आत्मा में रमण करनेवाले मुनि मुझे शरणरूप हो ।

[३७] विषय, कषाय को दूर करनेवाले, घर और स्त्री के संग के सुख का स्वाद का त्याग करनेवाले, हर्ष और शोक रहित और प्रमाद रहित साधु मुझे शरणरूप हो ।

[३८] हिंसादिक दोष रहित, करुणा भाववाले, स्वयंभुरमण समुद्र समान विशाल बुद्धिवाले, जरा और मृत्यु रहित मोक्ष मार्ग में जानेवाले और अति पुण्यशाली साधु मुझे शरण रूप हो ।

[३९] काम की विड़म्बना से मुक्त, पापमल रहित, चोरी का त्याग करनेवाले, पाप रुप के कारणरूप मैथुन रहित और साधु के गुणरूप रत्न की कान्तिवाले मुनि मुझे शरणरूप हो ।

[४०] जिसके लिए साधुपन में अच्छी तरह से रहे हुए आचार्यादिक है उसके लिए वे भी साधु कहलाए जाते है । साधु कहते हुए उन्हें भी साधुपद में ग्रहण किए है; उसके लिए वे साधु मुझे शरण रूप हो ।

[४१] साधु का शरण स्वीकार करके, अति हर्ष से होनेवाले रोमांच के विस्तार द्वारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शोभायमान शरीरवाला (वह जीव) इस जिनकथित धर्म के शरण को अंगीकार करने के लिए इस तरह बोलते है–

[४२] अति उत्कृष्ट पुण्य द्वारा पाया हुआ, कुछ भाग्यशाली पुरुषों ने भी शायद न पाया हो, केवली भगवान ने बताया हुआ वो धर्म मैं शरण के रुप में अंगीकार करता हूँ ।

[४३] जो धर्म पाकर या बिना पाए भी जिसने मानव और देवता के सुख पाए, लेकिन मोक्षसुख तो धर्म पानेवाले को ही मिलता है, वह धर्म मुझे शरण हो ।

[४४] मलीन कर्म का नाश करनेवाले, जन्म को पवित्र बनानेवाले, अधर्म को दूर करनेवाले इत्यादिक परिणाम में सुन्दर जिन धर्म मुझे शरण रूप हो ।

[४५] तीन काल में भी नष्ट न होनेवाले; जन्म, जरा, मरण और सेंकड़ों व्याधि का शमन करनेवाले अमृत की तरह बहुत लोगो को इष्ट ऐसे जिन मत का मैं शरण अंगीकार करता हूँ ।

[४६] काम के उन्माद को अच्छी तरह से शमानेवाले, देखे हुए और न देखे हुए पदार्थ का जिसमें विरोध नहीं कीया है वैसे और मोक्ष के सुख समान फल को देने में अमोघ यानि सफल धर्म को मैं शरण रूप में अंगीकार करता हूँ ।

[४७] नरकगति के गमन को रोकनेवाले, गुण के समूहवाले अन्य वादी द्वारा अक्षोभ्य और काम सुभट को हणनेवाले धर्म को शरण रूप से मैं अंगीकार करता हूँ ।

[४८] देदीप्यमान, उत्तम वर्ण की सुन्दर रचना समान अलंकार द्वारा महत्ता के कारण-भूत से महामूल्यवाले, निधान समान अज्ञान रूप दारिद्र को हणनेवाले, जिनेश्वरो द्वारा उपदिष्ट ऐसे धर्म को मैं स्वीकार करता हूँ ।

[४९] चार शरण अंगीकार करने से, ईकट्ठे होनेवाले सुकृत से विकस्वर होनेवाली रोमराजी युक्त शरीरवाले, किए गए पाप की निंदा से अशुभ कर्म के क्षय की इच्छा रखनेवाला जीव (इस प्रकार) कहता है–

[५०] जिनशासन में निषेध किए हुए इस भव में और अन्य भव में किए मिथ्यात्व के प्रवर्तन समान जो अधिकरण (पापक्रिया), वे दुष्ट पाप की मैं गर्हा करता हूँ यानि गुरु की साक्षी से उसकी निन्दा करता हूँ ।

[५१] मिथ्यात्व समान अंधेरे में अंध हुए, मैं अज्ञान से अरिहंतादिक के बारे में जो अवर्णवाद, विशेष किया हो उस पाप को मैं गर्हता हूँ-निन्दा करता हूँ ।

[५२] श्रुतधर्म, संघ और साधु में शत्रुपन में जो पाप का मैंने आचरण किया है वे और दुसरे पाप स्थानक में जो पाप लगा हो वे पापों की अब मैं गर्हा करता हूँ ।

[५३] दुसरे भी मैत्री करुणादिक के विषय समान जीव में परितापनादिक दु:ख पैदा किया हो उस पाप की मैं अब निन्दा करता हूँ ।

[५४] मन, वचन और काया द्वारा करने करवाने और अनुमोदन करते हुए जो आचरण किया गया, जो धर्म के विरुद्ध और अशुद्ध ऐसे सर्व पाप उसे मैं निन्दता हूँ ।

[५५] अब दुष्कृत की निन्दा से कडे पाप कर्म का नाश करनेवाले और सुकृत के राग से विकस्वर होनेवाली पवित्र रोमराजीवाले वह जीव प्रकटरूप से ऐसा कहता है–

[५६] अरिहंतो का जो अरिहंतपन, सिद्धो का जो सिद्धपन, आचार्य के जो आचार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपाध्याय का जो में उपाध्यायपन । तथा–

[५७] साधु का जो उत्तम चरित्र, श्रावक लोग का देशविरतिपन और समकितदृष्टि का समकित, उन सबका मैं अनुमोदन करता हूँ ।

[५८] या फिर वीतराग के वचन के अनुसार जो सर्व सुकृत तीन काल में किया हो वो तीन प्रकार से (मन, वचन और काया से) हम अनुमोदन करते है ।

[५९] हंमेशा शुभ परीणामवाले जीव चार शरण की प्राप्ति आदि का आचरण करता हुआ पुन्य प्रकृति को बाँधता है और (अशुभ) बाँधी हुई प्रकृति को शुभ अनुबंधवाली करते है ।

[६०] और फिर वो शुभ परिणामवाला जीव जो (शुभ) प्रकृति मंद रसवाली बाँधी हो उसे ही तीव्र रसवाली करता है, और अशुभ (मंद रसवाली) प्रकृत्ति को अनुबंध रहित करते है, और तीव्र रसवाली को मंद रसवाली करते है ।

[६१] उसके लिए पंड़ित पुरुषो को संक्लेश में (रोग आदि वजह में) यह आराधन हंमेशा करना चाहिए, असंक्लेशपन में भी तीनों काल में अच्छी तरह से करना चाहिए, यह आराधन सुकृत के उपार्जन समान फल का निमित्त है ।

[६२] जो (दान, शियल, तप और भाव समान) चार अंगवाला जिनधर्म न किया, जिसने (अरिहंत आदि) चार तरीके का शरण भी न किया, और फिर जिसने चार गति समान संसार का छेद न किया हो, तो वाकई में मानव जन्म हार गया है ।

[६३] हे जीव ! इस तरह प्रमादसमान बड़े शत्रु को जीतनेवाला, कल्याणरूप और मोक्ष के सुख का अवंध्य कारणरूप इस अध्ययन का तीन संध्या में ध्यान करो ।

२४	चतुःशरण-प्रकीर्णक-१-हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

२५ आतुरप्रत्याख्यान

प्रकीर्णक-२-हिन्दी अनुवाद

[१] छ काय की हिंसा का एक हिस्सा जो त्रस की हिंसा, उसका एक देश जो मारने की बुद्धि से निरपराधी जीवकी निरपेक्षपन से हिंसा, इसलिए और झूठ बोलना आदि से निवृत्त होनेवाला जो समकित दृष्टि जीव मृत्यु पाता है तो उसे जिन शासन में (पाँच मृत्यु में से) बाल पंड़ित मरण कहा है ।

[२] जिन शासन में सर्व विरति और देशविरति में दो प्रकार का यति धर्म है, उसमें देशविरति को पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत मिलने से श्रावक के बारह व्रत बताए है । उस सभी व्रत से या फिर एक दो आदि व्रत समान उसके देश आराधन से जीव देशविरति होते है ।

[३] प्राणी का वध, जूठ बोलना, अदत्तादान और परस्त्री का नियम करने से तथा परिमाण रहित इच्छा का नियम करने से पाँच अणुव्रत होते है ।

[४] जो दिग्विरमण व्रत, अनर्थदंड़ से निवर्तन रूप अनर्थदंड विरमण और देशावगासिक ये तीनो मिलकर तीन गुणव्रत कहलाते है ।

[५] भोग-उपभोग का परिमाण, सामायिक, अतिथि संविभाग और पौषध ये सब (मिलकर) चार शिक्षाव्रत कहलाते है ।

[६] शीघ्रतया मृत्यु होने से, जीवितव्य की आशा न तूटने से, या फिर स्वजन से (संलेखना करने की) परवानगी न मिलने से, आखरी संलेखना किए बिना–

[७] शल्यरहित होकर; पाप आलोचकर अपने घरमें निश्चय से संथारे पर आरूढ होकर यदि देशविरति प्राप्त करके मर जाए तो उसे बाल पंड़ित मरण कहते है ।

[८] जो विधि भक्तपरिज्ञा में विस्तार से बताया गया है वो यकीनन बाल पंड़ित के लिए यथायोग्य जानना चाहिए ।

[९] कल्पोपन्न वैमानिक (बार) देवलोक के लिए निश्चय करके उसकी उत्पत्ति होती है और वो उत्कृष्ट से निश्चय करके सौंतवे भव तक सिद्ध होता है ।

[१०] जिन शासन के लिए यह बाल पंड़ित मरण कहा गया है, अब मैं पंड़ितमरण संक्षेप में कहता हूँ ।

[११] हे भगवंत ! मैं अनशन करने की इच्छा रखता हूँ । पाप व्यवहार को प्रतिक्रमता हूँ । भूतकाल के (पाप को) भावि में होनेवाले (पाप) को, वर्तमान के पाप को, किए हुए पाप को, करवाए हुए पाप को और अनुमोदन किए गए पाप का प्रतिक्रमण करता हूँ, मिथ्यात्व का, अविरति परिणाम, कषाय का और पाप व्यापार का प्रतिक्रमण करता हूँ ।

मिथ्यादर्शन के परिणाम के बारे में, इस लोक के बारे में, परलोक के बारे में, सचित्त के बारे में, अचित्त के बारे में, पाँच इन्द्रिय के विषय के बारे में, अज्ञान अच्छा है ऐसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिंतवना किये हुए...झूठे आचार का चिंतवन किये हुए, बौद्धादिक कुदर्शन अच्छा ऐसा चिंतवन किये हुए, क्रोध, मान, माया और लोभ, राग, द्वेष और मोह के लिए चिंतवन किये हुए, (पुद्गल पदार्थ और यश आदि की) इच्छा के लिए चिंतन हुए, मिथ्यादृष्टिपन का चिंतवन किये हुए, मूर्च्छा के लिए चिंतवे हुए, संशय से, या अन्यमत की वांछा से चिंतवन किये हुए, घर के लिए चिंतवे हुए, दुसरों की चीजे पाने की वांछा से चिंतवे वन किये हुए, भूख और प्यास से चिंतवे हुए, सामान्य मार्ग में या विषम मार्ग में चलने के बाद भी चिंतवे हुए, निंद्रा में चिंतवे हुए, नियाणा चिंतवे हुए, स्नेहवश से, विकार के या चित्त को डहोणाण से चिंतवे हुए, क्लेश, मामूली युद्ध के लिए चिंतवे हुए या महायुद्ध के लिए चिंतवन किये हुए, संग चिंतवे हुए, संग्रह चिंतवे हुए, राजसभा में न्याय के लिए चिंतवे हुए, खरीद करने के लिए और बेचने के लिए चिंतवे हुए, अनर्थ दंड चिंतवे हुए, उपयोग या अनुपयोग से चिंतवे हुए, खुद पर कर्जा हो उसके लिए चिंतवे हुए, वैर-तर्क, वितर्क, हिंसा, हास्य के लिए, अतिहास्य के लिए, अति रोष करके या कठोर पाप-कर्म चिंतवन किये हुए, भय चिंतवे हुए, रुप चिंतवे हुए, अपनी प्रशंसा दुसरो की निंदा, या दुसरो की गर्हा चिंतवे हुए, धनादिक परिग्रह पाने को चिंतवे हुए, आरम्भ चिंतवे हुए, विषय के तीव्र अभिलाष से संरभ चिंतवे हुए, पाप कार्य अनुमोदन समान चिंतवे हुए, जीवहिंसा के साधन को पाने को चिंतवे हुए, असमाधि में मरना चिंतवे हुए, गहरे कर्म के उदय द्वारा चिंतवे हुए, ऋषि के अभिमान से या सुख के अभिमान से चिंतवे हुए, अविरति अच्छी ऐसा चिंतवे हुए, संसार सुख के अभिलाष सहित मरण चिंतवन किये हुए...

दिवस सम्बन्धी या रात सम्बन्धी सोते या जागते किसी भी अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार या अनाचार लगा हो उसका मुजे मिच्छामि दुक्कड़म् हो ।

[१२] जिनो में वृषभ समान वर्द्धमान स्वामी को और फिर गणधर सहित बाकी के सभी तीर्थंकर को मैं नमस्कार करता हूँ ।

[१३] इस प्रकार सें मैं सभी प्राणीओ के आरम्भ, अलिक (असत्य) वचन, सर्व अदत्तादान (चोरी), मैथुन और परिग्रह का पच्चखाण करता हूँ ।

[१४] मुझे सभी जीव के साथ मैत्रीभाव है । किसी के साथ मुझे वैर नहीं है, वांच्छा का त्याग करके मै समाधि रखता हूँ ।

[१५] सभी प्रकार की आहार विधि का, संज्ञाओ का, गारवो का, कषायो का और सभी ममता का त्याग करता हूँ; सब को खमाता हूँ ।

[१६] यदि मेरे जीवित का उपक्रम (आयु का नाश) इस अवसर में हो, तो यह पच्चक्खाण और विस्तारवाली आराधना मुझे हो ।

[१७] सभी दुःख क्षय हुए है जिनके ऐसे सिद्ध को और अरिहंत को नमस्कार हो, जिनेश्वरोने कहे हुए तत्त्व मैं सद्दहता हूँ, पापकर्म को पच्चक्खाण करता हूँ ।

[१८] जिनके पाप क्षय हुए है, ऐसे सिद्ध को और महा ऋषि को नमस्कार हो, जिस तरह से केवलीओ ने बताया है वैसा संथारा मैं अंगीकार करता हूँ ।

[१९] जो कुछ भी झूठ का आचरण किया हो उन सबको मन, वचन काया से वोसिराता हूँ । सर्व आगार रहित (ज्ञान, श्रद्धा और क्रिया रूप) तीन प्रकार की सामायिक मैं करता हूँ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२०] बाहरी अभ्यंतर उपधि और भोजन सहित शरीर आदि उन सबको भाव को मैं मन, वचन, काया से वोसिराता (त्याग करता) हूँ ।

[२१] इस प्रकार से सभी प्राणी के आरम्भ को, अखिल (झूठ) वचन को, सर्व अदत्तादान-चोरी को, मैथुन और परिग्रह का पच्चक्खाण करता हूँ ।

[२२] मेरी सभी जीव से मैत्री है । किसी के साथ मुझे वैर नहीं है । वांच्छना का त्याग करके मैं समाधि रखता हूँ ।

[२३] राग को, बन्धन को, द्वेष और हर्ष को, रांकपन को, चपलपन को, भय को, शोक को, रति को, अरति को मैं वोसिराता (त्याग करता) हूँ ।

[२४] ममता रहितपन में तत्पर होनेवाला मैं ममता का त्याग करता हूँ, और फिर मुझे आत्मा आलम्बन भूत है, दुसरी सभी चीज को वोसिराता हूँ ।

[२५] मुझे ज्ञानमें आत्मा, दर्शनमें आत्मा, चारित्रमें आत्मा, पच्चक्खाणमें आत्मा और संजम योग में भी आत्मा (आलम्बनरूप) हो ।

[२६] जीव अकेला जाता है, यकीनन अकेला उत्पन्न होता है, अकेले को ही मरण प्राप्त होता है, और कर्मरहित होने के बावजूद अकेला ही सिद्ध होता है ।

[२७] ज्ञान, दर्शन सहित मेरी आत्मा एक शाश्वत है, शेष सभी बाह्य पदार्थ मेरे लिए केवल सम्बन्ध मात्र स्वरुपवाले है ।

[२८] जिसकी जड़ रिश्ता है ऐसी दुःख की परम्परा इस जीव ने पाई, उसके लिए सभी संयोग संबंधको मन, वचन, काया से मैं त्याग करता हूँ ।

[२९] प्रयत्न (प्रमाद) से जो मूल गुण और उत्तरगुण की मैंने आराधना नहीं की है उन सबकी मैं निन्दा करता हूँ । भावि की विराधना का प्रतिक्रमण करता हूँ ।

[३०] सात भय, आठ मद, चार संज्ञा, तीन गारव, तेत्तीस आशातना, राग, द्वेष को तथा–

[३१] असंयम, अज्ञान, मिथ्यात्व और जीव में एवं अजीव में सर्व ममत्त्व की मैं निन्दा करता हूँ और गर्हा करता हूँ ।

[३२] निन्दा करने के योग्य की मैं निन्दा करता हूँ और जो मेरे लिए गर्हा करने के योग्य है उन (पाप की) गर्हा करता हूँ । सभी अभ्यंतर और बाहरी उपाधि का मैं त्याग करता हूँ ।

[३३] जिस तरह वडील के सामने बोलनेवाला कार्य या अकार्य को सरलता से कहता है उसी तरह माया मृषावाद को छोडकर वह पाप को आलोए ।

[३४] ज्ञान, दर्शन, तप और चारित्र उन चारों में अचलायमान, धीर, आगम में कुशल, बताए हुए गुप्त रहस्य को अन्य को नहीं कहनेवाला (ऐसे गुरु के पास से आलोयणा लेनी चाहिए ।)

[३५] हे भगवन् ! राग से, द्वेष से, अकृतज्ञत्व से और प्रमाद से मैने जो कुछ भी तुम्हारा अहित किया हो वो मैं मन, वचन, काया से खमाता हूँ ।

[३६] मरण तीन प्रकार का होता है–बाल मरण, बाल-पंड़ित मरण और पंड़ित मरण जिससे सीर्फ केवली मृत्यु पाते है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३७] और फिर जो आठ मदवाले, नष्ट हुई हो वैसी बुद्धिवाले और वक्रपन को (माया को) धारण करनेवाले असमाधि से मरते है उन्हें निश्चयसे आराधक नहीं कहा है ।

[३८] मरण विराधे हुए (असमाधि मरण द्वारा) देवता में दुर्गति होती है । सम्यक्त्व पाना दुर्लभ है और फिर आनेवाले काल में अनन्त संसार होता है ।

[३९] देव की दुर्गति कौन-सी ? अबोधि क्या है ? किस लिए (बार-बार) मरण होता है ? किस वजह से जीव अनन्त काल तक घूमता रहता है ?

[४०] मरण विराधे हुए कंदर्प (मश्करा) देव, किल्बिषिक देव, चाकर देव, असुर देव और संमोहा (स्थान भ्रष्ट) देव यह पांच दुर्गति होती है ।

[४१] इस संसारमें–मिथ्यादर्शन रक्त, नियाणा–सहित, कृष्ण लेश्यावाले जो जीव मरण पाते है– उनको बोधि बीज दुर्लभ होता है ।

[४२] इस संसार में सम्यक् दर्शन में रक्त, नियाणा रहित, शुक्ल लेश्यावाले जो जीव मरण पाते है उन जीव को बोधि बीज (समकित) सुलभ होता है ।

[४३] जो गुरु के शत्रु रूप, बहुत मोहवाले, दूषण सहित, कुशील होते है और असमाधि में मरण पाते है वो अनन्त संसारी होते है ।

[४४] जिन वचन में रागवाले, जो गुरु का वचन भाव से स्वीकार करते है, दूषण रहित है और संक्लेशरहित होते है वे अल्प संसारखाले होते है । जो जिन वचन को नहीं जानते वो बेचारे (आत्मा)–

[४५] बाल मरण और कईं बार बिना ईच्छा से मरण पाते है ।

[४६] शस्त्रग्रहण (शस्त्र से आत्महत्या करना), विषभक्षण, जल जाना, पानी में डूब मरना, अनाचार और अधिक उपकरण का सेवन करनेवाले जन्म, मरण की परम्परा बढ़ानेवाले होते है ।

[४७] उर्ध्व, अधो, तिर्च्छा (लोक) में जीव ने बालमरण किए । लेकिन अब दर्शन ज्ञान सहित मैं पंड़ित मरण से मरुँगा ।

[४८] उद्वेग करनेवाले जन्म, मरण और नरक में भुगती हुई वेदना, उनको याद करते हुए अब तुम पंड़ित मरण से मरो ।

[४९] यदि दुःख उत्पन्न हो तो स्वभाव द्वारा उसकी विशेष उत्पत्ति देखना (संसार में भुगते हुए विशेष दुःख को याद करना) संसार में भ्रमण करते हुए मैने क्या-क्या दुःख नहीं पाए (ऐसा सोचना चाहिए ।)

[५०] और फिर मैंने संसार चक्र में सर्वे पुद्गल कईं बार खाए ओर परिणमाए, तो भी मैं तृप्त नहीं हुआ ।

[५१] तृण और लकड़े से जैसे अग्नि तृप्त नहीं होता और हजारो नदीयों से जैसे लवण समुद्र तृप्त नहीं होता, वैसे काम भोग द्वारा यह जीव तृप्ति नहीं पाता ।

[५२] आहार के लिए (तंदुलीया) मत्स्य साँतवी नरकभूमि में जाते है । इसलिए सचित आहार करने की मन से भी इच्छा या प्रार्थना करता उचित नहीं है ।

[५३] जिसने पहेले (अनशन का) अभ्यास किया है, और नियाणा रहित हुआ हुं ऐसा मैं मति और बुद्धि से सोचकर फिर कषाय को रोकनेवाला मैं शीघ्र ही मरण अंगीकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता हूँ।

[५४] दीर्धकाल के अभ्यास बिना अकाल में (अनसन करनेवाले) वो पुरुष मरण के अवसर पर पहले किए हुए कर्म के योग से पीछे भ्रष्ट होते है । (दुर्गति में जाते है) ।

[५५] उसके लिए राधावेध (को साधनेवाले पुरुष) की तरह लक्ष्यपूर्वक उद्यमवाले पुरुष मोक्षमार्ग की जिस तरह साधना करते है ऊसी तरह अपने आत्मा को ज्ञानादि गुण के सहित करना चाहिए ।

[५६] वह (मरण के) अवसर पर बाहरी (पौद्गलिक) व्यापार रहित, अभ्यन्तर (आत्म स्वरूप) ध्यान में मग्न, सावधान मनवाला होकर शरीर का त्याग करता है ।

[५७] राग-द्वेष का वध करके, आठ कर्म के समूह को नष्ट करके, जन्म और मरण समान अरहट्ट को भेदकर तुं संसार से अलग हो जाएगा ।

[५८] इस प्रकार से त्रस और स्थावर का कल्याण करनेवाला, मोक्ष मार्ग का पार दिलानेवाला, जिनेश्वरने बताया हुए सर्व उपदेश का मन, वचन, काया से मैं श्रद्धा करता हूँ।

[५९] उस (मरण के) अवसर पर अति समर्थ चित्तवाले से भी बारह अंग समान सर्व श्रुतस्कंध का चिंतवन करना मुमकीन नहीं है ।

[६०] (इसलिए) वीतराग के मार्ग में जो एक भी पद से मानव बार-बार वैराग पाए उस पद सहित (उसी पद का चिंतवन करते हुए) तुम्हे मृत्यु को प्राप्त करना उचित है ।

[६१] उसके लिए मरण के अवसर में आराधना के उपयोगवाला जो पुरुष एक श्लोक की भी चिंतवना करता रहे तो वह आराधक होता है ।

[६२] आराधना के उपयोगवाला, सुविहित (अच्छे आचारवाला) आत्मा अच्छी तरह से (समाधि भाव से) काल करके उत्कृष्ट से तीन भव में मोक्ष पाता है ।

[६३] प्रथम तो मैं साधु हूँ । दुसरा सभी चीज में संयमवाला हूँ (इसलिए) सबको वोसिराता हूँ, यह संक्षेप में कहा है ।

[६४] जिनेश्वर भगवान के आगम में कहा गया अमृत समान और पहले नहीं पानेवाला (आत्मतत्त्व) मैंने पाया है । और शुभ गति का मार्ग ग्रहण किया है इसलिए मैं मरण से नहीं डरता ।

[६५] धीर पुरुष को भी मरना पड़ता है, कायर पुरुष को भी यकीनन मरना पड़ता है, दोनों को भी निश्चय से मरना है, तो धीरपन से मरना ही यकीनन सुन्दर है ।

[६६] शीलवान को भी मरना पड़ता है, शील रहित पुरुष को भी यकीनन मरना पड़ता है, दोनों को भी निश्चय करके मरना है, तो शील सहित मरना ही निश्चय से प्रशंसनीय है ।

[६७] जो कोई भी चारित्रसहित ज्ञान में दर्शन में, और सम्यक्त्व में, सावधान होकर प्रयत्न करेगा तो विशेष करके संसार से मुक्त हो जाएगा ।

[६८] लम्बे समय तक ब्रह्मचर्य का सेवन करनेवाला, शेष कर्म का नाश करके और सर्व क्लेश का नाश करके क्रमिक शुद्ध होकर सिद्धि में जाता है ।

[६९] कषाय रहित, दान्त (पाँच इन्द्रिय और मन का दमन करनेवाला) शूरवीर, उद्यमवंत और संसार से भय भ्रांत हुए आत्मा का पच्चक्खाण अच्छा होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[७०] धीर और मोह रहित ज्ञानवाला जिस मरण के अवसर पर यह पच्चक्खाण करेगा तो वह उत्तम स्थानक को प्राप्त करेगा ।

[७१] धीर, जरा और मरण को जाननेवाला, ज्ञानदर्शन से युक्त लोक में उद्यातको करनेवाले ऐसे वीरप्रभु सर्व दुःख का क्षय बतानेवाले हो ।

२५	आतुरप्रत्याख्यान-प्रकीर्णक-२ हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

२६ महाप्रत्याख्यान

प्रकीर्णक-३-हिन्दी अनुवाद

[१] अब मैं उत्कृष्ट गतिवाले तीर्थंकर को, सर्व जिन को, सिद्ध को और संयत (साधु) को नमस्कार करता हूँ ।

[२] सर्व दुःख रहित ऐसे सिद्ध को और अरिहंत को नमस्कार हो, जिनेश्वर भगवान ने प्ररूपित्त किया हुए तत्त्वो सभी की मैं श्रद्धा करता हुं और पाप के योग का पच्चक्खाण करता हूँ ।

[३] जो कुछ भी बूरा आचरण मुजसे हुआ हो उन सबकी मैं सच्चे भाव से निन्दा करता हूँ, और मन, वचन और काया इन तीन प्रकार से सर्व आगार रहित सामायिक अब मैं करता हूँ।

[४] बाह्य उपाधि (वस्त्रादिक), अभ्यंतर उपधि (क्रोधादिक), शरीर आदि, भोजन सहित सभी को मन, वचन, काया से त्याग करता हूँ ।

[५] राग का वंध, द्वेप, हर्ष, दीनता, आकुलपन, भय, शोक, रति और मद को मैं वोसिराता हूँ ।

[६] रोप द्वारा, कदाग्रह द्वारा, अकृतघ्नता द्वारा और असत् ध्यान द्वारा जो कुछ भी मैं अविनय पन से बोला हूँ तो त्रिविधे त्रिविधे मैं उसको खमाता हूँ ।

[७] सर्व जीव को खमाता हूँ । सर्व जीव मुझे क्षमा करो, आश्रव को वोसिराते हुए मैं समाधि (शुभ) ध्यान को मैं आरंभ करता हूँ ।

[८] जो निन्दने को योग्य हो उसे मैं निन्दता हूँ, जो गुरु की साक्षी से निन्दने को योग्य हो उसकी मैं गर्हा करता हूँ और जिनेश्वर ने जो निषेध किया है उस सर्व की मैं आलोचना करता हूँ ।

[९] उपधी, शरीर, चतुर्विध आहार और सर्व द्रव्य के बारे में ममता इन सभी को जानकर मैं त्याग करता हूँ ।

[१०] निर्ममत्व के लिए उद्यमवंत हुआ मैं ममता का समस्त तरह से त्याग करता हूँ। एक मुझे आत्मा का ही आलम्बन है; शेष सभी को मैं वोसिराता (त्याग करता) हुं ।

[११] मेरा जो ज्ञान है वो मेरा आत्मा है, आत्मा ही मेरा दर्शन और चारित्र है, आत्मा ही पच्चक्खाण है । आत्मा ही मेरा संयम और आत्मा ही मेरा योग है ।

[१२] मूलगुण और उत्तरगुण की मैंने प्रमाद से आराधन न कि हो तो उन सब अनाराधक भाव की अब मैं निन्दा करता हूँ और आगामी काल के लिए होनेवाले उन अनाराधन भाव से मैं वापस मुँड़ता हूँ ।

[१३] मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं है, और मैं भी किसीका नही हूँ ऐसे अदीन चित्तवाला आत्मा को शिक्षीत करें ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१४] जीव अकेला उत्पन्न होता है और अकेला ही नष्ट होता है । अकेले को ही मृत्यु को प्राप्त करता हैं और अकेला ही जीव कर्मरज रहित होकर मोक्ष पाता है (मुक्त होता है ।)।

[१५] अकेला ही कर्म करता है, उसके फल को भी अकेले ही भुगतान करता है, अकेला ही उत्पन्न होता है और अकेला ही मरता है और परलोक में उत्पन्न भी अकेला ही होता है ।

[१६] ज्ञान, दर्शन, लक्षणवंत अकेला ही मेरा आत्मा शाश्वत है; बाकी के मेरे बाह्य भाव सर्व संयोगरुप है ।

[१७] जिसकी जड़ संयोग है ऐसे दुःख की परम्परा जीव पाता है उन के लिए सर्व संयोग सम्बन्ध को त्रिविधे वोसिराता (त्याग करता) हूँ ।

[१८] असंयम, अज्ञान, मिथ्यात्व और जीव एवं अजीव के लिए जो ममत्व है उसकी मैं निन्दा करता हूँ और गुरु की साक्षी से गर्हा करता हूँ ।

[१९] मिथ्यात्व को अच्छे तरीके से पहचानता हूँ । इसलिए सर्व असत्य वचन को और सर्वथासे ममता का मैं त्याग करता हूँ और सर्व को खमाता हूँ ।

[२०] जो-जो स्थान पर मेरे किए गए अपराध को जिनेश्वर भगवान जानते है, सभी तरह से उपस्थित हुआ मैं उस अपराध की आलोचना करता हूँ ।

[२१] उत्पन्न यानि वर्तमानकाल की, अनुत्पन्न यानि भावि की माया, दुसरी बार न करुँ उस तरह से आलोचन, निंदन और गर्हा द्वारा उनका मैं त्याग करता हूँ ।

[२२] जैसे बोलता हुआ बच्चा कार्य और अकार्य सबकुछ सरलता से कह दे वैसे माया और मद द्वारा रहित पुरुष सर्व पाप की आलोचना करता है ।

[२३] जिस तरह घी द्वारा सिंचन किया गया अग्नि जलता है वैसे सरल होनेवाले मानव को आलोचना शुद्ध होती है और शुद्ध होनेवाले में धर्म स्थिर रहता है और फिर परम निर्वाण यानि मोक्ष पाता है ।

[२४] शल्य रहित मानव सिद्धि नहीं पा शकता, उसी तरह पापरूप मैल खरनेवाले (वीतराग) के शासन में कहा है; इसलिए सर्व शल्य उद्धरण करके क्लेश रहित हुआ ऐसा जीव सिद्धि पाता है।

[२५] बहुत कुछ भी भाव शल्य गुरु के पास आलोचना करके निःशल्य होकर संथारा (अणशण) का आदर करे तो वो आराधक होता है ।

[२६] वो थोड़ा भी भाव शल्य गुरु के पास से आलोचन न करे तो अत्यंत ज्ञानवंत होने के बावजूद भी आराधक नहीं होता ।

[२७] बूरी तरह इस्तेमाल किया गया शस्त्र, विष, दुष्प्रयुक्त वैताल दुष्प्रयुक्त यंत्र और प्रमाद से कोपित साँप वैसा काम नहीं करता । (जैसा काम भाव शल्य से युक्त होनेवाला करता है ।)

[२८] जिस वजह से अंत काल में नहीं उद्धरेल भाव शल्य दुर्लभ बोधिपन और अनन्त संसारीपन करता है–

[२९] उस वजह से गारव रहित जीव पुनर्भव समान लत्ता की जड़ समान एक जैसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादर्शन शल्य, माया शल्य और नियाण शल्य का उद्धरण करना चाहिए ।

[३०] जिस तरह बोज का वहन करनेवाला मानव बोज उतारकर हलका होता है वैसे पाप करनेवाला मानव आलोचना और निन्दा करके बहोत हलका होता है ।

[३१] मार्ग को जाननेवाला गुरु उसका जो प्रायश्चित कहता है उस अनवस्था के (अयोग्य) अवसर के डरवाले मानव को वैसे ही अनुसरण करना चाहिए–

[३२] उसके लिए जो कुछ भी अकार्य किया हो उन सबको छिपाए बिना दस दोष रहित जैसे हुआ हो वैसे ही कहना चाहिए ।

[३३] सभी जीव का आरम्भ, सर्व असत्यवचन, सर्व अदत्तादान, सर्व मैथुन और सर्व परिग्रह का मैं त्याग करता हूँ ।

[३४] सर्व अशन और पानादिक चतुर्विधआहार और जो (बाह्य पात्रादि) उपधि और कषायादि अभ्यंतर उपधि उन सबको त्रिविधे वोसिराता हूँ ।

[३५] जंगल में, दुष्काल में या बड़ी बीमारी होने से जो व्रत का पालन किया है और न तूटा हो वह शुद्धव्रत पालन समजना चाहिए ।

[३६] राग करके, द्वेष करके या फिर परिणाम से जो–पच्चक्खाण दुषित न किया हो वह सचमुच भाव विशुद्ध पच्चक्खाण जानना चाहिए ।

[३७] इस अनन्त संसार के लिए नई नई माँ का दूध जीव ने पीया है वो सागर के पानी से भी ज्यादा होता है ।

[३८] उन-उन जाति में बार-बार मैंने बहुत रुदन किया उस नेत्र के आँसू का पानी भी समुद्र के पानी से ज्यादा होता है ऐसा समझना ।

[३९] ऐसा कोई भी बाल के अग्र भाग जितना प्रदेश नहीं है कि जहाँ संसार में भ्रमण करनेवाला जीव पैदा नहीं हुआ और मरा नहीं ।

[४०] लोक के लिए वाकई में चोराशी लाख जीवयोनि है । उसमें से हर एक योनि में जीव अनन्त बार उत्पन्न हुआ है ।

[४१] उर्ध्वलोक के लिए, अधोलोक के लिए और तिर्यग्लोक के लिए मैने कई बाल मरण प्राप्त किये है इस लिए अब उन मरण को याद करते हुए मैं अब पंड़ित मरण मरूँगा।

[४२] मेरी माता, मेरा पिता, मेरा भाई, मेरी बहन, मेरा पुत्र, मेरी पुत्री, उन सबको याद करते हुए (ममत्व छोडके) में पंड़ित मौत मरूँगा ।

[४३] संसार में रहे कई योनि में निवास करनेवाले माता, पिता और बन्धु द्वारा पूरा लोक भरा है, वो तेरा त्राण और शरण नहीं है ।

[४४] जीव अकेले कर्म करता है, और अकेले ही बूरे किए हुए पाप कर्म के फल को भुगतता है, तथा अकेले ही इस जरा मरणवाले चतुर्गतिसमान गहन वन में भ्रमण करता है ।

[४५] नरक में जन्म और मरण ये दोनो ही उद्वेग करवाने वाले है, तथा नरक में कई वेदनाएँ है;

[४६] तिर्यंच की गति में भी उद्वेग को करनेवाले जन्म और मरण है, या फिर कई वेदनाए होती है;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४७] मानव की गति में जन्म और मरण है या फिर वेदनाएँ है;

[४८] देवलोक में जन्म, मरण उद्वेग करनेवाले है और देवलोक से च्यवन होता है इन सबको याद करते हुए मैं अब पंड़ित मरण मरूँगा ।

[४९] एक पंड़ित मरण कई सेंकड़ो जन्म को (मरण को) छेदता है । आराधक आत्मा को उस मरण से मरना चाहिए कि जिस मरण से मरनेवाला शुभ मरणवाला होता है (भवभ्रमण घटानेवाला होता है ।) ।

[५०] जो जिनेश्वर भगवान् ने कहा हुआ शुभ मरण-यानि कि पंड़ित मरण है, उसे शुद्ध और शल्य रहित ऐसा मैं पादपोपगम अनशन लेके कब मृत्यु को पाऊँगा ?

[५१] सर्व भव संसार के लिए परिणाम के अवसर द्वारा चार प्रकार के पुद्गल मैंने बाँधे है और आठ प्रकार के (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय इत्यादि) कर्म का समुदाय मैने बाँधा है ।

[५२] संसारचक्र के लिए उन सर्व पुद्गल मैने कई बार आहाररूप में लेकर परीणमाए तो भी तृप्त न हुआ ।

[५३] आहार के निमित्त से मैं सर्व नरक लोक के लिए कई बार उत्पन्न हुआ हूँ और सर्व म्लेच्छ जाति में उत्पन्न हुआ हूँ ।

[५४] आहार के निमित्त से मत्स्य भयानक नरक में जाते है । इसलिए सचित्त आहार मन द्वारा भी प्रार्थने के योग्य नही है ।

[५५] तृण और काष्ट द्वारा जैसे अग्नि या हजारो नदियाँ द्वारा जैसे लवण समुद्र तृप्त नहीं होता वैसे यह जीव कामभोग द्वारा तृप्त नहीं होता ।

[५६] तृण और काष्ट द्वारा जैसे अग्नि या हजारो नदियों द्वारा जैसे लवणसमुद्र तृप्त नहीं होता वैसे यह जीव द्रव्य द्वारा तृप्त नहीं होता ।

[५७] तृण और काष्ट द्वारा जैसे अग्नि या हजारो नदियों द्वारा जैसे लवणसमुद्र तृप्त नहीं होता वैसे जीव भोजन विधि द्वारा तृप्त नहीं होता ।

[५८] वड़वानल जैसे और दुःख से पार पाएँ ऐसे अपरिमित गंध माल्य से यह जीव तृप्त नहीं हो शकता ।

[५९] अविदग्ध (मूरख) ऐसा यह जीव अतीत काल के लिए और अनागत काल के लिए शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श करके तृप्त नहीं हुआ और होगा भी नहीं ।

[६०] देवकुरु, उत्तरकुरु में उत्पन्न होनेवाले कल्पवृक्ष से मिले सुख से और मानव विद्याधर और देव के लिए उत्पन्न हुए सुख द्वारा यह जीव तृप्त न हो शका ।

[६१] खाने के द्वारा या पीने के द्वारा यह आत्मा बचाया नहीं जा शकता; यदि दुर्गति में न जाए तो निश्चय से बचाया हुआ कहा जाता है ।

[६२] देवेन्द्र और चक्रवर्तिपन के राज्य एवम् उत्तम भोग अनन्तीबार पाए लेकिन उनके द्वारा मैं तृप्त न हो शका ।

[६३] दूध, दहीं और ईक्षु के रस समान स्वादिष्ट बड़े समुद्र में भी कईबार मैं उत्पन्न हुआ तो भी शीतलजल द्वारा मेरी तृष्णा न छिप शकी ।

[६४] मन, वचन और काया इन तीनों प्रकार से कामभोग के विषय सुख के अतुल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुख को मैंने कईंबार अनुभव किया तो भी सुख की तृष्णा का शमन नहीं हुआ ।

[६५] जो किसी प्रार्थना मैंने राग-द्वेष को वश होकर प्रतिबंध से करके कई प्रकार से की हो उसकी मैं निन्दा करता हूँ और गुरु की साक्षी में गर्हता हूँ ।

[६६] मोहजाल को तोडके, आठ कर्म की श्रृंखला को छेद कर और जन्म-मरण समान अरहट्ट को तोडके तूं संसार से मुक्त हो जाएगा ।

[६७] पाँच महाव्रत को त्रिविधे त्रिविधे आरोप के मन, वचन और काय गुप्तिवाला सावध होकर मरण को आदरे ।

[६८] क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेम और द्वेष का त्याग करके अप्रमत्त ऐसा मैं एवं;

[६९] कलह, अभ्याख्यान, चाडी और पर की निन्दा का त्याग करता हुआ और तीन गुप्तिवाला मैं एवं;–

[७०] पाँच इन्द्रिय को संवर कर और काम के पाँच (शब्द आदि) गुण को रूंधकर देव गुरु की अतिअशातना से ड़रनेवाला मैं महाव्रत की रक्षा करता हुं ।

[७१] कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कोपातलेश्या और आर्त्त रौद्र ध्यान को वर्जन करता हुआ गुप्तिवाला और उसके सहित;–

[७२] तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या एवं शुकलध्यान को आदरते हुए और उसके सहित पंचमहाव्रत की रक्षा करता हूं ।

[७३] मन द्वारा, मन सत्यपन से, वचन सत्यपन से और कर्तव्य सत्यपन से उन तीनों प्रकार से सत्य रूप से प्रवर्तनेवाला और जाननेवाला मैं पंच महाव्रत की रक्षा करता हूँ ।

[७४] सात भय से रहित, चार कषाय को रोककर, आठ भद के स्थानक रहित होनेवाला मैं पंचमहाव्रत की रक्षा करता हूँ ।

[७५] तीन गुप्ति, पाँच समिती पच्चीस भावनाएँ, ज्ञान और दर्शन को आदरता हुआ और उनके सहित मैं पंचमहाव्रत की रक्षा करता हूँ ।

[७६] इसी प्रकार से तीन दंड़ से विरक्त, त्रिकरण शुद्ध, तीन शल्य से रहित और त्रिविधे अप्रमत ऐसा मैं पंचमहाव्रत की रक्षा करता हूँ ।

[७७] सर्व संग को सम्यक् तरीके से जानता हूँ । माया शल्य, नियाण शल्य और मिथ्यात्व शल्य रूप तीन शल्य को त्रिविधे त्याग करके, तीन गुप्तियाँ और पाँच समिती मुझे रक्षण और शरण रूप हो ।

[७८] जिस तरह समुद्र का चक्रवाल क्षोभ होता है तब सागर के लिए रत्न से भरे जहाज को कृत करण और बुद्धिमान जहाज चालक रक्षा करते है–

[७९] वैसे गुण समान रत्न द्वारा भरा, परिषह समान कल्लोल द्वारा क्षोभायमान होने को शुरु हुआ तप समान जहाज को उपदेश समान आलम्बनवाला धीर पुरुष आराधन करते है (पार पहुंचाता है ।) ।

[८०] यदि इस प्रकार से आत्मा के लिए व्रत का भार वहन करनेवाला, शरीर के लिए निरपेक्ष और पहाड की गुफा में रहे हुए वो सत्पुरुष अपने अर्थ की साधना करते है ।

[८१] यदि पहाड की गुफा, पहाड़ की कराड़ और विषम स्थानक में रहे, धीरज द्वारा अति सज्जित रहे वो सुपुरुष अपने अर्थ को साधते है ।–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[८२] तो किस लिए साधु को सहाय देनेवाले ऐसे अन्योअन्य संग्रह के बल द्वारा यानि वैयावच्च करने के द्वारा परलोक के अर्थ से अपने अर्थ की साधना नहीं कर शकते क्या ? (साधना कर शकते है ।)

[८३] अल्प, मधुर और कान को अच्छा लगनेवाला, इस वीतराग का वचन सुनते हुए जीव साधु के बीच अपना अर्थ साधने के लिए वाकई समर्थ हो शकते है ।

[८४] धीर पुरुषने प्ररुपित किया हुआ, सत्पुरुष ने सेवन किया हुआ और अति मुश्किल ऐसे अपने अर्थ को जो शिलातल उपर रहा हुआ जो पुरुष साधना करता है वह धन्य है ।

[८५] पहले जिसने अपने आत्माका निग्रह नहीं किया हो, उसको इन्द्रियां पीडा देती है, परीषह न सहने के कारण मृत्युकाल में सुख का त्याग करते हुए भयभीत होते है ।

[८६] पहले जिसने संयम जोग का पालन न किया हो, मरणकाल के लिए समाधि की ईच्छा रखता हो और विषय में लीन रहा हुआ आत्मा परिसह सहन करने को समर्थ नहीं हो शकता ।

[८७] पहले जिसने संयम योग का पालन किया हो, मरण के काल में समाधि की इच्छा रखता हो और विषय सुख से आत्मा को विरमीत किया हो वो पुरुष परिसह को सहन करने को समर्थ हो शकता है ।

[८८] पहले संयम योग की आराधना की हो, उसे नियाणा रहित बुद्धि से सोचकर, कषाय त्याग करके, सज्ज होकर मरण को अंगीकार करता है ।

[८९] जिन जीव ने सम्यक् प्रकार से तप किया हो वह जीव अपने क्लिष्ट पाप कर्मो को जलाने को समर्थ हो शकते है ।

[९०] एक पंड़ित मरण का आदर करके वो असंभ्रांत सुपुरुष जल्द से अनन्त मरण का अन्त करेंगे ।

[९१] एक पंडित मरण ! और उसके कैसे आलम्बन कहे है ? उन सबको जानकर आचार्य दुसरे किसकी प्रशंसा करेगा ?

[९२] पादपोपगम अणशण, ध्यान और भावनाएँ आलम्बन है, वह जानकर (आचार्य) पंड़ित मरण की प्रशंसा करते है ।

[९३] इन्द्रिय की सुख शाता में आकुल, विषम परिसह को सहने के लिए परवश हुआ हो और जिसने संयम का पालन नहीं किया ऐसा क्लिब (कायर) मानव आराधना के समय घबरा जाता है ।

[९४] लज्जा द्वारा, गारव द्वारा और बहु श्रुत के मद द्वारा जो लोग अपना पाप गुरु को नहीं कहते वो आराधक नहीं बनते ।

[९५] दुष्कर क्रिया करनेवाला हो, मार्ग को पहचाने, कीर्ति पाए और अपने पाप छिपाए बिना उसकी निन्दा करे इसके लिए आराधना श्रेय-कल्याणकारक कही है ।

[९६] तृण का संथारा या प्राशुक भूमि उसकी (विशुद्धि की) वजह नहीं है लेकिन जो मनुष्य की आत्मा विशुद्ध हो वही सच्चा संथारा कहा जाता है ।

[९७] जिन वचन का अनुसरण करनेवाली शुभध्यान और शुभयोग में लीन ऐसी मेरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मति हो; जैसे वह देश काल में पंड़ित हुई आत्मा देह त्याग करता है ।

[९८] जिनवर वचन से रहित और क्रिया के लिए आलसी किसी मुनि जब प्रमादी बन जाए तब इन्द्रिय समान चोर (उसके) तप संयम को नष्ट करते है ।

[९९] जिन वचन का अनुसरण करनेवाली मतिवाला पुरुष जिस समय संवर में लीन हो कर उस समय वंटोल के सहित अग्नि के समान मूल और डाली सहित कर्म को जला ने में समर्थ होते है ।

[१००] जैसे वायु सहित अग्नि हरे वनखंड के पेड़ को जला देती है, वैसे पुरुषाकार (उद्यम) सहित मानव ज्ञान द्वारा कर्म का क्षय करते है ।

[१०१] अज्ञानी कई करोड़ साल में जो कर्मक्षय करते है वे कर्म को तीन गुप्ति में गुप्त ज्ञानी पुरुष एक श्वास में क्षय कर देता है ।

[१०२] वाकई में मरण नीकट आने के बावजूद बारह प्रकार का श्रुतस्कंध (द्वादशांगी) सब तरह से दृढ एवं समर्थ ऐसे चित्तवाले मानव से भी चिन्तवन नहीं किया जा शकता है।

[१०३] वीतराग के शासन में एक भी पद के लिए जो संवेग किया जाता है वो उसका ज्ञान है, जिससे वैराग्य पा शकते है ।

[१०४] वीतराग के शासन में एक भी पद के लिए जो संवेग किया जाता है, उससे वह मानव मोहजाल का अध्यात्मयोग द्वारा छेदन करते है ।

[१०५] वीतराग के शासन में एक भी पद के लिए जो संवेग करता है, वह पुरुष हमेशा वैराग पाता है । इसलिए समाधि मरण से उसे मरना चाहिए ।

[१०६] जिससे वैराग हो वो, वह कार्य सर्व आदर के साथ करना चाहिए । जिससे संवेगी जीव संसार से मुक्त होता है और असंवेगी जीव को अनन्त संसार का परिभ्रमण करना पडता है ।

[१०७] जिनेश्वर भगवानने प्रकाशित किया यह धर्म मैं सम्यक् तरीके से त्रिविधे श्रद्धा करता हूँ । (क्योंकि) यह त्रस और स्थावर जीव के हित में है और मोक्ष रूपी नगर का सीधा रास्ता है।

[१०८] मैं श्रमण हूँ, सर्व अर्थ का संयमी हूँ, जिनेश्वर भगवान ने जो जो निषेध किया है वो सर्व एवं–

[१०९] उपधि, शरीर और चतुर्विध आहार को मन, वचन और काया द्वारा मैं भाव से वोसिराता (त्याग करता) हूँ ।

[११०] मन द्वारा जो चिन्तवन के लायक नहीं है वह सर्व मैं त्रिविध से वोसिराता (त्याग करता) हूँ ।

[१११] असंयम से विरमना, उपधि का विवेक करण, (त्याग करना) उपशम, अयोग्य व्यापार से विरमना, क्षमा, निर्लोभता और विवेक–

[११२] इस पच्चक्खाण को बीमारी से पीड़ित मानव आपत्ति में भाव द्वारा अंगीकार करता हुआ और बोलते हुए समाधि पाता है ।

[११३] उस निमित्त के लिए यदि किसी मानव पच्चक्खाण करके काल करे तो यह एक पद द्वारा भी पच्चक्खाण करवाना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[११४] मुझे अरिहंत, सिद्ध, साधु, श्रुत और धर्म मंगलरूप है, उसका शरण पाया हुआ मैं सावद्य (पापकर्म) को वोसिराता हूँ ।

[११५-११९] अरिहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय और साधु मेरे लिए मंगलरूप है और अरिहंतादि पांचो मेरे देव स्वरूप है, उन अरिहंतादि पांचो की स्तुति करके मैं मेरे अपने पाप को वोसिराता हूँ।

[१२०] सिद्धो का, अरिहंतो का और केवली का भाव से सहारा लेकर या फिर मध्य के किसी भी एक पद द्वारा आराधक हो शकते है ।

[१२१] और फिर जिन्हें वेदना उत्पन्न हुइ है ऐसे साधु हृदय से कुछ चिन्तवन करे और कुछ आलम्बन करके वो मुनि दुःख को सह ले ।

[१२२] वेदना पैदा हो तब यह कैसी वेदना ? ऐसा मानकर सहन करे और कुछ आलम्बन करके उस दुःख के बारे में सोचे ।

[१२३] प्रमाद में रहनेवाले मैंने नरक में उत्कृष्ट पीड़ा अनन्त बार पाई है ।

[१२४] अबोधिपन पाकर मैंने यह काम किया और यह पुराना कर्म मैंने अनन्तीबार पाया है ।

[१२५] उस दुःख के विपाक द्वारा वहाँ वहाँ वेदना पाते हुए फिर भी अचिंत्य जीव कभी पहेले अजीव नहीं हुआ है ।

[१२६] अप्रतिबद्ध विहार, विद्वान मनुष्य द्वारा प्रशंसा प्राप्त और महापुरुष ने सेवन किया हुआ वैसा जिनभाषित जानकर अप्रतिबद्ध मरण अंगीकार कर ले ।

[१२७] जैसे अंतिम काल में अंतिम तीर्थंकर भगवान ने उदार उपदेश दिया वैसे मैं निश्चय मार्गवाला अप्रतिबद्ध मरण अंगीकार करता हूँ ।

[१२८] बत्तीस भेद से योग संग्रह के बल द्वारा संयम व्यापार स्थिर करके और बारह भेद से तप समान स्नेहपान करके–

[१२९] संसार रूपी रंग भूमिका में धीरज समान बल और उद्यम समान बख्तर को पहनकर सज्ज हुआ तू मोह समान मल का वध करके आराधना समान जय पताका का हरण कर ले (प्राप्त कर)।

[१३०] और फिर संथारा में रहे साधु पुराने कर्म का क्षय करते है । नए कर्म को नहीं बाँधते और कर्म व्याकुलता समान वेलड़ी का छेदन करते है ।

[१३१] आराधना के लिए सावधान ऐसा सुविहित साधु सम्यक् प्रकार से काल करके उत्कृष्ट तीन भव का अतिक्रमण करके निर्वाण को (मोक्ष) प्राप्त करे ।

[१३२] उत्तम पुरुष ने कहा हुआ, सत्पुरुष ने सेवन किया हुआ, बहोत कठीन अनसन करके निर्विघ्नरूप से जय पताका प्राप्त करे ।

[१३३] हे धीर ! जिस तरह वो देश काल के लिए सुभट जयपताका का हरण करता है ऊसी तरह से सूत्रार्थ का अनुसरण करते हुए और संतोष रूपी निश्चल सन्नाह पहनकर सज्ज होनेवाला तुम जयपताका को हर ले ।

[१३४] चार कषाय, तीन गारव, पाँच इन्द्रिय का समूह और परिसह समान फौज का वध करके आराधना समान जय पताका को हर ले ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१३५] हे आत्मा ! यदि तूं अपार संसार समान महोदधि के पार होने की इच्छा को रखता हो तो मैं दीर्धकाल तक जिन्दा रहूँ या शीघ्र मर जाऊँ ऐसा निश्चय करके कुछ भी मत सोचना।

[१३६] यदि सर्व पापकर्म को वाकई में निस्तार के लिए ईच्छता है तो जिन वचन, ज्ञान, दर्शन, चारित्र और भाव के लिए उद्यमवंत होने के लिए जागृत हो जा ।

[१३७] दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप ऐसे आराधना चार भेद से होती है, और फिर वो आराधना उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य ऐसे तीन भेद से होती है ।

[१३८] पंड़ित पुरुष चार भेदवाली उत्कृष्ट आराधना का आराधन करके कर्म रज रहित होकर ऊसी भव में सिद्धि प्राप्त करता है-तथा–

[१३९] चार भेद युक्त जघन्य आराधना का आराधन करके सात या आठ भव संसार में भ्रमण करके मुक्ति पाता है ।

[१४०] मुझे सर्व जीव के लिए समता है, मुझे किसी के साथ वैर नहीं है मैं सर्व जीवो को क्षमा करता हुं हूँ और सर्व जीवो से क्षमा चाहता हुं ।

[१४१] धीर को भी मरना है और कायर को भी यकीनन मरना है दोनों को मरना तो है फिर धीररूप से मरना ज्यादा उत्तम है ।

[१४२] सुविहित साधु यह पच्चक्खाण सम्यक् प्रकार से पालन करके वैमानिक देव होता है या–फिर सिद्धि प्राप्त करता है ।

२६	महाप्रत्याख्यान-प्रकीर्णक-३-हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

२७ भक्तपरिज्ञा

प्रकीर्णक-४-हिन्दी अनुवाद पूर्ण

[१] महाअतिशयवंत और महाप्रभाववाले मुनि महावीरस्वामी की वंदना करके स्वयं को और पर को स्मरण करने के हेतु से मैं भक्त परिज्ञा कहता हूँ ।

[२] संसार रूपी गहन वन में घूमते हुए पीड़ित जीव जिसके सहारे मोक्ष सुख पाते है उस कल्पवृक्ष के उद्यान समान सुख को देनेवाला जैन शासन जयवंत विद्यमान है ।

[३] दुर्लभ मनुष्यत्व और जिनेश्वर भगवान का वचन पाकर सत्पुरुष ने शाश्वत सुख के एक रसीक ऐसे और ज्ञान को वशवर्ती होना चाहिए ।

[४] जो सुख आज होना है वो कल याद करने योग्य होनेवाला है, उसके लिए पंड़ित पुरुष उपसर्ग रहित मोक्ष के सुख की वांछा करता है ।

[५] पंड़ित पुरुष मानव और देवताओं का जो सुख है उसे परमार्थ से दुःख ही कहते हैं, क्योंकि वो परिणाम से दारुण और अशाश्वत है । इसलिए उस सुख से क्या लाभ ? (यानि वो सुख का कोइ काम नहीं है ।)

[६] जिनवचन में निर्मल बुद्धिवाले मानव ने शाश्वत सुख के साधन ऐसे जो जिनेन्द्र की आज्ञा का आराधन है, उन आज्ञा पालने के लिए उद्यम करना चाहिए ।

[७] उन जिनेश्वर ने कहा हुआ ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप उनका जो आराधन है वही यहाँ आज्ञा का आराधन कहा है ।

[८] दिक्षा पालन में तत्पर (अप्रमत्त) आत्मा भी मरण के अवसर पर सूत्र में कहने के अनुसार आराधना करते हुए पूरी तरह आराधकपन पाता है ।

[९] मरण समान धर्म नहीं ऐसे धैर्यवंत ने (वीतराग ने) उस उद्यमवंत का मरण भक्त परिज्ञा प्रकार मरण, इगिनी मरण और पादपोपगम मरण ऐसे तीन प्रकार से कहा है ।

[१०] भक्त परिज्ञा मरण दो प्रकार का है–सविचार और अविचार । संलेखना द्वारा दुर्बल शरीरवाले उद्यमवंत साधु का सविचार मरण होता है ।

[११] भक्त परिज्ञा मरण और पराक्रम रहित साधु को संलेखना किए बिना जो मरण होता है वो अविचार भक्त परिज्ञा मरण कहते है । वह अविचार भक्त परिज्ञा मरण को यथामति मैं कहूँगा ।

[१२] धीरज बल रहित, अकाल मरण करनेवाले और अकृत (अतीचार) के करनेवाले ऐसे निरवद्य वर्तमान काल के यति को उपसर्ग रहित मरण योग्य है ।

[१३] उपशम सुख के अभिलाषवाला, शोक और हास्य रहित अपने जीवित के लिए आशा रहित, विषय सुख की तृष्णा रहित और धर्म के लिए उद्यम करते हुए जिन्हें संवेग हुआ है ऐसा वह (भक्त परिज्ञा मरण के लिए योग्य है ।)

[१४] जिसने मरण की अवस्था निश्चे की है, जिसने संसार का व्याधिग्रस्त और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्गुणपन पहचाना है, ऐसे भव्य यति या गृहस्थ को भक्तपरिज्ञामरण के योग्य मानना चाहिए।

[१५] व्याधि, जरा और मरण समान मगरमच्छवाला, हंमेशा जन्म समान पानी के समूहवाला, परिणाम में दारूण दुःख देनेवाला संसार रूपी समुद्र काफी दुरन्त है, यह खेद की बात है ।

[१६] पश्चाताप से पीड़ित, जिन्हे धर्म प्रिय है, दोष को निन्दने की तृष्णावाला और दोष एवम् दुःशीलपन से ऐसे पासत्थादिक भी अनसन के योग्य है ।

[१७] यह अनशन करके हर्ष सहित विनय द्वारा गुरु के चरणकमल के पास आकर हस्तकमल मुकुट रूप से ललाट से लगाकर गुरु की वंदना करके इस प्रकार कहता है ।

[१८] सत्पुरुष ! भक्त परिज्ञा रूप उत्तम जहाज पर चड़कर निर्यामक गुरु द्वारा संसार समान समुद्र में तैरने की मैं इच्छा रखता हूँ ।

[१९] दया समान अमृत रस से सुन्दर वह गुरु भी उसे कहते है कि–(हे वत्स !) आलोचना लेकर, व्रत स्वीकार करके, सर्व को खमाने के बाद, भक्त परिज्ञा अनशन को अंगीकार कर ले ।

[२०] ईच्छं ! ऐसा कहकर भक्ति और बहुमान द्वारा शुद्ध संकल्पवाला, नष्ट हुए अनर्थवाला गुरु के चरण कमल की विधिवत् वंदना करके;–

[२१] अपने शल्य का उद्धार करने की इच्छा रखनेवाला, संवेग (मोक्ष का अभिलाष) और उद्वेग (संसार छोड़ देने की इच्छा) द्वारा तीव्र श्रद्धावाला शुद्धि के लिए जो कुछ भी करे उसके द्वारा वह आत्मा आराधक बनता है ।

[२२] अब वो आलोयण के दोष से रहित, बच्चे की तरह बचपन के समय जैसा आचरण किया हो वैसा सम्यक् प्रकार से आलोचन करता है ।

[२३] आचार्य के समग्र गुण सहित आचार्य प्रायश्चित दे तब सम्यक् प्रकार से वह प्रायश्चित तप शुरु करके निर्मलभाववाला वह शिष्य फिर से कहता है ।

[२४] दारूण दुःख समान जलचर जीव के समूह से भयानक संसार समान समुद्र में से तारने के लिए समर्थ गुरु महाराज निर्विघ्न जहाज समान महाव्रत में आप हमारी स्थापना करे । (अर्थात् व्रत आरोपण करे)

[२५] जिसने कोप खंडन किया है वैसा अखंड महाव्रतवाला वह यति है, तो भी प्रव्रज्या व्रत की उपस्थापना के लिए वह योग्य है ।

[२६] स्वामी की अच्छे तरीके से पालन की गई आज्ञा को जैसे चाकर विधवत् पूरा करके लौटाते है, वैसे जीवनभर चारित्र पालन करके वो भी गुरु को ऊसी प्रकार से यह कहते है ।

[२७] जिसने अतिचार सहित व्रत का पालन किया है और आकुट्टी (छल) दंड से व्रत खंड़ित किया है वैसे भी सम्यक् उपस्थित होनेवाले को उसे (शिष्य को) उपस्थापना योग्य कहा है ।

[२८] उसके बाद महाव्रत समान पर्वत के बोज से नमित हुए मस्तकवाले उस शिष्य को सुगुरु विधि द्वारा महाव्रत की आरोपणा करते है ।

[२९] अब देशविरति श्रावक समकित के लिए रक्त और जिन वचन के लिए तत्पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो उसे भी शुद्ध अणुव्रत मरण के समय आरोपण किये जाते है ।

[३०] नियाणा रहित और उदार चित्तवाला, हर्ष से जिनकी रोमराजी विकस्वर हुइ हो ऐसा वो गुरु की, संघ की और साधर्मिक की निष्कपट भक्ति द्वारा पूजा करे ।

[३१] प्रधान जिनेन्द्र प्रसाद, जिनबिम्ब और उत्तम प्रतिष्ठा के लिए तथा प्रशस्त ग्रन्थ लिखवाने में, सुतीर्थ में और तीर्थंकर की पूजा के लिए श्रावक अपने द्रव्य का उपयोग करे।

[३२] यदि वो श्रावक सर्व विरति संयम के लिए प्रीतिवाला, विरुद्ध मन, (वचन) और कायावाला, स्वजन परिवार के अनुराग रहित, विषय पर खेदवाला और वैराग्यवाला हो–

[३३] वो श्रावक संथारा समान दीक्षा को अंगीकार करे और नियम द्वारा दोष रहित सर्व विरति रूप पाँच महाव्रत से प्रधान सामायिक चारित्र अंगीकार करे ।

[३४] जब वो सामायिक चारित्र धारण करनेवाला और महाव्रत को अंगीकार करनेवाला साधु और अंतिम पच्चक्खाण करूँ वैसे निश्चयवाला देशविरति श्रावक–

[३५] विशिष्ट गुण द्वारा महान गुरु के चरण कमल में मस्तक द्वारा नमस्कार करके कहता है कि हे भगवन् ! तुम्हारी अनुमति से भक्त परिज्ञा अनशन मैं अंगीकार करता हूँ ।

[३६] आराधना द्वारा उसका (अनसन लेनेवाले का) और खुद का कल्याण हो ऐसे दिव्य निमित्त जानकर, आचार्य अनसन दिलाए; नहीं तो (निमित्त देखे बिना अनशन लिया जाए तो) दोष लगता है ।

[३७] उसके बाद वो गुरु उत्कृष्ट सर्व द्रव्य अपने शिष्य को दिखाकर तीन प्रकार के आहार के जावज्जीव तक पच्चक्खाण करवाए ।

[३८] (उत्कृष्ट द्रव्य को) देखकर भव सागर के तट पर पहुँचे हुए मुझे इसके द्वारा क्या काम है ऐसे कोइ जीव चिन्तवन करे; कोइ जीव द्रव्य की इच्छा हो वो भुगतकर संवेग पाने के बावजूद भी उस मुताबिक चिन्तवन करे । क्या मैंने भुगतकर त्याह नहीं किया;

[३९] जो पवित्र पदार्थ हो वो अन्त में तो अशुचि है ऐसे ज्ञान में तत्पर होकर शुभ ध्यान करे; जो विषाद पाए उसे ऐसी चोयणा (प्रेरणा) देनी चाहिए ।

[४०] उदरमल की शुद्धि के लिए समाधिपान (शर्करा आदि का पानी) उसे अच्छा हो तो वो मधुर पानी भी उसे पीलाना चाहिए और थोड़ा-थोड़ा विरेचन करवाना चाहिए ।

[४१] इलायची, दालचीनी, नागकेसर और तमालपात्र, शक्करवाला दूध ऊबालकर, ठंड़ा करके पिलाए उसे समाधि पानी कहते है । (उसे पीने से ताप उपशमन होता है ।)

[४२] उसके बाद फोफलादिक द्रव्य से मधुर औषध से विरेचन करवाना चाहिए । क्योंकि उससे उदर का अग्नि बूझने से यह (अनशन को करनेवाला) सुख से समाधि प्राप्त करता है ।

[४३] अनशन करनेवला तपस्वी, जावज्जीव तक तीन तरीके का आहार (अशन, खादिम और स्वादिम) को यहाँ वोसिराता है, इस तरह से निर्यामणा करवानेवाले आचार्य संघ को निवेदन करे ।

[४४] (तपस्वी) उसको आराधना सम्बन्धी सर्व बात निरुपसर्ग रूप से प्रवर्ते उसके लिए सर्व संघ को दो सौ छप्पन श्वासोश्वास का कायोत्सर्ग करना चाहिए ।

[४५] उसके बाद उस आचार्य संघ के समुदाय में चैत्यवन्दन विधि द्वारा उस क्षपक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(तपस्वी) को चतुर्विध आहार का पच्चक्खाण करवाए ।

[४६] या फिर समाधि के लिए तीन प्रकार के आहार को आगार सहित पच्चक्खाण कराए । उसके बाद पानी भी अवसर देखकर त्याग करावें ।

[४७] उसके बाद शीश झुकार अपने दो हाथ को मस्तक पे मुकुट समान करके वो (अनशन करनेवाला) विधिवत् संवेग का अहेसास करवाते हुए सर्व संघ को खमाता है ।

[४८] आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, कुल और गण के साथ मैंने जो कुछ भी कषाय किए हो, वे सर्व मैं त्रिविध से (मन, वचन, काया से) खमाता हूँ ।

[४९] हे भगवन् ! मेरे सभी अपराध के पद (गलती), मैं खमाता हूँ, इसलिए मुझे खमाओ मैं भी गुण के समूहवाले संघ को शुद्ध होकर खमाता हूँ ।

[५०] इस तरह वंदन, खामणा और स्वनिन्दा द्वारा सो भव का उपार्जित कर्म एक पल में मृगावती रानी की तरह क्षय करते है ।

[५१] अब महाव्रत के बारे में निश्चल रहे हुए, जिनवचन द्वारा भावित मनवाले, आहार का पच्चक्खाण करनेवाला और तीव्र संवेग द्वारा मनोहार उस (अनसन करनेवाले) को;

[५२] अनशन की आराधना के लाभ से खुद को कृतार्थ माननेवाले उसको आचार्य महाराज पाप रूपी कादव का उल्लंघन करने के लिए लकड़ी समान शीक्षा देते है ।

[५३] बढा है कुग्रह (कदाग्रह) समान मूल जिसका ऐसे मिथ्यात्व को जड़ से उखेड़कर हे वत्स ! परमतत्त्व जैसे सम्यक्त्व को सूत्रनीति से सींच ।

[५४] और फिर गुण के अनुराग द्वारा वीतराग भगवान की तीव्र भक्ति कर । और प्रवचन के सार जैसे पाँच नमस्कार के लिए अनुराग कर ।

[५५] सुविहित साधु को हित को करनेवाले स्वाध्याय के लिए हंमेशा उद्यमवंत हो। और नित्य पाँच महाव्रत की रक्षा आत्म साक्षी से कर ।

[५६] मोह द्वारा करके बड़े और शुभकर्म के लिए शल्य समान नियाण शल्य का तूं त्याग कर, और मुनीन्द्र के समूह में निन्दे गए इन्द्रिय समान मृगेन्द्रो को तू दम ।

[५७] निर्वाण सुख में अंतराय समान, नरक आदि के लिए भयानक पातकारक और विषय तृष्णा में सदा सहाय करनेवाले कषाय समान पिशाच का वध कर ।

[५८] काल नहीं पहुँचते और अब थोड़ा सा चारित्र बाकी रहते, मोह समान महा वैरी को विदारने के लिए खड्ग और लकड़ी समान हित शिक्षा को तूं सुन ।

[५९] संसार की जड़-बीज समान मिथ्यात्व का सर्व प्रकार से त्याग कर, सम्यकत्व के लिए दृढ चित्तवाला होकर नमस्कार के ध्यान के लिए कुशल बन जा ।

[६०] जिस तरह लोग अपनी तृष्णा द्वारा मृगतृष्णा को (मृगजल में) पानी मानते है, वैसे मिथ्यात्व से मूढ़ मनवाला कुधर्म से सुख की इच्छा रखता है ।

[६१] तीव्र मिथ्यात्व जीव को जो महादोष देते है, वे दोष अग्नि विष या कृष्ण सर्प भी नहीं पहुंचाते ।

[६२] मिथ्यात्व से मूढ़ चित्तवाले साधु प्रति द्वेष रखने समान पाप से तुरुमणि नगरी के दतराजा की तरह तीव्र दुःख इस लोक में ही पाते है ।

[६३] सर्व दुःख को नष्ट करनेवाले सम्यकत्व के लिए तुम प्रमाद मत करना, क्योंकि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यकत्व के सहारे ज्ञान, तप, वीर्य और चारित्र रहे है ।

[६४] जैसे तू पदार्थ पर अनुराग करता है, प्रेम का अनुराग करता है और सद्गुण के अनुराग के लिए रक्त होता है । वैसे ही जिन-शासन के लिए हंमेशा धर्म के अनुराग द्वारा अनुरागी बन ।

[६५] सम्यकत्व से भ्रष्ट वो सर्व से भ्रष्ट जानना चाहिए, लेकिन चारित्र से भ्रष्ट होनेवाला सबसे भ्रष्ट नहीं होता क्योंकि सम्यक्त्व पाए हुए जीव को संसार के लिए ज्यादा परिभ्रमण नहीं होता ।

[६६] दर्शन द्वारा भ्रष्ट होनेवाले को भ्रष्ट मानना चाहिए, क्योंकि सम्यक्त्व से गिरे हुए को मोक्ष नहीं मिलता । चारित्र रहित जीव मुक्ति पाता है, लेकिन समक्ति रहित जीव मोक्ष नहीं पाता ।

[६७] शुद्ध समकित होते हुए अविरति जीव भी तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन करता है। जैसे आगामी काल मे कल्याण होनेवाला है जिनका वैसे हरिवंश के प्रभु यानि कृष्ण महाराज और श्रेणिक आदि राजा ने तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया है वैसे–

[६८] निर्मल सम्यक्त्ववाले जीव कल्याण की परम्परा पाते है । (क्योंकि) सम्यग्दर्शन समान रत्न सुर और असुर लोक के लिए अनमोल है ।

[६९] तीन लोक की प्रभुता पाकर काल से जीव मरता है । लेकिन सम्यकत्व पाने के बाद जीव अक्षय सुखवाला मोक्ष पाता है ।

[७०] अरिहंत सिद्ध, चैत्य (जिन प्रतिमा) प्रवचन-सिद्धांत, आचार्य और सर्व साधु के लिए मन, वचन और काया उन तीनों कारण से शुद्ध भाव से तीव्र भक्ति कर ।

[७१] अकेली जिनभक्ति भी दुर्गति का निवारण करने को समर्थ होती है और सिद्धि पाने तक दुर्लभ ऐसे सुख की परम्परा होती है ।

[७२] विद्या भी भक्तिवान् को सिद्ध होती है और फल देनेवाली होती है । तो क्या मोक्ष की विद्या अभक्तिवंत को सिद्ध होगी ?

[७३] उन आराधना के नायक वीतराग भगवान की जो मनुष्य भक्ति नहीं करता वो मनुष्य काफी उद्यम करके डाँगर को ऊखर भूमि में बोता है ।

[७४] आराधक की भक्ति न करने के बावजूद भी आगधना की इच्छा रखनेवाला मानव बीज के बिना धान्य की और बादल बिना बारिस की इच्छा रखता है ।

[७५] राजगृह नगर में मणिआर शेठ का जीव जो मेंढ़क हुआ था उसकी तरह श्री जिनेश्वर महाराज की भक्ति उत्तम कुल में उत्पत्ति और सुख की निष्पति करती है ।

[७६] आराधनापूर्वक, दुसरी किसी ओर चित्त लगाए बिना, विशुद्ध लेश्या से संसार के क्षय को करनेवाले नवकार को मत छोडना ।

[७७] यदि मौत के समय अरिहंत को एक भी नमस्कार हो तो वो संसार को नष्ट करने के लिए समर्थ है ऐसा जिनेश्वर भगवान ने कहा है ।

[७८] बूरे कर्म करनेवाला महावत, जिसे चोर कहकर शूली पर चड़ाया था वो भी 'नमो जिणाणम्' कहकर शुभ ध्यान में कमलपत्र जैसे आँखवाला यक्ष हुआ था ।

[७९] भाव नमस्कार रहित, निरर्थक द्रव्यलिंग को जीव ने अनन्ती बार ग्रहण किए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और छोड दिए है ।

[८०] आराधना समान पताका लेने के लिए नमस्कार हाथ रूप होता है, और फिर सद्गति के मार्ग में जाने के लिए वो जीव को अप्रतिहत रथ समान है ।

[८१] अज्ञानी गोवाल भी नवकार की आराधना करके मर गया और वह चंपानगरी के लिए श्रेष्ठी पुत्र सुदर्शन के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

[८२] जिस तरह अच्छे तरीके से आराधन की हुई विद्या द्वारा पुरुष, पिशाच को वश में करता है, वैसे अच्छी तरह से आराधन किया हुआ ज्ञान मन समान पिशाच को वश में करता है ।

[८३] जिस तरह विधिवत् आराधन किए हुए मंत्र द्वारा कृष्ण सर्प का उपशमन होता है, उसी तरह अच्छे तरीके से आराधन किए हुए ज्ञान द्वारा मन समान कृष्ण सर्प वश होता है ।

[८४] जिस तरह बन्दर एक पल भी निश्चल नहीं रह शकता, उसी तरह विषय के आनन्द बिना मन एक पल भी मध्यस्थ (निश्चल) नहीं रह शकता ।

[८५] उसके लिए वो उठनेवाले मन समान बन्दर को जिनेश्वर के उपदेश द्वारा दोर से बाँधकर शुभ ध्यान के लिए रमण करना चाहिए ।

[८६] जिस तरह दोर के साथ सूई भी कूड़े में गिर गई हो तो भी वो गुम नहीं होती, उसी तरह (शुभ ध्यान रूपी) दोर सहित जीव भी संसार में गिर गया हो तो भी नष्ट नहीं होता।

[८७] यदि लौकिक श्लोक द्वारा यव राजर्षि ने मरण से बचाया और (राजा) उसने साधुपन पाया, तो जिनेश्वर भगवान के बताए हुए सूत्र द्वारा जीव मरण के दुःख से छूटकारा पाए उसमें क्या कहना ?

[८८] या उपशम, विवेक, संवर उन पद को केवल सुनने को (स्मरण मात्र से) (उतने ही) श्रुतज्ञानवाले चिलातीपुत्रने ज्ञान और देवत्व पाया ।

[८९] जीव के भेद को जानकर, जावज्जीव प्रयत्न द्वारा सम्यक् मन, वचन काया के योग से छ काय के जीव के वध का तूं त्याग कर ।

[९०] जिस तरह तुम्हें दुःख अच्छा नहीं लगता, उसी तरह सर्व जीव को भी दुःख अच्छा नहीं लगता ऐसा जानकर, सर्व आदर से उपयुक्त (सावध) होकर आत्मवत् हर एक जीव को मानकर दया का पालन कर ।

[९१] जिस तरह जगत के लिए मेरु पर्वत से ज्यादा कोई ऊँचा नहीं है और आकाश से कोई बड़ा नहीं है, उसी तरह अहिंसा समान धर्म नहीं है ऐसा तू मान ले ।

[९२] यह जीवने सभी जीव के साथ सभी तरीके से सम्बन्ध पाया है । इसलिए जीव को मारता हुआ तूं सर्व सम्बन्धी को मारता है ।

[९३] जीव का वध अपना ही वध मानना चाहिए और जीव की दया अपनी ही दया है, इसलिए आत्मा के सुख की इच्छा रखनेवाले जीव ने सर्व जीव हत्या का त्याग किया हुआ है ।

[९४] चार गति में भटकते हुए जीव को जितने दुःख पड़ते है वो सब हत्या का फल है ऐसा सूक्ष्म बुद्धि से मानना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[९५] जो कोई बड़ा सुख, प्रभुता, जो कुछ भी स्वाभाविक तरीके से सुन्दर है, वो, निरोगीपन, सौभाग्यपन, वो सब अहिंसा का फल समजना चाहिए ।

[९६] सुंसुमार द्रह के लिए फेंका गया लेकिन चंडाल ने भी एक दिन में एक जीव बचाने से उत्पन्न होनेवाली अहिंसा व्रत के गुण से देवता का सानिध्य पाया ।

[९७] सभी भी चार प्रकार के असत्य वचन को कोशिश द्वारा त्याग कर, जिसके लिए संयमवंत पुरुष भी भाषा के दोष द्वारा (असत्य भाषण द्वारा कर्म से) लिप्त होते है । वे चार प्रकार के असत्य इस तरह है–असत् वस्तु को प्रकट करना, जिस तरह आत्मा सर्वगत है, दुसरा अर्थ कहना, जैसे गो शब्द से श्वान । सत् को असत् कहना– जैसे आत्मा नहीं है । निंदा करना । जैसे चोर न हो उसे चोर कहना ।

[९८] और फिर हास्य द्वारा, क्रोध द्वारा, लोभ द्वारा और भय द्वारा वह असत्य न बोलना । लेकिन जीव के हित में और सुन्दर सत्य वचन बोलना चाहिए ।

[९९] सत्यवादी पुरुष माता की तरह भरोसा रखने के लायक, गुरु की तरह लोगो को पूजने के लायक और रिश्तेदार की तरह सबको प्यारा लगता है ।

[१००] जटावंत हो या शिखावंत हो, मुंड़ हो, वल्कल (पेड़ की छाल के कपड़े) पहननेवाला हो या नग्न हो तो भी असत्यवादी लोगों के लिए पाखंड़ी और चंड़ाल कहलाता है ।

[१०१] एक बार भी बोला हुआ झूठ कईं सत्य वचन को नष्ट करता है क्योंकि एक असत्य वचन द्वारा वसु राजा नरक में गया ।

[१०२] हे धीर ! अल्प या ज्यादा पराया धन (जैसे कि) दाँत खुतरने के लिए एक शलाका भी, अदत्त (दिए बिना) लेने के लिए मत सोचना ।

[१०३] और फिर जो पुरुष (पराया) द्रव्य हरण करता है वो उसका जीवित भी हर लेता है । क्योंकि वो पुरुष पैसे के लिए जीव का त्याग करता है लेकिन पैसे को नहीं छोड़ता।

[१०४] इसलिए जीवदया समान परम धर्म को ग्रहण करके अदत्त न ले, क्योंकि जिनेश्वर भगवान और गणधरोने उसका निषेध किया है, और लोक के विरुद्ध भी है और अधर्म भी है ।

[१०५] चोर परलोक में भी नरक एवं तिर्यंच गति में बहुत दुःख पाता है; मनुष्यभव में भी दीन और दरिद्रता से पीड़ता है ।

[१०६] चोरी से निवर्तनेवाले श्रावक के लड़के ने जिस तरह से सुख पाया, कीढ़ी नाम की बुढ़िया के घर में चोर आए । उन चोर के पाँव का अंगूठा बुढ़िया ने मोर के पीछे से बनाया तो उस निशानी राजा ने पहचानकर श्रावक के पुत्र को छोड़कर बाकी सब चोर को मारा ।

[१०७] नव ब्रह्मचर्य की गुप्ति द्वारा शुद्ध ब्रह्मचर्य की तुम रक्षा करो और काम को बहुत दोष से युक्त मानकर हंमेशा जीत लो ।

[१०८] वाकई में जितने भी दोष इस लोक और परलोक के लिए दुःखी करवानेवाले है, उन सभी दोष को मानव की मैथुनसंज्ञा लाती है ।

[१०९] रति और अरति समान चंचल दो जीह्वावाले, संकल्प रूप प्रचंड़ फणावाले,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विपय रूप बिल में बँसनेवाले, मदरूप मुखवाले और गर्व से अनादर रूप रोषवाले–

[११०] लज्जा समान कांचलीवाले, अहंकार रूप दाढ़ वाले और दुःसह दुःख देनेवाले विषवाले, कामरूपी सर्प द्वारा डँसे गए मानव परवश दिखाई देते है ।

[१११] रौद्र नरक के दर्द और घोर संसार सागर का वहन करना, उसको जीव पाता है, लेकिन कामित सुखका तुच्छपन नहीं देखता ।

[११२] जैसे काम के सेंकड़ों तीर द्वारा वींधे गए और गृद्ध हुए बनीयें को राजा की स्त्री ने पायखाने की खाल मे ड़ाल दिया और वो कई दुर्गंध को सहन करते हुए वहाँ रहा।

[११३] कामासक्त मानव वैश्यायन तापस की तरह गम्य और अगम्य नहीं जानता । जिस तरह कुबेरदत्त शेठ तुरन्त ही बच्चे को जन्म देनेवाली अपनी माता के सुरत सुख से रक्त रहा ।

[११४] कंदर्प से व्याप्त और दोष रूप विष की वेलड़ी समान स्त्रीयों के लिए जिसने काम कलह प्रेरित किया है ऐसे प्रतिबंध के स्वभाव से देखते हुए तुम उसे छोड़ दो ।

[११५] विषय में अंध होनेवाली स्त्री कुल, वंश, पति, पुत्र, माता एवं पिता को कद्र न करते हुए दुःख समान सागर में गिरती है ।

[११६] स्त्रीयों की नदियाँ के साथ तुलना करने से स्त्री नीचगामीनी, (नदी पक्ष में झुकाव रखनेवाली भूमि में जानेवाली) अच्छे स्तनवाली (नदी के लिए-सुन्दर पानी धारण करनेवाली) देखने लायक, खूबसूरत और मंद गतिवाली नदियाँ की तरह मेरु पर्वत जैसे बोझ (पुरुष) को भी भेदती है ।

[११७] अति पहचानवाली, अति प्रिय और फिर अति प्रेमवंत ऐसी भी स्त्री के रूप नागिन पर वाकई में कौन भरोसा रखेगा ?

[११८] नष्ट हुई आशावाली (स्त्री) अति भरोसेमंद, अहेसान के लिए तत्पर और गहरे प्रेमवाले लेकिन एक बार अप्रिय करनेवाले पति को जल्द ही मरण की ओर ले जाती है।

[११९] खूबसूरत दिखनेवाली, सुकुमार अंगवाली और गुण से (दोर से) बंधी हुई नई जाई की माला जैसी स्त्री पुरुष के दिल को चुराती है ।

[१२०] लेकिन दर्शन की सुन्दरता से मोह उत्पन्न करनेवाली उस स्त्रीं के आलिंगन समान मदिरा, कणेर की वध्य (वध्य पुरुष के गले में पहनी गई) माला की तरह पुरुष का विनाश करती है ।

[१२१] स्त्रीओं का दर्शन वाकई में खूबसूरत होता है, इसलिए संगम के सुख से क्या लाभ ? माला की सुवास भी खुश्बुदार होती है, लेकिन मर्दन विनाश समान होता है ।

[१२२] साकेत नगर का देवरति नाम का राजा राज के सुख से भ्रष्ट हुआ क्योंकि रानी ने पांगले के राग की वजह से उसे नदी में फेंक दिया और वो नदी में डूब गया ।

[१२३] स्त्री शोक की नदी, दुरित की (पाप की) गुफा, छल का घर, क्लेश करनेवाली, समान अग्नि को जलानेवाले अरणी के लकड़े जैसी, दुःख की खान और सुख की प्रतिपक्षी है ।

[१२४] काम रूपी तीर के विस्तारवाले मृगाक्षी (स्त्रीं) के दृष्टि के कटाक्ष के लिए मन के निग्रह को न जाननेवाला कौन-सा पुरुप सम्यक् तरीके से भाग जाने में समर्थ होगा ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१२५] अति ऊँचे और घने बादलवाली मेघमाला जैसे हड़कवा के विष को जितना बढाती है उसीतरह अति ऊँचे पयोधर (स्तन) वाली स्त्री पुरुष के मोह विष को बढाती है ।

[१२६] इसलिए दृष्टिविष सर्प की दृष्टि जैसी उस स्त्रीं की दृष्टि का तुम त्याग करना; क्योंकि स्त्रीयों के नयनतीर चारित्र समान प्राण को नष्ट करते है ।

[१२७] स्त्री के संग से अल्प सत्त्ववाले मुनि का मन भी अग्नि से पीगलनेवाले मोम की तरह पीगल जाता है ।

[१२८] यदि सर्व संग का भी त्याग करनेवाला और तप द्वारा कृश अंगवाला हो तो भी कोशा के घर में बँसनेवाले (सींह गुफावासी) मुनि की तरह स्त्री के संग से मुनि भी चलायमान होते है ।

[१२९] शृंगार समान कल्लोलवाली, विलास रूपी बाढ़वाली और यौवन समान पानीवाली औरत रूपी नदी में जगत के कौन-से पुरुष नहीं डूबते ?

[१३०] धीर पुरुष विषयरूप जलवाले, मोहरूप कादववाले, विलास और अभिमान समान जलचर से भरे और मद समान मगरमच्छवाले, यौवन समान सागर को पार कर गए है।

[१३१] करने, करवाने और अनुमोदन रूप तीन कारण द्वारा और मन, वचन और काया के योग से अभ्यंतर और बाहरी ऐसे सर्व संग का तुम त्याग करो ।

[१३२] संग के (परिग्रह के) आशय से जीव हत्या करता है, झूठ बोलता है, चोरी करताहै, मैथुन का सेवन करता है, और परिमाण रहित मूर्छा करता है । (परिग्रह का परिमाण नहीं करता ।) ।

[१३३] परिग्रह बड़े भय का कारण है, क्योंकि पुत्र ने द्रव्य चोरने के बावजूद भी श्रावक कुंचिक शेठ ने मुनिपति मुनि को शंका से पीड़ित किया ।

[१३४] सर्व (बाह्य और अभ्यंतर) परिग्रह से मुक्त, शीतल परीणामवाला और उपशांत चित्तवाला पुरुष निर्लोभता का (संतोष का) जो सुख पाता है वो सुख चक्रवर्ती भी नहीं पाते।

[१३५] शल्य रहित मुनि के महाव्रत, अखंड़ और अतिचार रहित हो उस मुनि के भी महाव्रत, नियाण शल्य द्वारा नष्ट होते है ।

[१३६] वो (नियाण शल्य) रागगर्भित, द्वेषगर्भित और मोहगर्भित, तीन प्रकार से होता है; धर्म के लिए हीन कुलादिक की प्रार्थना करे उसे मोहगर्भित निदान समजना, राग के लिए जो निदान किया जाए वो राग गर्भित और द्वेष के लिए जो निदान किया जाए उसे द्वेषगर्भित समजना चाहिए ।

[१३७] राग गर्भित निदान के लिए गंगदत्त का, द्वेषगर्भित निदान के लिए विश्वभूति आदि का (महावीर स्वामी के जीव) और मोह गर्भित निदान के लिए चंड़पिंगल आदि के दृष्टांत प्रसिद्ध है ।

[१३८] जो मोक्ष के सुख की अवगणना करके असार सुख के कारण रूप निदान करता है वो पुरुप काचमणि के लिए वैडूर्य रत्न को नष्ट करता है ।

[१३९] दुःखक्षय, कर्मक्षय, समाधि मरण और बोधि बीज का लाभ, इतनी चीज की प्रार्थना करनी, उसके अलावा दुसरा कुछ भी माँगने के लिए उचित नहीं है ।

[१४०] नियाण शल्य का त्याग करके, रात्रि भोजन की निवृत्ति करके, पाँच समिति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीन गुप्ति द्वारा पाँच महाव्रत की रक्षा करते हुए मोक्ष सुख की साधना करता है ।

[१४१] इन्द्रिय के विषय में आसक्त जीव सुशील गुणरूप पींछे बिना और छेदन हुए पंखवाले पंछी की तरह संसार सागर में गिरता है ।

[१४२] जिस तरह श्वान (कुत्ता) सूख गई हड्डीओं को चबाने के बावजूद भी उसका रस नहीं पाता और (अपने) तलवे से रस को शोषता है, फिर भी उसे चाटते हुए सुख का अनुभव होता हुआ मानता है ।

[१४३] वैसे ही स्त्रीयों के संग का सेवन करनेवाला पुरुष सुख नहीं पाता, फिर भी अपने शरीर के परिश्रम को सुख मानता है ।

[१४४] अच्छी तरह से खोजने के बावजूद भी जैसे केल के गर्भ में किसी जगह में सार नही है, उसी तरह इन्द्रिय के विषय में काफी खोजने के बावजूद भी सुख नहीं मिलता।

[१४५] श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा परदेश गए हुए सार्थवाह की स्त्री, चक्षु के राग द्वारा मथुरा का वणिक, घ्राण द्वारा राजपुत्र और जीह्वा के रस से सोदास राजा का वध हुआ ।

[१४६] स्पर्श इन्द्रिय द्वारा दुष्ट सोमालिका के राजा का नाश हुआ; एकैक विषय से यदि वो नष्ट हुए तो पाँच इन्द्रिय में आसक्त हो उसका क्या होगा ?

[१४७] विषय की अपेक्षा करनेवाला जीव दुस्तर भव समुद्र में गिरता है, और विषय से निरपेक्ष हो वो भव सागर को पार कर जाता है । रत्नद्वीपकी देवी को मिले हुए (जिनपालित और जिनरक्षित नाम के) दो भाईओं का दृष्टान्त प्रसिद्ध है ।

[१४८] राग की अपेक्षा रखनेवाले जीव ठग चूके है, और राग की अपेक्षा रहित जीव बिना किसी विघ्न के (इच्छित) पा चूके है, प्रवचन का सार प्राप्त किये हुए जीव को राग की अपेक्षा रहित होना चाहिए ।

[१४९] विषय में आसक्ति रखनेवाले जीव घोर संसार सागर में गिरते है, और विषय में आसक्ति न रखनेवाले जीव संसार रूपी अटवी को पार कर जाते है ।

[१५०] इसलिए हे धीर पुरुष ! धीरजसमान बल द्वारा दुर्दान्त (दुःख से दमन वैसे) इन्द्रिय रूप सिंह को दम; ऐसा करके अंतरंग बैरी समान और द्वेष का जय करनेवाला तू आराधना पताका का स्वीकार कर ।

[१५१] क्रोधादिक के विपाक को जानकर और उसके निग्रह से होनेवाले गुण को जानकर हे सुपुरुप ! तु प्रयत्न द्वारा कषाय समान क्लेश का निग्रह कर ।

[१५२] जो तीन जगत के लिए अति तीव्र दुःख है और जो उत्तम सुख है वे सर्व क्रमानुसार कषाय की वृद्धि और क्षय की वजह जानना ।

[१५३] क्रोध द्वारा नंद आदि और मान द्वारा परशुराम आदि माया द्वारा पंड़रज्जा (पांडु आर्या) और लोभ द्वारा लोहनन्दादिने दुःख पाए है ।

[१५४] इस तरह के उपदेश समान अमृत पान द्वारा भीगे हुए चित्त के लिए, जिस तरह प्यासा पुरुष पानी पीकर शान्त होता है वैसे वो शिष्य अतिशय स्वस्थ होकर कहता है–

[१५५] हे भगवान् ! मैं भव रूपी कीचड़ को पार करने को दृढ़ लकड़ी समान आपकी हितशिक्षा की इच्छा रखता हूँ, आपने जो जैसे कहा है मैं वैसे करता हूँ । ऐसे विनय से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवनत हुआ वो कहता है ।

[१५६] यदि किसी दिन (इस अवसर में) अशुभ कर्म के उदय से शरीर में वेदना या तृषा आदि परिषह उसे उत्पन्न हो ।

[१५७] तो निर्यामक, क्षपक (अनशन करनेवाले) को स्निग्ध, मधुर, हर्षदायी, हृदय को भानेवाला, और सच्चा वचन कहते हुए शीख देते है ।

[१५८] हे सत् पुरुष ! तुमने चतुर्विध संघ के बीच बड़ी प्रतिज्ञा की थी । कि मैं अच्छी तरह से आराधना करूँगा अब उसका स्मरण कर ।

[१५९] अरिहंत, सिद्ध, केवली और सर्व संघ की साक्षी में प्रत्यक्ष किए गए पच्चक्खाण का भंग कौन करेगा ?

[१६०] शियालणी से अति खवाये गए, घोर वेदना पानेवाले भी अवन्ति सुकुमाल ध्यान द्वारा आराधना को प्राप्त हुए ।

[१६१] जिन्हें सिद्धार्थ (मोक्ष) प्यारा है ऐसे भगवान सुकोसल भी चित्रकूट पर्वत के लिए वाघण द्वारा खाए जाने पर भी मोक्ष को प्राप्त हुए ।

[१६२] गोकुल में पादपोपगम अनशन करनेवाले चाणक्य मंत्रीने सुबन्धु मंत्री द्वारा जलाए हुए गोबर से जलाने के बाद भी उत्तमार्थ को प्राप्त किया ।

[१६३] रोहीतक में कुंच राजा द्वारा शक्ति को जलाया गया उस वेदना को याद करके भी उत्तमार्थ (आराधकपन को) प्राप्त हुए ।

[१६४] उस कारण से हे धीर पुरुष ! तुम भी सत्त्व का अवलंबन करके धीरता धारण कर और संसार समान महान सागर का निर्गुणपन सोच ।

[१६५] जन्म, जरा और मरण समान पानीवाला, अनादि, दुःख समान श्वापद (जलचर जीव) द्वारा व्याप्त और जीव को दुःख का हेतुरूप ऐसा भव समुद्र काफी कष्टदायी और रौद्र है ।

[१६६] मैं धन्य हूँ क्योंकि मैंने अपार भव सागर के लिए लाखों भव में पाने के दुर्लभ यह सद्धर्म रूपी नाव पाई है ।

[१६७] एक बार प्रयत्न करके पालन किये जानेवाले इसके प्रभाव द्वारा, जीव जन्मांतर के लिए भी दुःख और दारिद्रय नहीं पाते ।

[१६८] यह धर्म अपूर्व चिन्तामणि रत्न है, और अपूर्व कल्पवृक्ष है, यह परम मंत्र है, और फिर यह परम अमृत समान है ।

[१६९] अब (गुरु के उपदेश से) मणिमय मंदिर के लिए सुन्दर तरीके से स्फुरायमान जिन गुण रूप अंजन रहित उद्योतवाले विनयवंत (आराधक) पंच नमस्कार के स्मरण सहित प्राण का त्याग कर दे ।

[१७०] वो (श्रावक) भक्त परिज्ञा को जघन्य से आराधना करके परिणाम की विशुद्धि द्वारा सौधर्म देवलोक में महर्द्धिक देवता होते है ।

[१७१] उत्कृष्टरूप से भक्तपरिज्ञा का आराधन करके गृहस्थ अच्युत नाम के बारहवें देवलोक में देवता होते है, और यदि साधु हो तो उत्कृष्टरूप से मोक्ष के सुख पाते है या तो सर्वार्थ सिद्ध विमान में उत्पन्न है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१७२] इस तरह से योगेश्वर जिन महावीर स्वामीने कहे हुए कल्याणकारी वचन के अनुसार प्ररूपित यह भक्त परिज्ञा पयन्ना को धन्य पुरुष पढ़ते है, आवर्तन करते है और सेवन करते है । (वे क्या पाते है यह आगे की गाथा में बताते है ।)

[१७३] मानव क्षेत्र के लिए उत्कृष्टरूप से विचरने और सिद्धांत के लिए कहे गए एक सौ सत्तर तीर्थंकर की तरह एक सौ सत्तर गाथा की विधिवत् आराधना करनेवाली आत्मा शाश्वत सुखवाला मोक्ष पाती है ।

२७	भक्तपरिज्ञा-प्रकिर्णकसूत्र-४-हिन्दी अनुवाद पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

२८ तन्दुलवैचारिक

प्रकिर्णक-५- हिन्दी अनुवाद

[१] जरा-मरण से मुक्त हुए ऐसे जिनेश्वर महावीर को प्रणाम करके यह 'तन्दुल वेयालिय' पयन्ना को मैं कहूँगा ।

[२] गिनने में मानव का आयु सौ साल मानकर उसे दस-दस में विभाजित किया जाता है । उन सौ साल के आयु के अलावा जो काल है उसे गर्भावास कहते है ।

[३] उस गर्भकाल और जितने दिन, रात, मूहुर्त और श्वासोच्छ्वास-जीव गर्भवास में रहे उसकी आहार विधि कहते है ।

[४] जीव २७० पूर्ण रात-दिन और आधा दिन गर्भ में रहता है । नियम से जीव को इतने दिन-रात गर्भवास में लगता है ।

[५] लेकिन उपघात की वजह से उससे कम या ज्यादा दिन में भी जन्म ले शकता है ।

[६] नियम से जीव ८३२५ मुहूर्त तक गर्भ में रहता है, फिर भी उसमें हानि-वृद्धि भी हो शकती है ।

[७] जीव को गर्भ में-३१४१०२२५ श्वास-उच्छ्वास होते है । लेकिन उससे कम-ज्यादा भी हो शकते है ।

[९] हे आयुष्यमान् ! स्त्री की नाभि के नीचे पुष्पडंठल जैसी दो सिरा होती है।

[१०] उसके नीचे उलटे किए हुए कमल के आकार की योनि होती है । जो तलवार की म्यान जैसी होती है ।

[११] उसे योनि के भीतर में आम की पेशी जैसी मांसपिंड होती है वो ऋतुकाल में फूटकर लहू के कण छोड़ती है । उल्टे किए हुए कमल के आकार की वो योनि जब शुक्र मिश्रित होती है, तब वो जीव उत्पन्न करने लायक होती है । ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है ।

[१२] गर्भ उत्पत्ति के लायक योनि में १२ मुहूर्त्त तक लाख पृथक्त्व से अधिक जीव रहता है । उसके बाद वे नष्ट होते है ।

[१३] ५५ साल के बाद स्त्री की योनि गर्भधारण के लायक नहीं रहती और ७५ साल बाद पुरुष प्रायः शुक्राणु रहित हो जाता है ।

[१४] १०० साल से पूर्वकोटी जितना आयु होता है । उसके आधे हिस्से के बाद स्त्री संतान उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाती है । और आयु का २० प्रतिशत भाग बाकी रहते पुरुष शुक्राणु रहित हो जाते है ।

[१५] रक्तोत्कट स्त्री की योनि १२ मुहूर्त्त में उत्कृष्ट से लाख पृथकत्व जीवों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संतान के रूप में उत्पन्न करने में समर्थ होती है । १२ साल में अधिकतम गर्भकाल में एक जीव के ज्यादा से ज्यादा शत पृथक्त्व (२०० से ९००) पिता हो शकते है ।

[१६] दाँयी कुक्षी पुरुष की और बाँई कुक्षी स्त्री के निवास की जगह होती है । जो दोनों की मध्य में निवास करता है वो नपुंसक जीव होता है । तिर्यंच योनि में गर्भ की उत्कृष्ट स्थिति आठ साल की मानी जाती है ।

[१७] निश्चय से यह जीव माता पिता के संयोग से गर्भ में उत्पन्न होता है । वो पहले माता की रज और पिता के शुक्र के कलुष और किल्बिष का आहार करके रहता है ।

[१८] पहले सप्ताह में जीव तरल पदार्थ के रूप में, दुसरे सप्ताह में दहीं जैसे जमे हुए, उसके बाद लचीली माँस-पेशी जैसा और फिर ठोस हो जाता है ।

[१९] उसके बाद पहले मास में वो फूले हूए माँस जैसा, दुसरे महिने में माँसपिंड़ जैसा घनीभूत होता है । तीसरे महिने में वो माता को इच्छा उत्पन्न करवाता है । चौथे महिने में माता के स्तन को पुष्ट करता है । पाँचवे महिने में हाथ, पाँव, सर यह पाँच अंग तैयार होते है । छट्ठे महिने में पित्त और लहू का निर्माण होता है । और फिर बाकी अंग-उपांग बनते है । साँतवे महिने में ७०० नस, ५०० माँस-पेशी, नौ धमनी और सिर एंव मुँह के अलावा बाकी बाल के ९९ लाख रोमछिद्र बनते है । सिर और दाढ़ी के बाल सहित साढे तीन करोड़ रोमकूप उत्पन्न होते है । आँठवे महिने में प्रायः पूर्णता प्राप्त करता है ।

[२०] हे भगवन् ! क्या गर्भस्थ जीव को मल-मूत्र, कफ, श्लेष्म, वमन, पित्त, वीर्य या लहू होते है ? यह अर्थ उचित नहीं है अर्थात् ऐसा नहीं होता । हे भगवन् ! किस वजह से आप ऐसा कह रहे हो कि गर्भस्थ जीव को मल, यावत् लहू नहीं होता । गौतम ! गर्भस्थ जीव माता के शरीर से आहार करता है । उसे नेत्र, चक्षु, घ्राण, रस के और स्पर्शन इन्द्रिय के रूप में हड्डीयाँ, मज्जा, केश, मूँछ, रोम और नाखून के रूप में परिणमाता है । इस वजह से ऐसा कहा है कि गर्भस्थ जीव को मल यावत् लहू नहीं होता ।

[२१] हे भगवन् ! गर्भस्थ जीव मुख से कवल आहार करने के लिए समर्थ है क्या ? हे गौतम ! यह अर्थ उचित नहीं है । हे भगवन् ऐसा क्यो कहते हो ? हे गौतम ! गर्भस्थ जीव सभी ओर से आहार करता है । सभी ओर से परिणमित करता है । सभी ओर से साँस लेता है और छोड़ता है । निरन्तर आहार करता है और परिणमता है । हंमेशा साँस लेता है और बाहर नीकालता है । वो जीव जल्द आहार करता है और परिणमाता है । जल्द साँस लेता है और छोडता है । माँ के शरीर से जुड़े हुए पुत्र के शरीर को छूती एक नाड़ी होती है जो माँ के शरीर रस की ग्राहक और पुत्र के जीवन रस की संग्राहक होती है । इसलिए वो जैसे आहार ग्रहण करता है वैसा ही परिणाता है । पुत्र के शरीर के साथ जुड़ी हुई और माता के शरीर को छूनेवाली ओर एक नाड़ी होती है । उसमें समर्थ गर्भस्थ जीव मुख से कवल-आहार ग्रहण नहीं करता ।

[२२] हे भगवन् ! गर्भस्थ जीव कौन-सा आहार करेगा ? हे गौतम ! उसकी माँ जो तरह-तरह की रसविगई-कडुआ, तीखा, खट्टा द्रव्य खाए उसके ही आंशिक रूप में ओजाहार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता है । उस जीव की फल के बिंट जैसी कमल की नाल जैसी नाभि होती है । वो रस ग्राहक नाड़ माता की नाभि के साथ जुड़ी होती है । वो नाड़ से गर्भस्थ जीव ओजाहार करता है । और वृद्धि प्राप्त करके उत्पन्न होता है ।

[२३] हे भगवन् ! गर्भ के मातृ अंग कितने है ? और पितृ अंग कितने है ? हे गौतम ! माता के तीन अंग बताए गए है । माँस, लहू और मस्तक, पिता के तीन अंग है– हड्डीयाँ, मज्जा और दाढ़ी-मूँछ, रोम एवं नाखूंन ।

[२४] हे भगवन् ! क्या गर्भ में रहा जीव (गर्भ में ही मरके) नरक में उत्पन्न होगा ? हे गौतम ! कोइ गर्भ में रहा संज्ञी पंचेन्द्रिय और सभी पर्याप्तिवाला जीव वीर्य-विभंगज्ञान-वैक्रिय लब्धि द्वारा शत्रुसेना को आई हुई सुनकर सोचे कि मैं आत्म प्रदेश बाहर नीकालता हूँ। फिर वैक्रिय समुद्घात करके चतुरंगिणी सेना की संरचना करता हूँ । शत्रुसेना के साथ युद्ध करता हूँ । वो अर्थ-राज्य-भोग और काम का आकांक्षी, अर्थ आदि का प्यासी, उसी चित्त-मन-लेश्या और अध्यवसायवाला, अर्थादि के लिए बेचैन, उसके लिए ही क्रिया करनेवाला, उसी भावना से भावित, उसी काल में मर जाए तो नरक में उत्पन्न होगा । इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि गर्भस्थ कोइ जीव नरक में उत्पन्न होता है । कोइ जीव नहीं होता।

[२५] हे भगवन् ! क्या गर्भस्थ जीव देवलोक में उत्पन्न होता है ? हे गौतम ! कोई जीव उत्पन्न होता है और कोइ जीव नहीं होता । हे भगवन् ! ऐसा क्यों कहते हो ? हे गौतम ! गर्भ में स्थित संज्ञी पंचेन्द्रिय और सभी पर्याप्तिवाला जीव वैक्रिय-वीर्य और अवधिज्ञान लब्धि द्वारा वैसे श्रमण या ब्राह्मण के पास एक भी आर्य और धार्मिक वचन सुनकर धारण करके शीघ्रतया संवेग से उत्पन्न हुए तीव्र–धर्मानुराग से अनुरक्त हो । वो धर्म पुण्य-स्वर्ग-मोक्ष का कामी, धर्मादि की आकांक्षावाला, पीपासावाला, उसमें ही चित्त-मन, लेश्या और अध्यवसायवाला, धर्मादि के लिए कोशिश करनेवाला, उसमें ही तत्पर, उसके प्रति समर्पित होकर क्रिया करनेवाला, उसी भावना से भावित होकर उसी समय में मर जाए तो देवलोक में उत्पन्न होता है । इसलिए कोइ जीव देवलोक में उत्पन्न होता है, कोइ जीव नहीं होता ।

[२६] हे भगवन् ! गर्भ में रहा जीव उल्टा सोता है, बगल में सोता है या वक्राकार ? खड़ा होता है या बैठा ? सोता है या जागता है ? माता सोए तब सोता है और जगे तब जगता है ? माता के सुख से सुखी और दुःख से दुःखी रहता है ? हे गौतम ! गर्भस्थ जीव उल्टा सोता है–यावत् माता के दुःख से दुःखी होता है ।

[२७] स्थिर रहनेवाले गर्भ की माँ रक्षा करती है, सम्यक् तरीके से परिपालन करती है, वहन करती है । उसे सीधा रखके और उस प्रकार से गर्भ की और अपनी रक्षा करती है।

[२८] माता के सोने पर सोए, जगने पर जगे, माता के सुखी हो तब सुखी, दुःखी होने पर दुःखी होता है ।

[२९] उसे विष्ठा, मूत्र, कफ, नाक का मैल नहीं होते । और आहार अस्थि, मज्जा, नाखून, केश, दाढ़ी-मूँछ के रोम के रूप में परिणमित होते है ।

[३०] आहार परिणमन और श्वासोच्छ्वास सब कुछ शरीर प्रदेश से होता है । और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वो कवलाहार नहीं करता ।

[३१] इस तरह दुःखी जीव गर्भ में शरीर प्राप्त करके अशुचि प्रदेश में निवास करता है ।

[३२] हे आयुष्मान् ! तब नौ महिने में माँ उसके द्वारा उत्पन्न होनेवाले गर्भ को चार में से किसी एकरूप में जन्म देती है । वो इस तरह से स्त्री, पुरुष, नपुंसक या माँसपिंड़।

[३३] यदी शुक्र कम और रज ज्यादा हो तो स्त्री, और यदी रज कम और शुक्र ज्यादा हो तो पुरुष,

[३४] रज और शुक्र–दोनो समान मात्रा में हो तो नपुंसक उत्पन्न होता है और केवल स्त्री रज की स्थिरता हो तो माँसपिंड उत्पन्न होता है ।

[३५] प्रसव के समय बच्चा सर या पाँव से नीकलता है । यदि वो सीधा बाहर नीकले तो सकुशल उत्पन्न होता है लेकिन यदि वो तीर्छा हो जाए तो मर जाता है ।

[३६] कोइ पापात्मा अशुचि प्रसूत और अशुचि रूप गर्भवास में उत्कृष्ट से १२ साल तक रहता है ।

[३७] जन्म और मौत के समय जीव जो दुःख पाता है उससे विमूढ़ होनेवाला जीव अपने पूर्वजन्म का स्मरण नहीं कर शकता ।

[३८] तब रोते हुए ओर अपनी माता के शरीर को पीड़ा देते हुए योनि मुख से बाहर नीकलता है ।

[३९] गर्भगृह में जीव कुंभीपाक नरक की तरह विष्ठा, मल-मूत्र आदि अशुचि स्थान में उत्पन्न होते है ।

[४०] जिस तरह विष्ठा में कृमि उत्पन्न होते है उसी तरह पुरुष का पित्त, कफ, वीर्य, लहू और मूत्र के बीच जीव उत्पन्न होता है ।

[४१] उस जीव का शुद्धिकरण किस तरह हो जिसकी उत्पत्ति ही शुक्र और लहू के समूह मे हुई हो ।

[४२] अशुचि से उत्पन्न होनेवाले और हमेशा दुर्गन्धवाले विष्ठा से भरे हुए और हंमेशा शुचि की अपेक्षा करनेवाले इस शरीर पर गर्व कैसा ?

[४३] हे आयुष्मान् ! इस प्रकार से उत्पन्न होनेवाले जीव की क्रम से दश अवस्थाएं बताइ गई है । वो इस प्रकार है–

[४४] बाला, क्रीडा, मंदा, बला, प्रज्ञा, हायनी, प्रपंचा, प्रग्भारा, मुन्मुखी और शायनी जीवनकाल की यह दस अवस्था बताई गई है ।

[४५] जन्म होते ही वह जीव प्रथम अवस्था को प्राप्त होता है । उसमें अज्ञानता वश वह सुख-दुःख और भूख को नहीं जानता ।

[४६] दुसरी अवस्था में वह विविध क्रीडा करता है, उसकी कामभोग में तीव्र मति नहीं होती ।

[४७] तीसरी अवस्था में वह पाँच तरीके के भोग भुगतने को निश्चे समर्थ होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४८] चौथी बला नाम की अवस्था में मानव किसी परेशानी न हो तो भी अपना बल प्रदर्शन करने में समर्थ होता है ।

[४९] पाँचवी अवस्था में वो धन की फिक्र के लिए समर्थ होता है । और परिवार पाता है ।

[५०] छट्ठी "हायनी" अवस्था में वो इन्द्रिय में शिथिलता आने से कामभोग प्रति विरक्त होता है ।

[५१] साँतवी प्रपंच दशा में वो स्निग्ध और कफ पाड़ता हुआ खाँसता रहता है ।

[५२] संकुचित हुई पेट की त्वचावाली आँठवी अवस्था में वो स्त्रीं को अप्रिय होता है । और वृद्धावस्था में बदलता है ।

[५३] मुन्मुख दशा में शरीर बुढ़ापे से क्षीण होता है और कामवासनां से रहित होता है ।

[५४] दसवीं दशा में उसकी वाणी क्षीण हो जाती है स्वर बदल जाता है । वो दीन, विपरीत बुद्धि, भ्रान्तचित्त, दुर्बल और दुःखद अवस्था पाता है...

[५५] दश साल की आयु दैहिक विकास की, बीस साल की उम्र विद्या प्राप्ति की तीस तक विषय सुख और चालीस साल तक की उम्र विशिष्ट ज्ञान की होती है ।

[५६] पचास को आँख की दृष्टि कमजोर होती है, साठ में बाहुबल कम होता है, अशी की उम्र में आत्म चेतना कमजोर होती है ।

[५७] नब्बे की उम्र तक शरीर झुक जाता है और सौ तक जीवन पूर्ण होता है । इसमें सुख कितना और दुःख कितना ?

[५८] जो सुख से १०० साल जीता है और भोग को भुगतता है । उनके लिए भी जिनभाषित धर्म का सेवन श्रेयस्कर है ।

[५९] जो हंमेशा दुःखी और कष्टदायक हालात मे ही जीवन जीता है उनके लिए क्या उत्तम ? उसके लिए जितेन्द्र द्वारा उपदेशित श्रेष्ठतर धर्म का पालन करना ही कर्तव्य है ।

[६०] सांसारिक सुख भुगतता हुआ वो ऐसे सोचते हुए धर्म आचरण करता रहता है कि मुझे भवान्तर में उत्तम सुख प्राप्त होगा । दुःखी ऐसे सोचकर धर्म आचरण करता है कि मुझे भवान्तर में दुःख प्राप्त न हो ।

[६१] नर या नारी को जाति, फल, विद्या और सुशिक्षा भी संसार से पार नहीं उतारती। यह सब तो शुभ कर्म से ही वृद्धि पाता है ।

[६२] शुभ कर्म (पुण्य) कमजोर होते ही पौरुष भी कमजोर होता है । शुभ कर्म की वृद्धि होने से पौरुष भी वृद्धि पाता है ।

[६३] हे आयुष्मान् ! पुण्य कृत्य करने से प्रीति में वृद्धि होती है । प्रशंसा, धन और यश में वृद्धि होती है । इसलिए हे आयुष्मान् ! ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिए कि यहाँ काफी समय, आवलिका, क्षण, श्वासोच्छ्वास, स्तोक, लव, मूहुर्त्त, दिन, आहोरात्र, पक्ष, मास, अयन, संवत्सर, युग, शतवर्ष, सहस्र वर्ष लाख, करोड़ या क्रोडा क्रोड साल जीना है । जहाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमने कई शील, व्रत, गुणविरमण, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास, अपनाकर स्थिर रहेंगे । हे आयुष्मान् ! तब ऐसा चिन्तन क्यों नहीं करता कि निश्चय से यह जीवन कई बाधा से युक्त है । उसमें कई वात्त, पित्त, श्लेष्म, सन्निपात आदि तरह-तरह के रोगांतक जीवन को छूती है ?

[६४] हे आयुष्मान् ! पूर्वकाल में युगलिक, अरिहंत चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव चारण और विद्याधर आदि मानव रोग रहित होने से लाखों साल तक जीवन जीते थे । वो काफी सौम्य, सुन्दर रूपवाले, उत्तम भोग-भुगतनेवाला, उत्तम लक्षणवाले, सर्वांग सुन्दर शरीरवाले थे। उनके हाथ और पाँव के तालवे लाल कमल पत्र जैसे और कोमल थे । अंगुलीयाँ भी कोमल थी । पर्वत, नगर, मगरमच्छ, सागर एवम् चक्र आदि उत्तम और मंगल चिन्हो से युक्त थे । पाँव कछुऐ की तरह-सुप्रतिष्ठित और सुस्थित, जाँघ हीरनी और कुरुविन्द नाम के तृण की तरह वृत्ताकार गोढ़ण डिब्बे और उसके ढ़क्कन की सन्धि जैसे, साँथल हाथी की सोंढ़ की जैसी, गति उत्तम मदोन्मत हाथी जैसी विक्रम और विलास युक्त, गुह्य प्रदेश उत्तम जात के श्रेष्ठ घोड़े जैसा, कमर शेर की कमर से भी ज्याद गोल, शरीर का मध्य हिस्सा समेटी हुई तीन-पाई, मूसल, दर्पण और शुद्ध किए गए उत्तम सोने के बने हुए खड्ग की मूढ़ और वज्र जैसे वलयाकार, नाभि गंगा के आवर्त्त और प्रदक्षिणावर्त्त, तरंग समूह जैसी, सूरज की किरणों से फैली हुई कमल जैसी गम्भीर और गूढ़, रोमराजि रमणीय, सुन्दर स्वाभाविक पतली, काली, स्निग्ध, प्रशस्त, लावण्ययुक्त अति कोमल, मृदु, कुक्षि, मत्स्य और पंछी की तरह उन्नत, उदर कमल समान विस्तीर्ण स्निग्ध और झुके हुए पीठवाला, अल्परोम युक्त ऐसे देह को पहले के मानव धारण करते है । जिसकी हड्डियां माँस युक्त नजर नहीं आती, वह सोने जैसी निर्मल, सुन्दर रचनावाले, रोग आदि उपसर्ग रहित और प्रशस्त बत्तीस लक्षण से युक्त होते है ।

वक्षस्थल सोने की शिला जैसे उज्ज्वल, प्रशस्त, समतल, पुष्ट, विशाल और श्रीवत्स चिह्नवाले, भूजा नगर के दरवाजे की अर्गला के समान गोल, बाहु भुजंगेश्वर के विपुल शरीर और अपनी स्थान से नीकलनेवाले अर्गले की जैसी लटकी हुई, सन्धि मुग जोड जैसे, माँस-गूढ़, हष्ट-पुष्ट-संस्थित-सुगठित-सुबद्ध-नाड़ी से कसे हुए-ठोस, सीधे, गोल, सुश्लिष्ट, सुन्दर और दृढ, हाथ हथेलीवाले, पुष्ट कोमल-मांसल सुन्दर बने हुए-प्रशस्त लक्षणवाले, अंगुली पुष्ट-छिद्ररहित-कोमल और उत्तम, नाखून-ताम्र जैसे रंग के पतले-स्वच्छ-कान्तिवाले सुन्दर और स्निग्ध, हाथ की रेखाएँ चन्द्रमाँ सूर्य-शंख-चक्र और स्वस्तिक आदि शुभ लक्षणवाली और सुविरचित, खंभे उत्तम भेंस, सुवर, शेर, वाघ, साँढ, हाथी के खंभे जैसे विपुल-परिपूर्ण-उन्नत और मृदु, गला चार आंगल सुपरिमित और शंख जैसी उत्तम, दाढ़ी-मूँछ अवस्थित और साफ, डोढ़ी पुष्ट, मांसल, सुन्दर और वाघ जैसी विस्तीर्ण होठ संशुद्ध, मृगा और बिम्ब के फल जैसे लाल रंग के, दन्त पंक्ति चन्द्रमा जैसी निर्मल-शंख-गाय के दुध के फीण, कुन्दपुष्प, जलकण और मृणालनाल की तरह श्वेत, दाँत, अखंड सुडोल, अविरल अति स्निग्ध और सुन्दर, एक समान, तलवे और जिह्वा का तल अग्नि मे तपे हुए स्वच्छ सोने जैसा, स्वर सारस पंछी जैसा मधुर, नवीन मेघ की दहाड़ जैसा गम्भीर और क्रोंच पंछी के आवाज जैसी-दुन्दुभी युक्त, नाक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गरुड़ की चोंच जैसा लम्बा, सीधा और उन्नत, मुख विकसित कमल जैसा ।

आँख पद्म कमल जैसी विकसित धवल-कमलपत्र जैसी स्वच्छ भँवर थोड़े से झुके हुए धनुष जैसी, सुन्दर पंक्ति युक्त काले मेघ जैसी-उचित मात्रा में लम्बी और सुन्दर-कान कुछ हद तक शरीर को चिपककर प्रमाण युक्त गोल और आसपास का हिस्सा माँसल युक्त और पुष्ट, ललाट अर्ध चन्द्रमा जैसा संस्थित मुख परिपूर्ण चन्द्रमा जैसा, सौम्य, मस्तक छत्र जैसा उभरता, सिर का अग्रभाग मुद्गर जैसा, सुदृढ नाडी से बद्ध-उन्नत लक्षण से युक्त और उन्नत शिखर युक्त, सिर की चमड़ी अग्नि में तपे हुए स्वच्छ सोने जैसी लाल, सिर के बाल शाल्मली पेड़ के फल जैसे घने, प्रमाणेपेत, बारीक, कोमल, सुन्दर, निर्मल, स्निग्ध, प्रशस्त लक्षणवाले, खुश्बुदार, भुज-भोजक रत्न, नीलमणी और काजल जैसे काले हर्षित भ्रमर के झुंड के समूह की तरह, घुंघराले दक्षिणावर्त्त होते है । वो उत्तम लक्षण, व्यंजन, गण से परिपूर्ण–प्रमाणोपेत मान-उन्मान, सर्वांग सुन्दर, चन्द्रमा समान सौम्य आकृतिवाले, प्रियदर्शी स्वाभाविक शृंगार से सुन्दरतायुक्त, देखने के लायक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप होते है ।

यह मानव का स्वर अक्षरित, मेघ समान, हंस समान, क्रोंच पंछी, नंदी-नंदीघोष, सींह-सींहघोष, दिशाकुमार देव का घंट-उदधि कुमार देव का घंट इन सबके समान स्वर होते है । शरीर में वायु के अनुकूल वेगवाले कबूतर जैसे स्वभाववाले, शकुनि पंछी जैसे निर्लेप मल द्वारवाले, पीठ और पेट के नीचे सुगठित दोनो पार्श्वभाग एवं परिणामोपेत जंघावाले पद्मकमल या नील कमल जैसे सुगंधित मुखवाले, तेजयुक्त, निरोगी, उत्तम प्रशस्त, अति श्वेत, अनुपम जल-मल-दाग, पसीना और रजरहित शरीरवाले अति स्वच्छ और उद्योतियुक्त शरीरवाले, व्रजऋषभनाराच-संघयणवाले, समचतुरस्र संस्थान से संस्थित और छ हजार धनुष ऊँचाईवाले बताए गए है । हे आयुष्मान् श्रमण ! वो मानव २५६ पृष्ठ हड्डियाँ वाले बताए है । यह मानव स्वभाव से सरल प्रकृत्ति से विनीत, विकार रहित, अल्प क्रोध-मान, माया-लोभवाले, मृदु और मार्दवता युक्त, तल्लीन, सरल, विनित, अल्प ईच्छावाले, अल्प संग्रही, शान्त स्वभावी । असि-मसि-कृषि व्यापाररहित, गृहाकार पेड़ की शाखा पे निवास करनेवाले, इच्छित विषयाभिलासी, कल्पवृक्ष के पृथ्वी फल और पुष्प का आहार करते है ।

[६५] हे आयुष्मान् श्रमण ! पूर्वकाल में मानव के छह प्रकार के संहनन थे वो इस प्रकार–वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच, अर्द्धनाराच, कीलिका और सेवार्त्त, वर्तमान काल में मानव को सेवार्त्त संहनन ही होता है । हे आयुष्मान् ! पूर्वकाल में मानव को छह प्रकार के संस्थान थे वो इस प्रकार–समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमंडल, सादिक, कुब्ज, वामन और हुंड़क । हे आयुष्मान् ! वर्तमानकाल में केवल हुंड़क संस्थान ही होता है ।

[६६] मानव के संहनन, संस्थान, ऊँचाई और आयु अवसर्पिणी काल के दोष की वजह से धीरे-धीरे क्षीण होते जाते है ।

[६७] क्रोध, मान, माया, लोभ और झूठे तोल-नाप की क्रिया आदि सब अवगुण बढ़ते है ।

[६८] तराजु और जनपद में नाप तोल विषम होते है । राजकुल और वर्ष विषम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होते है ।

[६९] विषम वर्ष में औषधि की ताकत कम हो जाती है । इस समय में औषधि की कमजोरी की वजह से आयु भी कम होता है ।

[७०] इस तरह कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा की तरह ह्रासमान लोग में जो धर्म में अनुरक्त मानव है वो अच्छी तरह से जीवन जीता है ।

[७१] हे आयुष्मान् ! जो किसी भी नाम का पुरुष स्नान करके, देवपूजा करके, कौतुक मंगल और प्रायश्चित करके, सिर पर स्नान करके, गले में माला पहनकर, मणी और सोने के आभूषण धारण करके, नए और कींमती वस्त्र पहनकर, चन्दन के लेपवाले शरीर से, शुद्ध माला और विलेपन युक्त, सुन्दर हार, अर्द्धहार-त्रिसरोहार, कन्दोरे से शोभायमान होकर, वक्षस्थल पर ग्रैवेयक, अंगुली में खूबसूरत अंगूठी, बाहु पर कईं तरह के मणी और रत्नजड़ित बाजुबन्ध से विभूषित, अत्यधिक शोभायुक्त, कुंडल से प्रकाशित मुखवाले, मुगट से दीपे हुए मस्तकवाले, विस्तृत हार से शोभित वक्षस्थल, लम्बे सुन्दर वस्त्र के उत्तरीय को धारण करके, अंगुठी से पीले वर्ण की अंगुलीवाले, तरह-तरह के मणी-सुवर्ण विशुद्ध रत्नयुक्त, अनमोल प्रकाशयुक्त, सुश्लिष्ठ, विशिष्ठ, मनोहर, रमणीय और वीरत्व के सूचक कड़े धारण कर ले । ज्यादा कितना कहना ?

कल्पवृक्ष जैसे, अलंकृत विभूषित और पवित्र होकर अपने माँ-बाप को प्रणाम करे तब वो इस प्रकार कहेंगे हे पुत्र ! सौ साल का बन । लेकिन उसका आयु १०० साल हो तो जीव अन्यथा ज्यादा कितना जीएगा ? सौ साल जीनेवाला वो बीस युग जीता है । अर्थात् वो २०० अयन या ६०० ऋतु या १२०० महिने या २४०० पक्ष या ३६००० रात-दिन या १०८०००० मुहूर्त्त या ४०७४८४०००० साँसे जीतना जी लेता है । हे भगवन् ! वो साड़े बाईस 'तंदुलवाह' किस तरह खाता है ? हे गौतम ! कमजोर स्त्री द्वारा सूपड़े से छड़े गए। खरमुसल से कुटे गए, भूंसे और कंकर रहित करके अखंडित और परिपूर्ण चावल के साड़े बारह 'पल' का एक प्रस्थ होता है । उस प्रस्थ को 'मागध' भी कहते है । (सामान्यतः) प्रतिदिन सुबह एक प्रस्थ और शाम को एक प्रस्थ ऐसे दो समय चावल खाते है । एक प्रस्थक में ६४००० चावल होते है । २००० चावल के दाने का एक कवल से पुरुष का आहार ३२ कवल स्त्री का आहार २८ कवल और नपुंसक के २४ कवल होते है । यह गिनती इस तरह है । दो असती की प्रसृति, दो प्रसृति का एक सेतिका, चार सेतिका का एक कुडव, चार कुडव का एक प्रस्थक, चार प्रस्थक का एक आढक, साठ आढक का एक जघन्य कुम्भ, अस्सी आढक का एक मध्यमकुम्भ, सौ आढ़क का एक उत्कृष्ट कुम्भ और ५०० आढ़क का एक वाह होता है । इस वाह के मुताबिक साड़े बाईस वाह तांदुल खाते है । उस गिनती के मुताबिक–

[७२] ४६० करोड़, ८० लाख चावल के दाने होते है वैसा कहा है ।

[७३] इस तरह साड़े बाईस वाह तांदुल खानेवाला वह साड़े पाँच कुम्भ मुँग खाता है। मतलब २४०० आढ़क घी और तेल या ३६ हजार पल नमक खाता है । वो दो महिने के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाद कपड़े बदलता है, ६०० धोती पहनता है । एक महिने पर बदलने से १२०० धोती पहनता है । इस तरह हे आयुष्मान् ! १०० साल की आयुवाले मानव के तेल, घी, नमक, खाना और कपड़े की गिनती या तोल-नाप है, यह गिनती परिमाण भी महर्षि ने दो तरह से कहा है । जिनके पास यह सब कुछ है उसकी गणना करके, जिनके पास यह कुछ भी नहीं है उसकी क्या गणना करना ?

[७४] पहले व्यवहार गिनती देखी अब सूक्ष्म और निश्चयगत गिनती जाननी चाहिए। यदि इस तरह से न हो तो गणना विषम जाननी चाहिए ।

[७५] सर्वाधिक सूक्ष्मकाल, जिसका विभाजन न हो शके उसे 'समय' जानना चाहिए। एक साँस में अनगिनत समय होता है ।

[७६] हृष्टपुष्ट ग्लानि रहित और कष्टरहित पुरुष की जो एक साँस होती है उसे प्राण कहते है ।

[७७] सात प्राण का एक स्तोक, सात स्तोक का एक लव, ७७ लव का एक मुहूर्त्त कहा है ।

[७८] हे भगवन् ! एक मुहूर्त्त में कितने उच्छ्वास बताए है ? हे गौतम !

[७९] ३७७३ उच्छ्वास होते है । सभी अनन्तज्ञानीओने इसी मुहूर्त्त-परिमाण बताया है ।

[८०] दो पल का एक मुहूर्त्त-साठ पल का एक अहोरात्र, पंद्रह अहोरात्र का एक पक्ष, दो पक्ष का एक महिना होता है ।

[८१-८२] दाडम के पुष्प की आकृतिवाली लोहे की घड़ी बनाकर उसके तलवे में छिद्र किया जाए, तीन साल के गाय के बच्च की पूँछ के–९६ बाल जो सीधे होते है और मुड़े हुए न हो वैसी तरह घड़ी का छिद्र होना चाहिए ।

[८३] या फिर दो साल के हाथी के बच्चे की पूँछ के बाल जो टूटे हुए न हो ऐसी तरह घड़ी का छिद्र होना चाहिए ।

[८४] या फिर चार मासा सोने की एक गौल और कठिन सूई कि जिसका परिमाण चार अंगुल हो वैसा छिद्र होना चाहिए ।

[८५] उस घड़ी में पानी का परिणाम दो आढ़क होना चाहिए । उस पानी को कपड़े से छानकर प्रयोग करना चाहिए ।

[८६] मेघ का साफ पानी और शरदकालीन पर्वतीय नदी जैसा ही पानी लेना चाहिए।

[८७] १२ मास का एक साल, एक साल के २४ पक्ष और ३६० रात-दिन होते है ।

[८८] एक रात्रि-दिन में १,१३,९०० उच्छ्वास होते है ।

[८९] एक महिने में ३३५५७०० उच्छ्वास होते है ।

[९०] एक साल में ४०७४८४०००० उच्छ्वास होते है ।

[९१] १०० साल के आयु में ४०७४५४०००० उश्वास होते है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[९२] अब रात दिन क्षीण होने से आयु का क्षय देखो । (सुनो)

[९३] रात-दिन में तीस और महिने में ९०० मुहूर्त्त प्रमादि के नष्ट होते है । लेकिन अज्ञानी उसे नहीं जानते ।

[९४] हेमंत ऋतु में सूरज पूरे ३६०० मुहूर्त्त आयु को नष्ट करते है । उसी तरह ग्रीष्म और वर्षा में भी होता है ऐसा जानना चाहिए ।

[९५] इस लोक में सामान्य से सौ साल के आयु में ५० साल निद्रा में नष्ट होते है। उसी तरह २० साल बचपन और बुढ़ापे में नष्ट होते है ।

[९६] बाकी के १५ साल शर्दी, गर्मी, मार्गगमन, भूख, प्यास, भय, शोक और विविध प्रकार की बिमारी होती है ।

[९७] ऐसे ८५ साल नष्ट होते है । जो सौ साल जीनेवाले होते है वो १५ साल जीते है और १०० साल जीनेवाले भी सभी नहीं होते ।

[९८] इस तरह व्यतीत होनेवाले निःस्सार मानवजीवन में सामने आए हुए चारित्र धर्म का पालन नहीं करते उसे पीछे से पछतावा करना पड़ेगा ।

[९९] इस कर्मभूमि में उत्पन्न होकर भी किसी मानव मोह से वश होकर जिनेन्द्र के द्वारा प्रतिपादित धर्मतीर्थ समान श्रेष्ठ मार्ग और आत्मस्वरुप को नहीं जानता ।

[१००] यह जीवन नदी के वेग जैसा चपल, यौवन फूल जैसा मूझनिवाला और सुख भी अशाश्वत है । यह तीनों शीघ्र भोग्य है ।

[१०१] जिस तरह मृग के समूह को जाल समेट लेती है उसी तरह मानव को जरामरण समान जाल समेट लेती है । तो भी मोहजाल से मूढ़ बने हुए तुम यह सब नहीं देख शकते ।

[१०२] हे आयुष्मान् ! यह शरीर इष्ट, प्रिय, कांत, मनोज्ञ, मनोहर, मनाभिराम, दृढ, विश्वासनीय, संमत, अभीष्ट, प्रशंसनीय, आभूषण और रत्न करंडक समान अच्छी तरह से गोपनीय, कपड़े की पेटी और तेलपात्र की तरह अच्छी तरह से रक्षित, शर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, चोर, दंश, मशक, वात, पित्त, कफ, सन्निपात, आदि बिमारी के संस्पर्श से बचाने के योग्य माना जाता है । लेकिन वाकई में यह शरीर ? अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, वृद्धि और हानी पानेवाला, विनाशशील है । इसलिए पहले या बाद में उसका अवश्य परित्याग करना पड़ेगा । हे आयुष्मान् ! इस शरीर में पृष्ठ हिस्से की हड्डी में क्रमशः १८ संधि होती है । उसमें करंड़क आकार की बारह पसली की हड्डियां होती है । छ हड्डी केवल बगल के हिस्से को घैरती है उसे कडाह कहते है । मानव की कुक्षि एक वितस्थि (१२-अंगुल प्रमाण) परिमाण युक्त और गरदन चार अंगुल परिमाण की है । जीभ चार पल और आँख दो पल है।

हड्डी के चार खंड़ से युक्त सिर का हिस्सा है । उसमें ३२ दाँत, सात अंगुल प्रमाण जीभ, साड़े तीन पल का हृदय, २५ पल का कलेजा होता है । दो आन्त होते है । जो पाँच वाम परिमाण को कहते है । दो आन्त इस तरह से है–स्थूल और पतली । उसमें जो स्थूल आन्त है उसमें से मल नीकलता है और जो सूक्ष्म आन्त है उसमें से मूत्र नीकलता है । दो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वभाग बताए है । एक बाँया दुसरा दाँया । जिसमें दांया पार्श्वभाग है वो सुख परिणामवाला होता है । जो बांया पार्श्वभाग है वो दुःख परिणामवाला होता है । हे आयुष्मान् ! इस शरीर में १६० जोड़ है । १०७ मर्मस्थान है, एक दुसरे से जुडी ३०० हड्डियाँ है, ९०० स्नायु, ७०० शिरा, ५०० माँसपेशी, ९ धमनी, दाढ़ी-मूँछ के रोम के सिवा ९९ लाख रोमकूप, दाढ़ी-मूँछ सहित साड़े तीन करोड़ रोमकूप होते है । हे आयुष्मान् ! इस शरीर में १६० शिरा नाभि से नीकलकर मस्तिष्क की ओर जाती है । उसे रसहरणी कहते है । उर्ध्वगमन करती हुई यह शिरा चक्षु, श्रोत्र, घ्राण और जिह्वा को क्रिया शीलता देती है । और उसके उपघात से चक्षु, नेत्र, घ्राण और जिह्वा की क्रियाशीलता नष्ट होती है । हे आयुष्मान् ! इस शरीर में १६० शिरा नाभि से नीकलकर नीचे पाँव के तलवे तक पहुँचती है । उससे जंघा को क्रियाशीलता प्राप्त होती है । यह शिरा के उपघात से मस्तकपीड़ा, आधाशीशी, मस्तकशूल और आँख का अंधापन आता है ।

हे आयुष्मान् ! इस शरीर में १६० शिरा नाभि से नीकलकर तिर्छी हाथ के तलवे तक पहुँचती है । उससे बाहु को क्रियाशीलता, मिलती है । और उसके उपघात से बगल में दर्द, पृष्ठ दर्द, कुक्षिपिडा और कुक्षिशूल होता है । हे आयुष्मान् ! १६० शिरा नाभिसे नीकलकर नीचे की ओर जाकर गुंदा को मिलती है । और उसके निरुपघात से मल-मूत्र, वायु उचित मात्रा में होते है । और उपघात से मल, मूत्र, वायु का निरोध होने से मानव क्षुब्ध होता है और पंडु नाम की बिमारी होती है । हे आयुष्मान् ! कफ धारक २५ शिरा पित्तधारक २५ शिरा और वीर्य धारक १० शिरा होती है । पुरुष को ७०० शिरा, स्त्री को ६७० शिरा और नपुंसक को ६८० शिरा होती है । हे आयुष्मान् ! यह मानव शरीर में लहू का वजन एक आढ़क, वसा का आधा आढ़क, मस्तुलिंग का एक प्रस्थ, मूत्र का एक आढ़क, पुरीस का एक प्रस्थ पित्त का एक कुड़व, कफ का एक कुड़व, शुक्र का आधा कुड़व परिमाण होता है । उसमें जो दोषयुक्त होता है उसमें वो परिमाण अल्प होता है । पुरुष के शरीर में पाँच और स्त्री के शरीर में छ कोठे होते है । पुरुष को नौ स्त्रोत और स्त्री को ११ स्त्रोत होते है पुरुष को ५०० पेशि, स्त्री को ४७० पेशी और नपुंसक को ४८० पेशी होती है।

[१०३] यदि शायद शरीर के भीतर का माँस परिवर्तन करके बाहर कर दिया जाए तो उस अशुचि को देखकर माँ भी धृणा करेगी–

[१०४] मनुष्य का शरीर माँस, शुक्र, हड्डियाँ से अपवित्र है । लेकिन यह वस्त्र, गन्ध और माला से आच्छादित होने से शोभायमान है ।

[१०५] यह शरीर, खोपरी, मज्जा, माँस, हड्डियाँ, मस्तुलिंग, लहू, वालुंडक, चर्मकोश, नाक का मैल और विष्ठा का घर है । यह खोपरी, नेत्र, कान, होठ, ललाट, तलवा आदि अमनोज्ञ मल युक्त है । होठ का घेराव अति लार से चीकना, मुँह पसीनावाला, दाँत मल से मलिन, देखने में बिभत्स है । हाँथ-अंगुली, अँगूठे, नाखून के सन्धि से जुड़े हुए है । यह कई तरल-स्त्राव का घर है । यह शरीर, खंभे की नस, कई शिरा और काफी सन्धि से बँधा हुआ है । शरीर में फूटे घड़े जैसा ललाट, सूखे पेड़ की कोटर जैसा पेट, बालवाला अशोभनीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुक्षिप्रदेश, हड्डियाँ और शिरा के समूह से युक्त उसमें सर्वत्र और चारों ओर रोमकूप में से स्वभाव से ही अपवित्र और घोर बदबू युक्त पसीना नीकल रहा है । उसमें कलेजा, पित्त, हृदय, फेफड़े, प्लीहा, फुप्फुस, उदर आदि गुप्त माँसपिंड़ और मलस्त्रावक नौ छिद्र है । उसमें धक्धक् आवाज करनेवाला हृदय है । वो बदबू युक्त पित्त, कफ, मूत्र और औषधि का निवासस्थान है । गुह्य प्रदेश गुंठण, जंघा और पाँव के जोड़ो से जुड़े, माँस गन्ध से युक्त अपवित्र और नश्वर है । इस तरह सोचते और उसका बीभत्स रूप देखकर यह जानना चाहिए कि यह शरीर अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, सड़न-गलन और विनाशधर्मी, एवं पहले या बाद में अवश्य नष्ट होनेवाला है । सभी मानव का देह ऐसा ही है ।

[१०६] माता की कुक्षि में शुक्र और शोणित में उत्पन्न उसी अपवित्र रस को पीकर नौ मास गर्भ मे रहता है ।

[१०७] योनिमुख से बाहर नीकला, स्तनपान से वृद्धि पाकर, स्वभाव से ही अशुचि और मल युक्त ऐसे इस शरीर को किस तरह धोना मुमकीन है ?

[१०८] अरे ! अशुचि में उत्पन्न हुए और जहाँ से वो मानव बाहर नीकला है । काम-क्रीड़ा की आसक्ति से ही उसी अशुचि योनि में रमण करता है ।

[१०९] फिर अशुचि से युक्त स्त्री के कटिभाग को हजारों कवि द्वारा अश्रान्त भाव से बँयान क्यों किया जाता है ? वो इस तरह स्वार्थ वश मूढ़ बनते है ।

[११०] वो बेचारे राग की वजह से यह कटिभाग अपवित्र मल की थै है यह नहीं जानते । इसीलिए ही उसे विकसित नीलकमल के समूह समान मानकर ऊसका वर्णन करते है ।

[१११] ज्यादा कितना कहा जाए ? प्रचुर मेद युक्त, परम अपवित्र विष्ठा की राशि और धृणा योग्य शरीर में मोह नहीं करना चाहिए ।

[११२] सेंकड़ो कृमि समूह युक्त, अपवित्र मल से व्याप्त, अशुद्ध, अशाश्वत, साररहित, दुर्गन्धयुक्त, पसीना और मल से मलिन इस शरीर से तुम निर्वेद पाओ ।

[११३] यह शरीर दाँत, कान, नाक का मैल, मुख की प्रचुर लार से युक्त है । ऐसे बिभत्स और धृणित शरीर के प्रति राग कैसा ?

[११४] सड़न, गलन, विनाश, विध्वंसन दुःखक और मरणधर्मी, सड़े हुए लकड़े समान इस शरीर की अभिलाषा कौन करेगा ?

[११५] यह शरीर कौए, कुत्ते, कीडी, मकोडे, मत्स्य और मुर्दाघर में रहते गिधड आदि का भोज्य और व्याधि से ग्रस्त है । उस शरीर से कौन राग करेगा ?

[११६] अपवत्रि विष्ठा से पूरित, माँस और हड्डी का घर, मलस्त्रावि, रज-वीर्य से उत्पन्न नौ छिद्रयुक्त अशाश्वत जानना ।

[११७] तिलकयुक्त, विशेष रक्त होंठवाली लड़की को देखते हो ।

[११८] बाहरी रूप को देखते हो लेकिन भीतर के दुर्गंधयुक्त मल को नहीं देखते ।

[११९] मोह से ग्रसित होकर नाच उठते हो और ललाट के अपवित्र रस को (चुंबन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से) पीते हो ।

[१२०] ललाट से उत्पन्न हुआ रस जिसे स्वयं थूँकते हो, घृणा करते हो और उसमें ही अनुरक्त होकर अति आसक्ति से पीते हो ।

[१२०] ललाट अपवित्र है । नाक विविध अंग, छिद्र, विछिद्र भी अपवित्र है । शरीर भी अपवित्र चमड़े से ढँका हुआ;

[१२१] अंजन से निर्मल, स्नान-उद्वर्तन से संस्कारित, सुकुमाल पुष्प से सुशोभित केशराशि युक्त स्त्री का मुख अज्ञानी को राग उत्पन्न करता है ।

[१२२] अज्ञान बुद्धिवाला जो फूलों को मस्तक का आभूषण कहता है । वो केवल फूल ही है । मस्तक का आभूषण नहीं । सुनो !

[१२३] चरबी, वसा, रसि, कफ, श्लेष्म, मेद यह सब सिर के भूषण है यह अपने शरीर के स्वाधिन है ।

[१२४] यह शरीर भूषित होने के लिए उचित नहीं है । विष्ठा का घर है । दो पाँव और नौ छिद्रो से युक्त है । तीव्र बदबू से भरा है । उसमें अज्ञानी मानव अति मूर्छित होता है ।

[१२५] कामराग से रंगे हुए तुम गुप्त अंग को प्रकट करके दाँत के चीकने मल और खोपरी में से नीकलनेवाली कांजी अर्थात् विकृत रस को पीते हो ।

[१२६] हाथी के दन्त मूसल-ससा और मृग का माँस, चमरी गौ के बाल और चित्ते का चमड़ा और नाखून के लिए उनका शरीर ग्रहण किया जाता है ।

[१२७] (मनुष्य शरीर किस काम का है ?) हे मूर्ख ! यह शरीर दुर्गंध युक्त और मरण के स्वाभाववाला है । उसमें नित्य भरोंसा करके तुम क्यों आसक्त होते हो ? उनका स्वभाव तो बताओ ।

[१२८] दाँत किसी काम के नहीं, लम्बे बाल नफरत के लायक है । चमड़ी भी बिभत्स है अब बताओ कि तुम किसमें राग रखते हो ?

[१२९] कफ, पित्त, मूत्र, विष्ठा, वसा, दांढ आदि किसका राग है ?

[१३०] जंघा की हड्डी पर सांथल है । उस पर कटिभाग है । कटि के ऊपर पृष्ठ हिस्सा है । पृष्ठ हिस्से में १८ हड्डियाँ है ।

[१३१] दो आँख की हड्डी और सोलह गरदन की हड्डी है । पीठ में बारह पसली है।

[१३२] शिरा और स्नायु से बँधे कठिन हड्डियों का यह ढाँचा, माँस और चमड़े में लिपटा हुआ है ।

[१३३] यह शरीर विष्ठा का घर है, ऐसे मल गृह में कौन राग करेगा ? जैसे विष्ठा ने कुए की नजदीक कौए फिरते है । उसमें कृमि द्वारा सुल-सुल शब्द हुआ करते है और स्त्रोत से बदबू नीकलती है । (मृत शरीर के भी यही हालात है ।

[१३४] मृत शरीर के नेत्र को पंछी चोंच से खुदते है । लत्ता की तरह हाथ फैल जाते है । आंत बाहर नीकाल लेते है और खोपरी भयानक दिखती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१३५] मृत शरीर पर मक्खी बण-बण करती है । सड़े हुए माँस में से सुल-सुल आवाझ आती है । उसमें उत्पन्न हुए कृमि समूह मिस-मिस आवाज करते है । आंत में से थिव-थिव होता है । इस तरह यह काफी बिभत्स लगता है ।

[१३६] प्रकट पसलीवाला भयानक, सूखे जोरों से युक्त चेतनारहित शरीर की अवस्था जान लो ।

[१३७] नौ द्वार से अशुचि को नीकालनेवाले झरते हुए कच्चे घड़े की तरह यह शरीर प्रति निर्वेद भाव धारण कर लो ।

[१३८] दो हाथ, दो पाँव और मस्तक, धड़ के साथ जुड़े हुए है । वो मलिन मल का कोष्ठागार है । इस विष्ठा को तुम क्यों उठाकर फिरते हो ?

[१३९] इस रूपवाले शरीर को राजपथ पर घूमते देखकर खुश हो रहे हो और परगन्ध से सुगंधित को तुम्हारी सुगन्ध मानते है ।

[१४०] गुलाब, चंपा, चमेली, अगर, चन्दन और तरूष्क की बदबू को अपनी खुश्बु मानकर खुश होते हो ।

[१४१] तुम्हारा मुँह मुखवास से, अंग-प्रत्यंग अगर से, केश स्नान आदि के समय में लगे हुए खुश्बुदार द्रव्य से खुश्बुदार है । तो इसमें तुम्हारी अपनी खुश्बु क्या है ?

[१४२] हे पुरुष ! आँख, कान, नाक का मैल और श्लेष्म, अशुचि और मूत्र यही तो तुम्हारी अपनी गन्ध है ।

[१४३] काम, राग और मोह समान तरह-तरह की रस्सी से बँधे हजारों श्रेष्ठ कवि द्वारा इन स्त्रीयों की तारीफ में काफी कुछ कहा गया है । वस्तुतः उनका स्वरूप इस प्रकार है। स्त्री स्वभाव से कुटील, प्रियवचन की लत्ता, प्रेम करने में पहाड की नदी की तरह कुटील, हजार अपराध की स्वामिनी, शोक उत्पन्न करवानेवाली, बाल का विनाश करनेवाली, मर्द के लिए वधस्थान, लज्जा को नष्ट करनेवाली, अविनयकी राशि, पापखंड़ का घर, शत्रुता की खान, शोक का घर, मर्यादा तोड देनेवाली, राग का घर, दुराचारी का निवास स्थान, संमोहन की माता, ज्ञान को नष्ट करनेवाली, बह्मचर्य को नष्ट करनेवाली, धर्म में विघ्नसमान, साधु की शत्रु, आचार संपन्न के लिए कलंक समान, रज का विश्राम गृह, मोक्षमार्ग में विघ्नभूत, दरिद्रता का आवास-कोपायमान हो तब झहरीले साँप जैसी, काम से वश होने पर मदोन्मत हाथी जैसी, दुष्ट हृदया होने से वाघण जैसी, कालिमां वाले दिल की होने से तृण आच्छादित कूए समान, जादूगर की तरह सेंकड़ो उपचार से आबद्ध करनेवाली, दुर्ग्राह्य सद्भाव होने के बावजूद आदर्श की प्रतिमा, शील को जलाने में वनखंड की अग्नि जैसी, अस्थिर चित्त होने से पर्वत मार्ग की तरह अनवस्थित, अन्तरंग व्रण की तरह कुटील, हृदय काले सर्प की तरह अविश्वासनीय।

छल छद्म युक्त होने से प्रलय जैसी, संध्या की लालीमा की तरह पलभर का प्रेम करनेवाली, सागर की लहर की तरह चपल स्वभाववाली, मछली की तरह दुष्परिवर्तनीय, चंचलता में बन्दर की तरह, मौत की तरह कुछ बाकी न रखनेवाली, काल की तरह घातकी, वरुण की तरह कामपाश समान हाथवाली, पानी की तरह निम्न-अनुगामिनी, कृपण की तरह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्टे हाथवाली, नरक समान भयानक, गर्दभ की तरह दुःशीला, दुष्ट घोड़े की तरह दुर्दमनीय, बच्चे की तरह पल में खुश और पल में रोषायमान होनेवाली, अंधेरे की तरह दुष्प्रवेश विष लता की तरह आश्रय को अनुचित, कुए में आक्रोश से अवगाहन करनेवाले दुष्ट मगरमच्छ जैसी, स्थानभ्रष्ट, ऐश्वर्यवान् की तरह प्रशंसा के लिए अनुचित किंपाक फल की तरह पहले अच्छी लगनेवाली लेकिन बाद में कटु फल देनेवाली, बच्चे को लुभानेवाली खाली मुट्ठी जैसी सार के बिना, माँसपिंड को ग्रहण करने की तरह उपद्रव उत्पन्न करनेवाली, जले हुए घास के पूले की तरह न छूटनेवाले मान और जले हुए शीलवाली, अरिष्ट की तरह बदबूवाली, खोटे सिक्के की तरह शील को ठगनेवाली, क्रोधी की तरह कष्ट से रक्षित, अति विषादवाली, निर्दित, दुरुपचारा, अगम्भीर, अविश्वसनीय, अनवस्थित, दुःख से रक्षित, अरतिकर, कर्कश, दंड बैरवाली, रूप और सौभाग्य से उन्मत्त, साँप की गति की तरह कुटील हृदया, अटवी में यात्रा की तरह भय उत्पन्न करनेवाली, कुल-परिवार और मित्र में फूट उत्पन्न करनेवाली, दुसरों के दोष प्रकाशित करनेवाली ।

कृतघ्न, वीर्यनाश करनेवाली, कोल की तरह एकान्त में हरण करनेवाली, चंचल, अग्नि से लाल होनेवाले घड़े की तरह लाल होठ से राग उत्पन्न करनेवाली, अंतरंग में भग्नशत हृदया, रस्सी बिना का बँधन, बिना पेड का जंगल, अग्निनिलय, अदृश्य वैतरणी, असाध्य बिमारी, बिना वियोग से प्रलाप करनेवाली, अनभिव्यक्त उपसर्ग, रतिक्रीड़ा में चित्त विभ्रम करनेवाली, सर्वांग जलानेवाली विना मेघ के वज्रपात करनेवाली, जलशून्य प्रवाह और सागर समान निरन्तर गर्जन करनेवाली, यह स्त्री होती है । इस तरह स्त्रीयां की कईं नाम निर्युक्ति की जाती है । लाख उपाय से और अलग-अलग तरह से मर्द की कामासक्ति बढ़ाती है और उसको वध बन्धन का भाजन बनानेवाली नारी समान मर्द का दुसरा कोई शत्रु नहीं है, इसलिए 'नारी' तरह-तरह के कर्म और शिल्प से मर्दो को मोहित करके मोह 'महिला', मर्दो को मत्त करते है इसलिए 'प्रमदा', महान् कलह को उत्पन्न करती है इसलिए 'महिलिका', मर्द को हावभाव से रमण करवाती है इसलिए 'रमा', मर्दो को अपने अंग में राग करवार्ती है इसलिए 'अंगना', कई तरह के युद्ध-कलह-संग्राम-अटवी में भ्रमण, बिना प्रयोजन कर्ज लेना, शर्दी, गर्मी का दुःख और क्लेश खड़े करने के आदि कार्य में वो मर्द को प्रवृत्त करती है इसलिए 'ललना', योग-नियोग द्वारा पुरुष को बस में करती है इसलिए 'योषित्' एवं विविध भाव द्वारा पुरुष की वासना उद्दीप्त करती है इसलिए वनिता कहलाती है ।

किसी स्त्री प्रमत्तभाव को, किसी प्रणय विभ्रम को और किसी श्वास के रोगी की तरह शब्द-व्यवहार करते है । कोई शत्रु जैसी होती है और कोई रो-रो-कर पाँव पर प्रणाम करती है । कोई स्तुति करती है । कोई आश्चर्य, हास्य और कटाक्ष से देखती है । कोई विलासयुक्त मधुर वचन से, कोई हास्य चेष्टा से, कोई आलिंगन से, कोई सीत्कार के शब्द से, कोई गृह्योग के प्रदर्शन से, कोई भूमि पर लिखकर या चिह्न करके, कोई वांस पर चड़कर नृत्य द्वारा कोई बच्चे के आलिंगन द्वारा, कोई अंगुली के टचाके, स्तन मर्दन और कटितट पीड़न आदि से पुरुष को आकृष्ट करती है । यह स्त्री विघ्न करने में जाल की तरह, फाँसने में कीचड़ की तरह, मारने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में मौत की तरह, जलाने में अग्नि की तरह और छिन्न-भिन्न करने में तलवार जैसी होती है ।

[१४४] स्त्री कटारी जैसी तीक्ष्ण, श्याही जैसी कालिमा, गहन वन जैसी भ्रमित करनेवाली, अलमारी और कारागार जैसी बँधनकारक, प्रवाहशील अगाध जल की तरह भयदायक होती है ।

[१४५] यह स्त्री सेंकड़ो दोष की गगरी, कई तरह के अपयश को फैलानेवाली कुटील हृदया, छलपूर्ण सोचवाली होती है ।

[१४६] यह स्त्रीयां एक में रत होती है, अन्य के साथ क्रीडा करती है, अन्य के साथ नयन लडाती है और अन्य के पार्श्व में जाकर ठहरती है । उसके स्वभाव को बुद्धिमान भी नहीं जान शकते ।

[१४७] गंगा के बालुकण, सागर का जल, हिमवत् का परिमाण, उग्रतप का फल, गर्भ से उत्पन्न होनेवाला बच्चा;

[१४८] शेर की पीठ के बाल, पेट में रहा पदार्थ, घोड़े को चलने की आवाज उसे शायद बुद्धिमान मानव जान शके लेकिन स्त्री के दिल को नहीं जान शकता ।

[१४९] इस तरह के गुण से युक्त यह स्त्री बंदर जैसी चंचल मनवाली और संसार में भरोसा करने के लायक नहीं है ।

[१५०] लोक में जैसे धान्य विहिन खल, पुष्परहित बगीचा, दुध रहित गाय, तेल रहित तल निरर्थक है वैसे स्त्री भी सुखहीन होने से निरर्थक है ।

[१५१] जितने समय में आँख बन्द करके खोली जाती है उतने समय में स्त्री का दिल और चित्त हजार बार व्याकुल हो जाता है ।

[१५२] मूरख, बुढ्ढे, विशिष्ट ज्ञान से हीन, निर्विशेष संसार में शूकर जैसी नीच प्रवृत्ति वाले को उपदेश निरर्थक है ।

[१५३] पुत्र, पिता और काफी-संग्रह किए गए धन से क्या फायदा ? जो मरते समय कुछ भी सहारा न दे शके ?

[१५४] मौत होने से पुत्र, मित्र या पत्नी भी साथ छोड़ देती है लेकिन सुउपार्जित धर्म ही मरण के समय साथ नहीं छोड़ता ।

[१५५] धर्म रक्षक है । धर्म शरण है, धर्म ही गति और आधार है । धर्म का अच्छी तरह से आचरण करने से अजर अमर स्थान की प्राप्ति होती है ।

[१५६] धर्म प्रीतिकर-कीर्तिकर-दीप्तिकर-यशकर-रतिकर-अभयकर-निवृत्तिकर और मोक्ष प्राप्ति में सहायक है ।

[१५७] सुकृतधर्म से ही मानव को श्रेष्ठ देवता के अनुपम रूप-भोगोपभोग, ऋद्धि और विज्ञान का लाभ प्राप्त होता है ।

[१५८] देवेन्द्र, चक्रीपद, राज्य, इच्छित भोग से लेकर निर्वाण पर्यन्त यह सब धर्म आचरण का ही फल है ।

[१५९] यहाँ सौ साल के आयुवाले मानव का आहार, उच्छ्वास, संधि, शिरा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोमफल, पित्त, लहू, वीर्य की गिनती की दृष्टि से परिगणना की गई है ।

[१६०] जिसकी गिनती द्वारा अर्थ प्रकट किया गया है ऐसे शरीर के वर्षो को सुनकर तुम मोक्ष समान कमल के लिए कोशीश कर लो जीसके सम्यक्त्व समान हजार पंखडीयां है ।

[१६२] यह शरीर जन्म, जरा, मरण, दर्द से भरी गाड़ी जैसा है । उसे पाकर वही करना चाहिए जिससे सब दुःख से छूटकारा पा शके ।

२८	तन्दुलवैचारिक-प्रकिर्णक-५-हिन्दी अनुवाद पूर्ण

आगमसूत्र-हिन्दी अनुवाद-भाग-९-पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमसूत्र-हिन्दी अनुवाद भाग-१- से-१२	
भाग-१	आचार, सूत्रकृत
भाग-२	स्थान, समवाय
भाग-३	भगवती-(शतक-१-से-१०)
भाग-४	भगवती-(शतक-११-से-२९)
भाग-५	भगवती (शतक-३०-से-४१) ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा
भाग-६	अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकश्रुत, औपपातिक, राजप्रश्नीय
भाग-७	जीवाजीवाभिगम, प्रज्ञापना (पद-१ से ५)
भाग-८	प्रज्ञापना (पद-६ से ३६) सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति
भाग-९	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिता, पुष्पचूलिका, वण्हिदशा, चतुःशरण, आतुरप्रत्याख्यान महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तंदुलवैचारिक
भाग-१०	संस्तारक, गच्छाचार (चन्द्रवेध्यक), गणिविद्या, देवेन्द्रस्तव, वीरस्तव, निशीथ, बृहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कन्ध, जीतकल्प, महानिशीथ (अध्ययन-१ से ४)
भाग-११	महानिशीथ (अध्ययन-५ से ८), आवश्यक, ओधनिर्युक्ति, पिंडनिर्युक्ति
भाग-१२	दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नन्दी, अनुयोगद्वार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे आगम संबंधि साहित्य

१.४५ – आगम – मूल [अर्धमागधी]

२.४५ – आगम – गुजरातीअनुवाद

३.४५ – आगम – सटीकं

४.४५ – आगम – विषयानुक्रम

५.४५ – आगम – महापूजनविधी

६.४५ – आगम – शब्दकोश

७.४५ – आगमसूत्र - [हिन्दीअनुवाद]

9

श्री श्रुत प्रकाशन निधि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org